

विषय	संस्करण	पृष्ठ
विसर्ग का स	३१	३४
"	३२	३५
विसर्ग का प	३४	"
विसर्ग का " ओ "	३५	"
विसर्गलोप	३६	३७
विसर्ग का ' र '	३७	३८
स और प के विसर्ग का लोप	३८	३९

### तृतीय सोपान

#### सद्भा विचार

परिवर्तनशील तथा		
अपरिवर्तनशील शब्द	४१	४०
पुरुष तथा वचन	४०	४०
संज्ञाओं के तीन लिङ्ग	४१	४०
विभक्तिविचार	४२	४१
स्वरान्त तथा व्यञ्जनान्त प्रातिपदिक	४३	४३

#### स्वरान्त सहाय्य

अकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४४	४४
आकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४५	४५
इकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४६	४६
ईकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४७	४६



विषय

सेक्शन

यणसन्धि

१०

पृचोऽयवायाव

११

अकारलोप

१२

प्रगृह्य नियम

१३

स्तोरचुना रचु

हलसन्धि

रुदुना रु

१४

तो पि

१४ ख

ऋलसन्धि

१५

यर्सन्धि

१६

तोलि

१७

ऋयसन्धि

१८

वर्णों के प्रथम वर्णों का आगम

१९

शकार सन्धि

२०

अनुस्वार विधान

२१

अनुस्वार के भिन्न भिन्न स्थानीय

२२, २३

यत्वविधान

२४

पत्वविधान

२५

२६

पदान्त स् का विसर्ग

विसर्गसन्धि

पदान्त र् का विसर्ग

२६

३०

२

२४

२६

११

११

२७

११

२८

२८

२६

३०

३१

३२

३४

११

पूज्य-गुरु

महामहोपाध्याय

श्री डा० गङ्गानाथ भा,

एम्० ए०, डी० लिट्०, एलेल्० डी० \

चाइस चेंसलर

प्रयाग-विश्वविद्यालय

के

रुक्मलो में

उनके प्रिय शिष्य

ग्रन्थकार

द्वारा

भक्तिपूर्वक समर्पित ।



विषय	सेक्शन	पृष्ठ
विसर्ग का स्	३१	३४
"	३२	३४
विसर्ग का प्	३४	"
विसर्ग का " ओ "	३५	"
विसर्गलोप	३६	३७
विसर्ग का ' र '	३७	३८
स और एष के विसर्ग का लोप	३८	३९

### तृतीय सोपान

#### सहा विचार

परिवर्तनशील तथा		
अपरिवर्तनशील शब्द	४१	४०
पुरुष तथा वचन	४०	४०
संज्ञाओं के तीन लिङ्ग	४१	४०
विभक्तिविचार	४२	४१
स्वरान्त तथा व्यञ्जनान्त प्रातिपदिक	४३	४३

#### स्वरान्त संज्ञार्थ

अकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४४	४४
आकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४५	४५
इकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४६	४६
ईकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४७	४६



विषय	सेषदान	
उकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४८	
ऊकारान्त पुलिङ्ग शब्द	४९	
अकारान्त पुलिङ्ग शब्द	५०	
ऐकारान्त पुलिङ्ग शब्द	५१	
ओकारान्त पुलिङ्ग शब्द	५२	
औकारान्त पुलिङ्ग शब्द	५३	
अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	५४	
इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	५५	
उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	५६	
अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	५७	
आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५८	
इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५९	
ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	६० ६१	
उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	६२	६६ ६७
ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	६३	६८
अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	६४	६९
अन्य स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	६५	७०
व्यञ्जनान्त सक्षारप		७१
अकारान्त शब्द	६६	७२
इकारान्त शब्द	६७	७३
उकारान्त शब्द	६८	७४

# PREFACE

Several Grammars of Sanskrit written in English have been in use in Northern India at our Schools and Colleges. With the adoption of the vernaculars, however, as the media of instruction and examination, there was felt a necessity of a standard Sanskrit Grammar in Hindi. The present work is primarily intended to supply this need.

It is impossible to say anything original in Sanskrit grammar. But there may be some originality with respect to the treatment of the subject matter. An effort has been made in this work to compare the Sanskrit usage with that of Hindi and thus to impress the student with the points of difference. This *comparative* method, I hope, will eliminate Hindism from Sanskrit composition which a teacher so often notices in students' exercises. An endeavour has also been made to explain the technical terms of Sanskrit Grammar. The following are some of the other points which have been kept in view.

The *sū'ras* have been quoted in the footnotes throughout in order to enable the students to have the whole

विषय	मेकशन	पृष्ठ
दकारान्त शब्द	६६	८७
घकारान्त शब्द	७०	८६
नकारान्त शब्द	७१	९०
पकारान्त शब्द	७२	१००
भकारान्त शब्द	७३	१०१
रकारान्त शब्द	७४	१०२
वकारान्त शब्द	७५	१०३
शकारान्त शब्द	७६	१०४
षकारान्त शब्द	७७	१०७
सकारान्त शब्द	७८	१०८
हकारान्त शब्द	७९	११६

### चतुर्थ सोपान

#### सर्वनाम विचार

सर्वनाम लक्षण	८०	११७
उत्तम पुरुषवाची ( अस्मद् )	८१	११८
मध्यमपुरुषवाची ( युष्मद् )	८२	११९
अन्यपुरुषवाची ( भवत् )	८३	१२०
इदम्, एतद्, तद् और अदस्	८४	१२१
सम्बन्धसूचक ' यद् ' शब्द	८५	१२६
रतवाचक ' किम् ' शब्द	८६	१२१

idea in a concise form. The names of suffixes, etc., as used by Panini, have been retained in their original form e.g., *lyap* has been written as such and not as *ya*. This was felt necessary since the student feels confounded to find and to use the technical terms in higher classes when his training in the lower classes was different.

Copious examples have been adduced to elucidate the rules particularly in *sandhi*, declension and conjugation. The numerals have been treated in great detail since it is noticed that the students even in the University classes commit mistakes in them. The treatment of the use of cases is full and the *sūtras* in this case have been given as head lines rather than as footnotes since they are the only sure guide for the student to understand the complicated system of case use. The *samāsa*, *taddhita* and *krdanta* have been explained almost exhaustively. Considerable attention has been paid to treat the verb in all its aspects and it has, therefore, taken up about one-third of the book. Small but informing chapters on gender and indeclinables have been added and will, it is hoped, be found useful.

Of the three appendices the first gives a very brief account of the Sanskrit grammarians, the second treats

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
निजवाचक सर्वनाम	८७	१३३
निश्चयवाचक सर्वनाम	८८	१३४

## पञ्चम सोपान

### विशेषण विचार

विशेषण की विभक्ति, लिङ्ग तथा घटन	८९	१३६
सार्वनामिक विशेषण	९०	१३७
सम्बन्धसूचक सार्वनामिक विशेषण	९१	१३८
प्रकारवाचक विशेषण	९२	१४०
परिमाणसूचक विशेषण	९३	१४२
संख्यासूचक विशेषण	९४	१४३
सर्व शब्द के रूप	९५	१४४
अल्प, अर्ध, नेम, सम आदि	९६	१४६
पूरक संख्यावाचक विशेषण		
( प्रथम, चरम इत्यादि )	९६ क	१४६
कतिपय शब्द	९६ ख	१४७
तीस प्रत्ययान्त शब्दों के रूप	९६ ग	१४७
उभ, उभय, द्वितय आदि	९७	१४८
संस्कृत की गिनती	९८	१५०
गिनती शब्दों के रूप	९९	१५३
पूरक संख्यावाची शब्दों के रूप	१००	१५१

of prosody and the third gives the transliteration alphabet

No effort has thus been spared to make the book as useful as possible. The fulness of the treatment together with the choice of the type and spacings has increased the bulk of the book which I hope will not be grudged.

The subject matter has been put into two grades—one for the lower classes being in bolder type than the other which is for the higher classes.

In preparing this book I have freely consulted the existing grammars of Sanskrit, particularly Kale's Higher Sanskrit Grammar. My best thanks are, therefore, due to their writers. My pupil, Pt Ram Krishna Shukla, M A, Head Pandit, C A V High School, has kindly collaborated with me all through in the preparation of this book and has also looked through the proofs. But for his enthusiasm, industry and disinterested work it would not have been possible to bring out the work this year.

I tender my most respectful thanks to my revered teacher, Mahamahopādhyaya Dr Ganganatha Jha for his kind permission to dedicate the book to him.





It is trusted that the work will prove useful Any suggestions for its improvement will be thankfully accepted

BABU RAM SAKSENA

## दशम सोपान

## क्रिया—विचार ( उत्तरार्ध )

विषय	संकेत	पृष्ठ
कर्मवाच्य, भाववाच्य	१६१	४७३-४८१
प्रत्ययान्त धातु	१६३	४८१
णिजन्त	१६४	४८२
सन्नन्त	१६५	४८२
यटन्त	१६६	४८८
नामधातु	१६७	५००
क्यच् प्रत्यय	१६८	५००
क्यच् प्रत्यय	१६९	५०२
आत्मनेपद तथा परस्मैपद व्यवस्था	१७०	५०२

## एकादश सोपान

## शुद्धन्त—विचार

कृत् कण्ठ	१७१	५०६
कृत्य प्रत्यय	१७२	५१०
तभ्यत्, तन्न्य, अनीयत्	१७३	५१२
यत् प्रत्यय	१७४	५१४
क्यच् प्रत्यय	१७५	५१५
क्यच् प्रत्यय	१७६	५१६
भूतकाल के कृत् प्रत्यय	१७७	५१६

---

“ यद्यपि बहु नाधीपे पठ पुत्र तथापि व्याकरणम् ।  
स्वजनः श्वजनो माभूत्सकलः शकलः सकृच्छकृत् ॥”

---





## स्त्रीप्रथम

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
टाप्	११७	१४८
टीप्	११८	१४९
टीप्	११९	१५०

## त्रयोदश सोपान

## अन्यय—विचार

अन्यय लक्षण	२००	१६१
अपमर्त	२०१	१६२
मिमाविशेषण	२०२	१६६
समुच्चयबोधक अन्यय	२०३	१७१
मनोविकारसूचक अन्यय	२०४	१७२
प्रकीर्णक अन्यय	२०५	१७३

## परिशेष

संस्कृत भाषा के पैयाकरण	१	१७५
छन्द	२	१८७
रोमा अक्षरों में संस्कृत	३	१८६

# संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका

## प्रथम सोपान

### वर्ण विचार

१- 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है—संस्कार की हुई, परि-  
मार्जित, शुद्ध वस्तु । सम्प्रति 'संस्कृत' शब्द में आर्यों की साहि-  
त्यिक भाषा का बोध होता है । यह भाषा प्राचीन काल में आर्य  
परिदूतों की बोली थी और इस के ही द्वारा चिरकाल तक आर्य-  
विद्वानों का परस्पर व्यवहार होता था । जन साधारण की भाषा  
का नाम 'प्राकृत' था । संस्कृत भाषा का महत्त्व विशेषतः आज  
भी है, क्योंकि आर्य सभ्यता के घातक अधिकांश ग्रन्थ इसी में हैं  
और इसी के ज्ञान से उन तक पहुँच हो सकती है ।

२- 'व्याकरण' का अर्थ है—किसी वस्तु के दुरुपे दुकड़े  
करके उसका ठीक स्वरूप दिखाना । यह शब्द 'भाषा' के सम्बन्ध  
में ही अधिक प्रयोग में आता है । यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा  
शास्त्रों का समूह है । वाक्य कोई बड़े होते हैं, कोई छोटे । उन्ने वाक्य



हिन्दी भाषा को लें । जब हम सभाल २ कर बोलते हैं तब तो कहते हैं—बार् ले गया, मार डाला, पहुँच् जाऊँगा । किन्तु इन्हीं वाक्यों को यदि बहुत जल्दी में बोलें तो उच्चारण इस प्रकार होगा—बोल ले गया, माड डाला, पहुँज् जाऊँगा । इसी प्रकार जितनी बाल बाल की भाषाएँ हैं उनमें परिवर्तन होता है । साधारण यका इस परिवर्तन को नहीं जान पाता, किन्तु यदि हम ध्यान पूर्वक अपनी अथवा दूसरे की धाली को सुनें तो हमें इस कथन के सत्य का निश्चय हो जायगा । समृद्ध भाषा में इस प्रकार के परिवर्तन को “सन्धि” कहते हैं । सन्धि का साधारण अर्थ है “मेल” । दो शब्दों के निकट आने से जो मेल उत्पन्न होता है उसे इसीलिए सन्धि कहते हैं । सन्धि के लिए दोनों शब्द एक दूसरे के पास २ सटे हुए होने चाहिए, दूरवर्ती शब्दों में सन्धि नहीं हो सकती । इस लिए समृद्ध भाषा में सन्धि का नियम यह है कि जिन शब्दों में निकटता की गतिविधि हो उनमें सन्धि अवश्य है, जहाँ निकटता घनिष्ठ न हो वहाँ सन्धि करना न करना बोलनेवाले की इच्छा पर निर्भर है । नियम है —

एकपद के भिन्न भिन्न अवयवों में, धातु और उपसर्ग में और समास में सन्धि अवश्य होनी चाहिए, धातु के अलग २ शब्दों के

१ सहितैरूपदे नित्या नित्या धातुपमर्गयो ।

नित्या समासे वाक्ये तु सा विग्रहामपेक्षते ॥



बीच में सन्धि करना न करना बोलनेवाले की इच्छा पर है।  
उदाहरणार्थ—

एक पद—पो + अक = पाक ।

उपसर्ग और धातु—नि + अपठत् = न्यपठत्, उत + अलोक  
यत् = उदलोकयत् ।

समास—कृष्ण + अश्वम् = कृष्णाश्वम्, श्री + ईश = श्रीश ।

वाक्य—राम गच्छति वनम्, अथवा रामो गच्छति वनम् ।

६ सन्धि के कारण नीचे लिखे परिवर्तन उपस्थित हो सकते हैं—

( १ ) लोप—प्रथम शब्द के अन्तिम अक्षर का ( यथा राम-  
आयाति = राम आयाति ), अथवा द्वितीय शब्द के प्रथम अक्षर का  
( यथा दोष + अस्ति = दोषोऽस्ति ) ।

( २ ) ट्रेनो के स्थान में कोई नया वर्ण ( यथा, रमा + ईश =

वाक्य में जो विवचा दी गई है, इसको भी अच्छी शैली के लेखक  
उचित नहीं समझते हैं और विवचा रहते हुए भी सन्धि करते ही हैं। पद्य  
में तो यदि सन्धि का अवकाश हो और न की जावे तो उसे विसन्धि दोष  
कहते हैं—

न सहिता विषयामोत्यभन्यानपदेपुयसद्विमन्धोति निर्दिष्टम् (कान्यादर्श)

# संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका

## प्रथम सोपान

### वर्ण विचार

१-‘संस्कृत’ शब्द का अर्थ है—संस्कार की हुई, परि-  
मार्जित, शुद्ध वस्तु। सम्प्रति ‘संस्कृत’ शब्द से आर्यों की साहि-  
त्यिक भाषा का बोध होता है। यह भाषा प्राचीन काल में आर्य  
परिष्ठितों की बोली थी और इस के ही द्वारा विरकाल तक आर्य-  
विद्वानों का परस्पर व्यवहार होता था। जन साधारण की भाषा  
का नाम ‘प्राकृत’ था। संस्कृत भाषा का महत्त्व विशेषतः आज  
भी है, क्योंकि आर्य सभ्यता के घातक अधिकांश ग्रन्थ इसी में हैं  
और इसी के ज्ञान से उन तक पहुँच हो सकती है।

२-‘व्याकरण’ का अर्थ है—किसी वस्तु के ठीक-ठीक  
करके उसका ठीक स्वरूप दिखाना। यह शब्द ‘भाषा’ के सम्बन्ध  
में ही अधिक प्रयोग में आता है। यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा  
वाक्यों का समूह है। वाक्य कोई बड़े होते हैं, कोई छोटे। व

रमेश = ), अथवा दो में से किसी एक के स्थान में तथा गर्ण  
( यथा, नि+अवसत्=न्यवसत्, कस्मिन्+चित्=कस्मिन्चित् )।

( ३ ) दो में से एक का द्वित्व ( यथा, एकस्मिन्+अवसरे=  
एकस्मिन्नवसरे )

ऊपर बताया जा चुका है कि कोई भी अक्षर विसर्ग से आरम्भ नहीं हो सकता । शब्दों की निकटता इस लिए नीचे लिखे प्रकारों की होगी —

( १ ) जहाँ प्रथम शब्द का अन्तिम वर्ण तथा द्वितीय का प्रथम वर्ण दोनों स्वर हों ।

( २ ) जहाँ दो में से एक स्वर हो एक व्यञ्जन ।

( ३ ) जहाँ दोनों व्यञ्जन हों ।

( ४ ) जहाँ प्रथम का अन्तिम विसर्ग हो और द्वितीय का प्रथम स्वर अथवा व्यञ्जन ।

इनमें से ( १ ) को स्वर-सन्धि, ( २ ) और ( ३ ) को व्यञ्जन सन्धि और ( ४ ) को विसर्ग-सन्धि कहते हैं ।

बहुधा छोटे २ वाक्यों के सुसम्बद्ध समूह होते हैं। वस्तुतः वाक्य ही भाषा का आधार है। वाक्य शब्दों का समूह होता है। प्रत्येक शब्द में कई वर्ण होते हैं जिनको अक्षर भी कहते हैं। 'अक्षर' शब्द का अर्थ है अविनाशी—जिसका कभी नाश न हो। वर्ण को यह नाम इसलिए दिया जाता है, क्योंकि प्रत्येक नाद (sound) अविनश्यर है। यदि किसी शब्द का उच्चारण करें तो उसके अक्षर उच्चारण काल में 'नाद' कहलायेंगे और उस दशा में शब्द नादों का समूह होगा। सृष्टि में इन नादों का भण्डार अनन्त है। प्रत्येक भाषा एक परिमित संख्या में ही नादों का प्रयोग करती है। उदाहरणार्थ, चीनी भाषा में बहुत से ऐसे नाद हैं जो संस्कृत भाषा में नहीं, संस्कृत में कई ऐसे हैं जो फारसी, अंगरेजी आदि में नहीं।

३-संस्कृत भाषा में—जिन अक्षरों का उपयोग होता है वे ये हैं —

अ	इ	उ	ऋ	ॠ	—ह्रस्व (सादे)	} स्वर
ए	ऐ	ओ	औ		—मिश्रधिरुत दीर्घ Compound	
आ	ई	ऊ	ऋ		—दीर्घ (सादे)	
क	ख	ग	घ	ङ	—कवर्ग (कु)	
च	छ	ज	झ	ञ	—चवर्ग (चु)	
ट	ठ	ड	ढ	ण	—टवर्ग (टु)	

## स्वर-सन्धि

७—यदि साधारण ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर के अनन्तर सर्वर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर आवे तो दोनों के स्थान में सर्वर्ण दीर्घ स्वर होता है, यथा —

दैय + अरि. = दैन्यारि ।

यहाँ पर "य" के "अकार" के पञ्चात् "अरि" का ह्रस्व "अकार" आता है, इस लिए उपर्युक्त नियम के अनुसार दोनों ह्रस्व अकारों के स्थान में दीर्घ "आ" हो गया ।

तव + आकार = तवाकार ।

यहाँ पर "व" में जो ह्रस्व "अकार" है उसके उपरान्त "आकार" का दीर्घ "आ" आता है, इस लिए उपर्युक्त नियम के अनुसार दोनों के (ह्रस्व "अ" तथा दीर्घ "आ" के ) स्थान में दीर्घ "आ" हो गया ।

यदा + अभवत् = यदाभवत् ।

यहाँ पर "दा" में जो दीर्घ "आकार" है उसके बाद "अभवत्" का ह्रस्व "अ" आता है, इस लिए इसी नियम के अनुसार दोनों के (दीर्घ "आ" तथा ह्रस्व "अ" के) स्थान में दीर्घ "आ" हो गया ।

त	थ	द	ध	न	—तवर्ग ( तु )
प	फ	ब	भ	म	—पवर्ग ( पु )
य	र	ल	व		—अन्तस्थ
श	ष	स	ह		—ऊष्म वर्ण
					—अनुस्वार
					—अनुनासिक
					—विसा

अइउण्, ऋलृक्, एओट्, ऐऔच्,

हयवरट्, लयू,

जमङणनम्,

ऋभम्, घढधप्, जघगङ्दश, खफग्ढथचटतथ्, कपयू,

शपमर्, हल् ।

यही चौदह सूत्र माहेश्वर कहलाते हैं, यत पाणिनि को माहेश्वर की कृपा से प्राप्त हुए थे । ऐसा सम्प्रदाय है । इनको प्रत्याहार सूत्र भी कहते हैं, क्योंकि इनके द्वारा मरलता से और सूक्ष्म रीति से सब अक्षरों का योग हो जाता है । ऊपर के जो अक्षर हल् ह वे इह कहलाते हैं, जैम य्, क आदि । इनके द्वारा प्रत्याहार बनते हैं । कोई वण लेकर उसके साथ यदि इत् जोड़ दें तो उस अक्षर के और उस इत् के बीच के सभी वर्णों का ( बीच में पड़ने वाले इत्तों को छोड़कर ) याध होता है, यथा अक् से अ इ उ ऋ लृ का, शल् से श ष स ह का ।



विद्या + आतुर = विद्यातुर ।

यहाँ पर "द्या" में जो "आकार" है उसके बाद "आतुर" का दीर्घ "आ" आता है, इस लिए इसी नियम के अनुसार दोनों दीर्घ "आ" के स्थान में दीर्घ "आ" हो गया । इसी प्रकार ।

इति	+	इव	=	इतीव ।
अपि	+	ईक्षते	=	अपीक्षते ।
श्री	+	इंश	=	श्रींश ।
राक्षी	+	इह	=	राक्षीह ।
विष्णु	+	उदय	=	विष्णुदय ।
साधु	+	ऊचु	=	साधूचु ।
चमू	+	ऊर्ज	=	चमूर्ज ।
वधू	+	उपरि	=	वधूपरि ।
अभिमन्यु	+	उपाख्यानम्	=	अभिमन्युपाख्यानम् ।
शिशु	+	उदरे	=	शिशूदरे ।
कर्तृ	+	मृत्तु	=	कर्तृमृत्तु ।
कृ	+	मृकार	=	कृमृकार ।
होतृ	+	लकार	=	होतृलकार ।

इन उदाहरणों में भी समझ लेना चाहिए ।

यदि श्च या ए के बाद ह्रस्व श्च या लृ आवे तो दोनों के स्थान में :

श्च या लृ भी स्वेच्छा से कर सकते हैं, जैसे—

‘स्वर’ का अर्थ है, ऐसा वर्ण जिसका उच्चारण अपने आप हो सके, उसमें दूसरे वर्ण से मिलने की अपेक्षा न हो। ऐसे वर्ण जो बिना किसी दूसरे वर्ण (अर्थात् स्वर) से मिले हुए उच्चारण नहीं किये जा सकते ‘व्यञ्जन’ कहलाते हैं। ऊपर क से लेकर ह तक के सारे वर्ण व्यञ्जन हैं। क में अ मिला हुआ है, इसका शुद्ध रूप केवल क होगा। स्वरों का दूसरा नाम “अच्” भी है, यत् पाणिनि के क्रमानुसार स्वरयाची प्रत्याहार सूत्र सब इसके अन्तर्गत आजाते हैं (प्रथम सूत्र का प्रथम अक्षर अ और चतुर्थ सूत्र का अन्तिम अक्षर च्)। इसी प्रकार व्यञ्जन का दूसरा नाम “हल्” भी है, यद्यपि व्यञ्जनयाची प्रत्याहार सूत्र सब (८ से १४ तक) इसके अन्तर्गत आजाते हैं। इसी कारण व्यञ्जन सूचक चिह्न (्) को भी हल् कहते हैं।

स्वर तीन प्रकार के होते हैं—ह्रस्व, दीर्घ और मिथश्चिह्नित दीर्घ। मिथश्चिह्नित दीर्घ किन्हीं दो भिन्न स्वरों के मिश्रण विशेष से बनता है, जैसे अ+इ=ए। स्वर के उच्चारण में यदि एक मात्रा समय लगे तो वह ह्रस्व, जैसे अ, और यदि दो मात्रा समय लगे तो दीर्घ कहलाता है, जैसे आ। मिथश्चिह्नित स्वर दीर्घ होते हैं।

यदि तीन मात्रा समय लगे तो ‘लुप्त’ कहलाता है, इस प्रकार क स्वर का प्रयोग प्रायः पुकारने में होता है, यथा राम ३।

सभी स्वर फिर दो प्रकार के होते हैं। एक अनुनासिक जिनमें नासिका से भी उच्चारण में कुछ रहायता ली जाती है, यथा अं, औं,

होतृ + प्रकारः = होतृकार या होतृप्रकार ।

इस प्रकार सब मिला कर तीन रूप हुए —

( १ ) होतृकार ( २ ) होतृकार ( ३ ) होतृप्रकार ।

होतृ + लृकार = होतृलृकार अथवा होतृलकार ।

८—यदि अ या आ के बाद ( १ ) ह्रस्व इ या दीर्घ ई आवे तो दोनों के स्थान में “ए” हो जाता है, ( २ ) यदि ह्रस्व उ या दीर्घ ऊ आवे तो दोनों के स्थान में “ओ” हो जाता है, ( ३ ) यदि ह्रस्व ऋ या दीर्घ ॠ आवे तो दोनों के स्थान में “अर्” हो जाता है, ( ४ ) यदि लृ आवे तो दोनों के स्थान में “अल्” हो जाता है। इस सन्धि का नाम गुण है। जैसे—

उप + इन्द्र = उपेन्द्र ।

यहाँ पर उप के “प” में जो “अ” है उसके बाद “इन्द्र” की “इ” आती है, इसलिए इस नियम के अनुसार दोनों के ( प में के “अ”, और “इन्द्र” में की “इ” के) स्थान में “ए” हो गया। इसी प्रकार ।

गण + ईश = गणेश ।

देव + इन्द्र = देवेन्द्र ।

नर + ईश = नरेश ।

ई, ऐ आदि और दूसरे साद्वर्ग अर्थात् अनुनासिक यथा अ, आ, ए, ऐ आदि ।

व्यंजनो के भी कई भेद है—क से लेकर म तक के “स्पर्श” कहलाते हैं । इनमें कवर्ग आदि पाँच वर्ग हैं । य र ल व ‘अंत स्थ’ हैं, अर्थात् स्वर और व्यंजन के बीच के हैं । श ष स ह “ऊष्म” हैं, अर्थात् इनका उच्चारण करने के लिए भीतर से जरा अधिक जोर से प्रवास लानी पड़ती है । पाँचों घणो के प्रथम और द्वितीय अक्षर ( क, ख, च, छ, ट, ठ, ड, ध, प, फ ) तथा ऊष्म धर्गों को “पृथ्व्यंजन” और शेष को “मृदुव्यंजन” भी कहते हैं ।

विसर्ग को वस्तुतः एक छोटा ह्रस्वमन्त्र माना चाहिए । यह सदा किसी स्वर के अन्त में आता है । यह स् अथवा र् का एक रूपान्तर मात्र है, किन्तु उच्चारण की विशेषता के कारण इसका व्यक्तित्व अलग है ।

क् और ख् के पूर्व कभी ० एक अर्धविसर्ग सा उच्चारण के प्रयोग में आता है उसे ( ॐ ) इस चिह्न द्वारा व्यक्त करते हैं और उसकी सहायता जिह्वामूलीय बताते हैं । इसी प्रकार से प् और फ् के पूर्व वाले नाद को उपध्मानीय कहते हैं और उन्नी ( ॐ ) चिह्न से व्यक्त करते हैं ।

अनुस्वार यदि पञ्चवर्गीय अक्षरों के पूर्व आवे तो उसका उच्चारण उस वर्ग के पञ्चम अक्षर सा होता है, यदि अन्यत्र आवे

पुन + इष्टि = पुनैष्टि } इत्यादि को सम्भन्ना चाहिए ।  
ईश्वर + इच्छा = ईश्वरेच्छा

रमा + ईश = रमेश ।

यहाँ पर “रमा” के “मा” में जो “आ” है उसके बाद “ईश” का “ईकार” आता है, इस लिए दोनों के ( “अ” और “ई” के ) स्थान में “ए” हो गया । इसी प्रकार —

गङ्गा + ईश्वर = गङ्गेश्वर ।

ललना + इच्छति = ललनेच्छति ।

द्वारका + ईदृज = द्वारकेदृज ।

पाठशाला + इत = पाठशालेत ।

इत्यादि उदाहरणों को सम्भन्ना चाहिए ।

तडाग + उदकम् = तडागोदकम् ।

यहाँ पर तडाग के “ग” में जो “अ” है उसके बाद “उदकम्” का “उ” आता है, इस लिए दोनों के ( “अ” और “उ” के ) स्थान में “ओ” हो गया । इसी प्रकार —

वृत्त + उपरि = वृत्तीपरि ।

गगन + ऊर्ध्वम् = गगनोर्ध्वम् ।

विशाल + उदरम् = विशालोदरम् ।

अत्र + उद्देशे = अत्रोद्देशे ।

अस्य + उल्लेख = अस्योल्लेख ।

तो एक विभिन्न ही उच्चारण होता है, इस कारण इसका व्यक्तिक भी अलग है।

व्यंजनो का एक भेद अल्पप्राण और महाप्राण में भी किया जाता है। जिनके उच्चारण में कम साँस की आवश्यकता होती है वे अल्पप्राण, और जिनमें अधिक की वे महाप्राण होते हैं। वर्णों के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ण तथा अन्त स्थ अल्पप्राण हैं और शेष—अर्थात् वर्णों के द्वितीय और चतुर्थ तथा श, ष, स, ह महाप्राण हैं।

४—उच्चारण करने का उपाय यह है कि अन्दर से आती हुई श्वास को स्वच्छन्दता से न निकाल कर उसे मुख के अवयव विशेषों से तथा नासिका से विकृत करके निकाला जाय। यह विकार उत्पन्न करने में मुख के भाग तथा नासिका प्रयोग में आते हैं। विकार के कारण ही नादों में भेद पड़ जाता है। जिनजिन अवयवों में विकार उत्पन्न किया जाता है उनकी उन नादों का स्थान कहते हैं।

हमारे वर्णों के स्थान इस प्रकार हैं।

अ	आ	विसर्ग	क	ख	ग	घ	ङ	च	—कण्ठ
इ	ई	य	च	छ	ज	झ	ञ	श	—तालु
ऋ	ॠ	र	ट	ठ	ड	ढ	ण	प	—मूर्धा
लृ		ल	त	थ	द	ध	न	स	—दाँत
उ	ऊ	उपध्मानीय	प	फ	ब	भ	म		—श्रोत्र

नगर	+	उपकण्ठे	=	नगरोपकण्ठे ।
शब्द	+	उच्चारणम्	=	शब्दोच्चारणम् ।
सरल	+	उपाय	=	सरलोपाय ।
सम्भार	+	उपकार	=	ससारोपकार ।
युद्धाय	+	उद्यत	=	युद्धयोद्यत ।
सशाम	+	उपकरणम्	=	सशामोपकरणम्
सूर्य	+	उदय	=	सूर्योदय ।
शिशिर	+	उपचार	=	शिशिरोपचार ।
सागर	+	ऊर्मि	=	सागरोर्मि ।
नघ	+	ऊढा	=	नघोढा ।
मम	+	ऊरु	=	ममोरु ।
वृषभ	+	ऊढ	=	वृषभोढ ।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिये ।

गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम् ।

यहाँ पर गङ्गा के “ङ्गा” में जो “आ” है उसके बाद “उदकम्” का “उ” आता है, इसलिए दोनों के (“आ” और “उ” के) स्थान में “ओ” हो गया । इसी प्रकार —

मायया	+	ऊर्जस्वि	=	माययोर्जस्वि ।
भार्या	+	ऊरु	=	भार्योरु ।
मया	+	ऊह्यते	=	मयोह्यते ।

अ, म, ड, ण, न—इनके उच्चारण में नासिका की भी महायता आवश्यक है, इस प्रकार ज् के उच्चारण स्थान मिलकर तालु और नासिका दोनों हैं, ट के कण्ठ और नासिका—इत्यादि ।

ए	और	ऐ—कण्ठ और तालु
ओ	और	औ—कण्ठ और ओष्ठ
व		—दंत और ओष्ठ
जिह्वामूलीय		—का जिह्वा की जड़
अनुस्वार		—का स्थान नासिका है ।

एक ही स्थान से निकलनेवाले घर्ण "सवर्ण" कहलाते हैं । भिन्न स्थानों से उच्चारण किये हुए घर्ण परस्पर असवर्ण कहलाते हैं ।

ऊपर वर्णों के उच्चारण के स्थान मस्मृत वेयाकरणों के अनुसार दिये गये हैं । आज कल इनके उच्चारण में किसी किसी वर्ण में भेद नष्ट गया है, या अक्षर का उच्चारण हम लोग शुद्ध नहीं करते । कोई रि करते हैं कोई र । का उच्चारण मूर्धा ( तालु के सब से ऊपर के भाग ) से होना

रुहविमर्जनीयाना कण्ठ ।

बुधशाना तालु ।

सुरपाणा मूर्धा ।

तुलसाना दन्ता ।

पुष्पमानीयानाम् ओष्ठौ ।

मरुणानां नासिका च ।

एदंतो कण्ठतालु ।

ओदंतो कण्ठोष्ठम् ।

वकारस्य दन्तोष्ठम् ।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ।

नासिकानुस्वारस्य ।



मया	+	उपक्रियते	=	मयोपक्रियते ।
भार्यो	+	उपजीवी	=	भार्योपजीवी ।
मया	+	उत्तम्	=	मयोत्तम् ।
राज्ञा	+	उच्यते	=	राज्ञोच्यते ।
राधा	+	उक्ति	=	राधोक्ति ।
यमुना	+	उद्गम	=	यमुनोद्गम ।
सीता	+	उत्तरम्	=	सीतोत्तरम् ।
शय्या	+	उत्पन्ने	=	शय्योत्पन्ने ।
शिला	+	उच्ये	=	शिलोच्ये ।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिए ।

कृष्ण + अदि = कृष्णदि ।

यहाँ पर “ण” में जो “अ” है, उसके बाद “अदि” का “अ” आता है, इसलिए इसी नियम के अनुसार दोनों ( “अ” और “अ” ) के स्थान में “अर्” हो गया । इसी प्रकार —

ग्रीष्म	+	अतु	=	ग्रीष्मर्तु ।
गीत	+	अर्ता	=	गीतर्ता ।
ब्रह्म	+	अर्पि	=	ब्रह्मर्पि ।
महा	+	अर्पि	=	महर्पि ।
महा	+	अर्दि	=	महर्दि ।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिए ।

चाहिए किन्तु यहूधा लोग इसे श् की तरह बोलते हैं और कोई २ स की तरह । श् का उच्चारण तो साहित्यिक सभृत् के समय में ही लुप्तप्राय होगया था ।

वर्णमालाओं में ह के उपरान्त यहूधा च, य, ज देने की रीति है, किन्तु ये शुद्ध वर्ण नहीं हैं—दो वर्णों के मेल हैं ।

च = फ् + य, य = त् + र, ज = ज् + य । इसकारण इनको वर्णमाला में सम्मिलित करना भूल है ।

## द्वितीय सोपान

### सन्धि विचार

५—ऊपर कहा जाचुका है कि प्रत्येक वाक्य में कई शब्द रहते हैं । सभृत् के शब्द किसी भी स्वर अथवा व्यञ्जन से आरम्भ होकर, किसी स्वर, व्यञ्जन, अनुस्वार अथवा विसर्ग में अन्त हो सकते हैं ।

दो शब्द जब पास पास आते हैं तो एक दूसरे की निकटता के कारण पहले शब्द के अन्तिम वर्ण में अथवा दूसरे शब्द के प्रथम वर्ण में अथवा दोनों में कुछ परिवर्तन हो जाता है । उदाहरणार्थ

तव + लृकार = तवलृकार ।

यहाँ पर “तव” के “व” में जो “अ” है उसके बाद “लृकार” का “लृ” आता है, इसी में दोनों ( “अ” और “लृ” ) के स्थान में “अल्” हो गया ।

कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ पर यह नियम नहीं लगता, वे नीचे दिखाए जाते हैं —

( फ ) अक्ष + कहिनी = अक्षौहिणी । यहाँ पर “न” के स्थान में “य” कैसे हो गया, यह आगे बताया जायगा ।

( र ) जब “स्व” शब्द के बाद “ईर्” और “ईरिन्” आते हैं तो ‘स्व’ के ‘अकार’ के, और “ ईर् ” व “ ईरिन् ” के “ईंकार” के स्थान में “ऐ” होजाता है, जैसे —

स्व + ईर् = स्वैर् ( स्वेच्छाचारी ) ।

स्व + ईरिणी = स्वैरिणी ।

स्व + ईरम् = स्वैरम् ।

स्व + ईरी = स्वैरी ( जिसका स्वेच्छानुसार आचरण करने का स्वभाव हो ) ।

( ग ) यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद ऐसी धातु जिसके आदि में हस् “अ” हो आवे तो “अ” और “अ” के स्थान में “आर्” हो जाते हैं, जैसे —

१ उपसर्गादति धातौ ॥ ६ । १ । ६१ ॥

उप + अच्युति = उपाच्यन्ति ।

यहाँ पर “उप” उपसर्ग है उसके “प” में जो “अ” है उसके बाद “अच्युति” का “अ” आता है, इसलिए इस नियम के अनुसार दोनों ( “अ” और “अ” ) के स्थान में “आर्” होगया ।

इसी प्रकार, प्र + अच्युति = प्राच्यन्ति ।

किन्तु यदि नामधातु हो तो “आर्” विकल्प करके होगा, जैसे —

प्र + अर्पणीयति = प्रार्पणीयति ( यैल की तरह आचरण करता है ) ।

९—जब “अ” अथवा “आ” के बाद ( १ ) “ए” या “ऐ” आये तो दोनों के स्थान में “ऐ” हो जाता है, और ( २ ) जब “ओ” या “औ” आये तो दोनों के स्थान में “औ” हो जाता है । इस सन्धि का नाम वृद्धि है ।

क्रमश उदाहरण

कृष्ण	+	एकत्वम्	=	कृष्णैकत्वम् ।
देव	+	ऐश्वर्यम्	=	देवैश्वर्यम् ।
मम	+	एक	=	ममेक ।
अत्र	+	एकदा	=	अत्रैकदा ।
इह	+	एति	=	इहैति ।
तत्र	+	एष	=	तत्रैष ।

॥ घनाच् गण, घनाद् गण, घनाद् कृण भी ।

(तच्छिव, तच्छिव, घनाच्छिव आदि में द्व अथवा त के स्थान में नियम १४ के अनुसार च् हो गया)

॥ २२—पदान्त म् के बाद यदि व्यञ्जन आवे तो उसके स्थान में अनुस्वार करना या न करना अपनी इच्छा पर रहता है जैसे —

हरिम् + घन्दे = हरिघन्दे ।

गृहम् + चलति = गृहचलति ।

किन्तु गम् + य + ते = गम्यते, न कि गयते होगा, क्योंकि म् पद के अन्त में नहीं है बल्कि बीच में है। उसी तरह से सम् + राट् = सम्राट्। यहाँ भी अनुस्वार न होगा, क्योंकि म् पद के अन्त में नहीं है।

२३—अपदान्त म्, न् के बाद यदि अनुनासिक व्यञ्जन तथा अन्तस्य और ह् को छोड़ कर कोई भी व्यञ्जन आवे तो म्, न् के स्थान में अनुस्वार हो जाता है, जैसे —

आक्रम् + स्यते = आक्रमस्यते ।

यशान् + सि = यशसि ।

परन्तु मन् + यते = मन्यते, न कि मयते होगा, क्योंकि यहाँ पर न् के द्वय आ जाता है जो कि अतस्य है।

१ मोऽनुस्वार । ८ । १ । २१ ।

२ नश्चापदान्तस्य झलि । ८ । ४ । २४ ।

तदा	+	एकदा	=	तदैकदा ।
सा	+	एव	=	सैव
कदा	+	एते	=	कटैते ।
सर्वदा	+	एकत्र	=	सर्वदैकत्र ।
इन्द्र	+	ऐरावत	=	इन्द्रैरावत ।
नर	+	ऐन्यम्	=	नरेन्यम् ।
चित्त	+	ऐकाग्र्यम्	=	चित्तैकाग्र्यम् ।
सर्गथा	+	ऐकमत्यम्	=	सर्वथैकमत्यम् ।
शब्द	+	ऐकार्थ्यम्	=	शब्दैकार्थ्यम् ।
तदा	+	ऐन्द्रजालिक	=	तदैन्द्रजालिक ।
एपा	+	ऐन्डी	=	एपैन्डी
घाला	+	ऐडकी	=	घालैडकी ।
भव	+	औपधम्	=	भवौपधम् ।
राम	+	औदार्यम्	=	रामौदार्यम् ।
विद्या	+	औत्सुन्यम्	=	विद्यौत्सुन्यम् ।
गङ्गा	+	औघ	=	गङ्गाँघ ।
कृष्ण	+	औत्करुठ्यम्	=	कृष्णौत्करुठ्यम् ।

नियमातिरेक :—

( क ) यदि असरान्त उपमगं के बाद एकारादि या ओकारादि धातु आने तो दोनों के स्थान में “ ए ” वा “ ओ ” हो जाता है, यथा —

ग्रामान् + गच्छति = ग्रामान्गच्छति ।

यहाँ पर ग्रामा गच्छति नहीं हागा, क्योंकि नू पद के अन्त में है ।

२४—यदि पद के मध्य में स्थित अनुस्वार के बाद श्, प्, च और ह् को छोड़ कर कोई भी व्यञ्जन आवे तो अनुस्वार के स्थान में सर्वदा ही उस वर्ग का पञ्चम वर्ण हो जाता है जिस वर्ग का व्यञ्जन वर्ण अनुस्वार के बाद रहता है, जैसे —

गम् + ता = ग + ता ( २३ ) = गन्ता।  
 सन् + ति = स + ति ( २३ ) = सन्ति,  
 अन्क् + इत = अक् + इत ( २३ ) = अङ्कित  
 शाम् + त = शा + त ( २३ ) = शान्त  
 सम् + कटा = स + कटा ( २३ ) = सङ्कटा  
 शम् + भु = श + भु ( २३ ) = शम्भु,  
 अन्च् + इत = अच् + इत ( २३ ) = अञ्चित

( क ) यदि अनुस्वार किसी पद के अन्त में रहे तो ऊपर वाला नियम लगाना न लगाना अपनी इच्छा पर है, जैसे —

त्वम् + करोषि = त्व करोषि या त्वङ्करोषि,  
 तृणम् + चरति = तृण चरति या तृणञ्चरति,  
 ग्रामम् + गच्छति = ग्राम गच्छति या ग्रामङ्गच्छति  
 इदम् + भवति = इद भवति या इदम्भवति,

१ अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण । ८ । ४ । २८ ।

२ वा पदान्तस्य । ८ । ४ । २९ ।

प्र + एजते = प्रेजते ।

उप + ओपति = उपोपति ।

किन्तु यदि वह धातु नामधातु हो तो विकल्प करके पृदि होती है;  
जैसे —

उप + एड्धीयति = उपेड्धीयति या उपैड्धीयति ।

प्र + ओधीयति = प्रोधीयति या प्रौधीयति ।

१०—यदि ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ तथा लृ के बाद असन्ग  
स्वर आवे तो इ, उ, ऋ, लृ के स्थान में कपश य्, घ्, र् और ल्  
हो जाते हैं, जैसे —

दधि	+	अत्र	= दध्यत्र ।
इति	+	आह	= इत्याह ।
वीजानि	+	अवपन्	= वीजान्यवपन् ।
कलि	+	आगम	= कल्यागम
मधु	+	अरि	= मध्वरि ।
गुरु	+	आदेण	= गुरादेण
प्रभु	+	आक्षा	= प्रभ्राक्षा ।
शिश्नु	+	ऐन्यम्	= शिश्नैस्यम् ।
धातृ	+	अश	= धात्रश ।
पितृ	+	आरुति	= पित्रारुति ।





सगित्	+	उदय	=	सगिमुदय ।
मान्	+	आौदार्यम्	=	मानौदार्यम् ।
लृ	+	आकृति	=	लाकृति ।

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, तथा लृ जय किसी शब्द के अन्त में रहें, और इनके बाद ह्रस्व "ऋ" आये तो सगित् करना न करना इन्त्रा पर निर्भर है। किन्तु जय सन्धि नहीं होती तो दीर्घ आ, ई, ॠ, तथा लृ ह्रस्व हो जाते हैं उन्हे —

ब्रह्मा	+	ऋषि	=	ब्रह्मर्षि, ब्रह्म ऋषि ।
सप्त	+	अपीणाम्	=	सप्तर्षीणाम्, सप्त ऋषीणाम् ।

जय ओ या औ के बाद में यकारादि प्रत्यय ( ऐसा प्रत्यय जिसके आरम्भ में 'य्' हो ) आये तो "ओ" और "औ" के स्थान में क्रम से अय् और आय् हो जाते हैं, यथा —

गो	+	यम्	=	गयम् ।
नौ	+	यम्	=	नायम् ।

११—ए, ऐ, ओ, औ के उपरान्त यदि कोई स्वर आये तो उनके स्थान में क्रम से अय्, आय्, अय्, आय् हो जाते हैं, यथा —

१ अत्यक ॥ ६।१।१२७ ॥

२ वा-तो यि प्रत्यये ॥ ६।१।७३ ॥

३ एधोऽयवायाय ॥ ६।१।७८ ॥

यह नियम नहीं लगता जैसे, रामान्, पितृन्, वृषभान्  
ऋषीन् ।

२६—यदि अ, आ को छोड़कर किसी स्वर के अनन्तर अथवा  
अन्त'स्य घर्ण अथवा कण्ठस्थानीय घर्ण अथवा ह् के  
सम्बन्धी स् या किसी दूसरे घर्ण के स्थान में आदेश किया हुआ स्  
आवे तो उस स् के स्थान में प् हो जाता है । इस विधि का नाम  
पत्वविधान है, यथा —

रामे	+	सु	=	रामेपु ।
वने	+	सु	=	वनेपु ।
ए	+	साम्	=	एपाम् ।
अन्ये	+	साम्	=	अन्येपाम् ।

इसी प्रकार मतिपु, नदीपु, वेनुपु, वधूपु, धातुपु, गोपु, ग्लोपु  
आदि जानना चाहिये ।

किन्तु राम + स्य = रामस्य, यहाँ प् नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ  
स् के पूर्व 'अ' आया है, इसी प्रकार विद्यासु में भी पत्व नहीं हुआ।  
पेस् + अति = पेसति (पिपति नहीं), क्योंकि यह स् न तो किसी  
प्रत्यय का है न आदेश का ।

(क) यदि स् पद के अन्त में हो तो पत्वविधान न होगा, यथा  
हरि ( यहाँ हरि शब्द के अनन्तर 'स्' सु प्रत्यय चाला अवश्य है,  
किन्तु पद के अन्त में है, इस कारण पत्व नहीं हुआ ) ।

२ अपदान्तस्य मूर्धन्य । इत्को । आदेशप्रत्यययो । ॥ १॥ १२, १७, १८ ।

हरे	+	ए	=	हरये ।
नै	+	अक	=	नायक ।
विष्णो	+	ए	=	विष्णावे ।
पो	+	अक	=	पायक ।

अन्तर्गत य् या ष् के ठीक पूर्व यदि अ या आ रहे और पश्चात् कोई स्वर आवे तो य् और ष् का लोप करना न करना अपनी इच्छा पर निर्भर रहता है, जैसे —

हरे	+	एहि	=	हरयेहि या हर एहि ।
विष्णो	+	इह	=	विष्णविह या विष्ण इह ।
तस्यै	+	इमानि	=	तस्यायिमानि या तस्या इमानि
श्रिये	+	उत्सुक	=	श्रियायुसुक या श्रिया उत्सुक ।
गुरो	+	उत्क	=	गुरावुत्क या गुरा उत्क ।
रात्रो	+	आगत	=	रात्रायागत या रात्रा आगत ।
मृतो	+	अक्षम्	=	मृतायक्षम् या मृता अक्षम् ।

सम्बन्ध व्यञ्जन अथवा विसर्ग के लोप हो जाने पर जब कोई दो स्वर समीप आ जायें तो उनकी आपस में सधि नहीं होती ।

१२—पदान्त एकार या ओकार के बाद यदि “अ” आवे तो “अकार” का लोप हो जाता है (और ऽ चिह्न लोप की सूचना-दाय देने को रख दिया जाता है) जैसे —

१ लोप शाकल्यस्य ॥ ८ । ३ । १६ ॥

२ ण्ड पदात्तादति ॥ ६ । १ । १०६ ॥

(ख) ऊपर वर्णित घणों में से यदि कोई वर्ण स् के ठीक पहले न हो केन्तु अनुस्वार (न् के म्याग में आया हुआ), विसर्ग, श्, प्, स् में से कोई एक और पूर्ण वर्णित घणों के बीच में आजाय तब भी पखविधि होगी, यथा —

धेनु + सि = धेनु + सि = धेनुपि ।

२७—सम् उपसर्ग के म् के उपरान्त यदि कृधातु का कोई रूप आवे तो स् के स्थान में अनुस्वार और विसर्ग दोनों मिलकर आ जाते हैं, यथा —  
वम् + कर्ता = व + कर्ता = वस्कता । कभी कभी इस अनुस्वार के स्थान में प्रनुनासिक (ँ) हो जाता है, यथा —सँस्कता अथवा सस्कता ।

२८—छ् तथा झ् के पूर्व वाले ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बीच में त् अवश्य आता है, जैसे —

शिव + छाया = शिवच्छाया ।

वृत्त + छाया = वृत्तच्छाया ।

लता + छवि = लताच्छवि ।

(क) किन्तु छ् के पूर्व आ उपसर्ग को तथा “मा” के आ को छोड़कर कोई पदान्त दीर्घ स्वर आवे तो ऊपर वाला नियम इच्छा अनुसार लगता है और नहीं भी लगता है, जैसे—

१ नुन्रविसर्जनीयशर्च्यवायेऽपि । ८ । ३ । १८ ।

२ छेच । ६ । १ । ७३ ।

३ आह् माहोश्च । दीर्घाव । पदान्ताद्वा । ६ । १ । ७४-७६ ।

स० व्या० प्र०—३

हरे + अथ = हरेऽथ । हे हरि रक्षा कीजिए ।

विष्णो + अव = विष्णोऽव । हे विष्णु रक्षा कीजिए ।

१३—यदि <sup>१</sup>प्लुत स्वर के उपरान्त अथवा प्रगृह्यसङ्गक वर्णों के उपरान्त स्वर आवे तो सन्धि नहीं होती । प्रगृह्यसङ्गक वर्णों इस प्रकार हैं —

( क ) जब कि सङ्गा अथवा सर्वनाम अथवा क्रिया के द्विवचन के अन्त में "ई" "ऊ" या "ए" रहता है तो उस "ई" "ऊ" और "ए" को प्रगृह्य कहते हैं, जैसे, हरी पत्तों, विष्णु इमो, गङ्गे अमू, पचेते इमौ ।

[ ख ] जब अदस् शब्द के मकार के बाद ई या ऊ आते हैं तो वे प्रगृह्य होते हैं, जैसे, अभी ईशा, अमू आसाते ।

[ ग ] जब कि अन्यय शोकारान्त हो तो ओ को प्रगृह्य मानते हैं, जैसे, ओहो ईशा ।

सङ्गा शब्दों के सम्बोधन के अन्त के शोकार के बाद यदि "इति" शब्द आवे तो विकल्प करके सन्धि होती है, जैसे —

१ प्लुतप्रगृह्य अचि नित्यम् ।

२ ह्रस्वदेन्तद्विवचन प्रगृह्यम् ।

३ अदसो मात् ॥ १ । १ । ११ । १२ ॥

४ निपात एकाजनाद् । ओत् । सनुदौ शाकल्यस्येतावनार्षे ॥

१ । १४-१६ ॥

३३-यदि तिरस् के बाद क्, ख्, प्, फ् आवे तो म् विकल्प करके लिया जाता है, जैसे —

तिरस् + कराति = तिरस्करोति या तिर करोति ।

३४-द्वि, त्रि और चतु पौन पुन्यवाचक क्रियाविशेषण भ्रं हैं । यदि इनके बाद क्, ख्, प्, फ् आवें तो विसर्ग के स्थान विकल्प करके प् हो जाता है, जैसे —

द्वि + करोति = द्विष्करोति या द्वि करोति

किन्तु चतु + कपालम् = चतु कपालम् ( चतुष्कपालम् नहीं )  
कपालों में धना हुआ अन्न, क्योंकि चतु क्रियाविशेषण अव्यय नहीं है ।

३५-स् के स्थान में किए हुए विसर्ग के (स् के स्थान में हुए विसर्ग के नहीं) पर्य यदि ह्रस्व “अ” आवे और बाद की “अ” अथवा मृदु व्यञ्जन आवे तो विसर्ग का “उ” हो जाता है, जैसे  
शिव + अर्च्य = शिव + उ + अर्च्य = शिवो + अर्च्य = शिवो  
इसी प्रकार

देव	+ वन्द्य	= देवो वन्द्य ।
राम	+ अस्ति	= रामोऽस्ति ।
स	+ अपि	= सोऽपि ।

१ तिरस्तोऽन्यतरस्याम् । ८ । ३ । ४२ ।

२ द्विचिन्तुरिति वृत्तोऽर्थे । ८ । ३ । ४३ ।

विष्णो + इति = विष्णुमिति, विष्ण इति, विष्णो इति ।

प्लुतो के साथ भी सन्धि नहीं होती, जैसे—एहि कृष्ण ३ अग्र गौश्वरति ।

## हल्-सन्धि

१४-जब "स्" अथवा दन्तस्थानीय कोई व्यञ्जन श्रु या किसी तालुस्थानीय व्यञ्जन के समीप आता है तो दन्तस्थानीयों के स्थान में सवर्ण तालुस्थानीय और "स्" के स्थान में "श्रु" हो जाता है, जैसे —

हरिस् + गेते = हरिशेते — हरि सोता है ।  
 राम + चिनोति = रामश्चिनोति — राम डकड़ा करता है ।  
 सत् + चित् = मच्चित् — सत्य और ज्ञान ।  
 गार्ङ्गिन् + जय = गार्ङ्गिजय — हे विष्णु जय हो ।

नियमातिरेक — जब दन्तस्थानीय व्यञ्जन "श्रु" के बाद आते हैं तो उनके स्थान में सवर्ण तालुस्थानीय नहीं होते, जैसे —

विश्रु + न = विश्रन । प्रश्रु + न = प्रश्रन ।

( ८ ) जब स् अथवा दन्तस्थानीय व्यञ्जन के बाद प या कोई मूर्धन्य वर्ण आये तो स् के स्थान में प और दन्तस्थानीय के स्थान में मूर्धन्य स्थान वाले वर्ण हो जाते हैं, जैसे —

१ लोश्चुनारु । = । ४ । ४० ।

२ प्लुना प्लु । ५ । ४ । ४१ ।



एष	+	अप्रवीत = एषोऽप्रवीत् ।
बाल	+	गन्त्रति = बालो गन्त्रति ।
हर	+	याति = हरा याति ।
वृक्ष	+	वर्धते = वृक्षा वर्धते ।

किन्तु प्रात + अप्र = प्रातरप्र । यहाँ पर विसर्ग का उ नहीं हुआ, क्योंकि यह विसर्ग र् के स्थान में किया गया है न कि स् के स्थान में, इसी प्रकार प्रात + गन्त्र = प्रातर्गन्त्र ।

३६—यदि विसर्ग के पूर्व आ रहे आर वाट में कोई मृदु व्यञ्जन आवे तो विसर्ग का लोप हो जाता है जैसे —

बाला	+	गन्त्रन्ति = बाला गन्त्रन्ति ।
भक्ता	+	जपन्ति = भक्ता जपन्ति ।
नरा	+	वदन्ति = नरा वदन्ति ।
अश्वा	+	धावन्ति = अश्वा धावन्ति ।
जना	+	ध्यायन्ति = जना ध्यायन्ति ।
कन्या	+	याति = कन्या याति ।

किन्तु जय विसर्ग के पूर्व आ आर वाट में कोई स्वर आवे, या विसर्ग के वाट अ को छोड़कर कोई स्वर और, पूर्व में अ तो विसर्ग का लोप करना न करना इच्छा पर निर्भर है, और लोप नहीं होता तो विसर्ग के स्थान में य् हो जाता है, जैसे —

देवा + इह = देवा इह या देवायिह ।

रामस्	+	पष्ठ	=	रामपष्ठ ।
रामस्	+	टीकते	=	रामटीकते—राम जाते हैं ।
तत्	+	टीका	=	तटीका—उसकी व्याख्या ।
चक्रिन्	+	ढौकमे	=	चक्रिणढोकसे— हे कृष्ण, तू जाता है ।
पेप्	+	ता	=	पेप्टा—पीसने वाला ।

१५—यदि तवर्ग के किसी अक्षर के बाद प् आवे तो उसके स्थान पर मूर्धन्य नहीं होता, जैसे —

$$\text{सन्} + \text{पष्ठ} = \text{सन्पष्ठ} ।$$

१६—जब अन्त स्थ और अनुनासिक व्यजन को छोड़कर और किसी भी व्यजन के उपरांत किसी वर्ग का तृतीय अथवा चतुर्थ घर्ण आवे तो प्रथमवर्ती व्यजन अपने वर्ग के तृतीय घर्ण में परिणत हो जाता है, जैसे —

$$\text{एतत्} + \text{दुष्ट} = \text{एतद्दुष्टं} ।$$

$$\text{जलमुक्} + \text{गर्जति} = \text{जलमुग्गर्जति} ।$$

१७—यदि र और ह् को छोड़कर किसी पदान्त व्यजन के बाद कोई नासिका स्थानवाला घर्ण आवे तो उसके स्थान

१ तो पि ॥ ८ । ४ । ४३ ॥

२ कलां जशमशि । ८ । २ । ३१ ।

३ यरोऽनुनामिकेऽनुनासिको वा ॥ ८ । ४ । ४५ ॥

विधिरय रेकेऽपि न प्रवर्तते ( सि० कौ० )

नरा	+ आगच्छन्ति	= नरा आगच्छन्ति या नरा
राम	+ एति	= राम एति ।
जन	+ इच्छति	= जन इच्छति ।
शत्रु	+ आपतन्ति	= शत्रु आपतन्ति ।
मुनय	+ आप्नुवन्ति	= मुनय आप्नुवन्ति ।
ऋषय	+ एते	= ऋषय एते ।
कवय	+ ऊहन्ति	= कवय ऊहन्ति

३७-विसर्ग के पूर्व यदि अ और आ को छोड़कर कोई स्वर और वाद को कोई स्वर अथवा मृदु व्यञ्जन हो तो विसर्ग के स्थान में र् हो जाता है, जैसे —

हरि	+	जयति	=	हरिर्जयति
भानु	+	उदेति	=	भानुरुदेति
कवि	+	वर्णयति	=	कविर्वर्णयति
मुनि	+	ध्यायति	=	मुनिर्ध्यायति
यति	+	गदति	=	यतिर्गदति
ऋषि	+	हसति	=	ऋषिर्हसति
लक्ष्मी	+	याति	=	लक्ष्मीर्याति
श्री	+	पया	=	श्रीरेपा
सुधी	+	एति	=	सुधीरेति

(क) र् के बाद यदि र् आने और ढ् के बाद यदि

१ रेरि । दूधोपे पूर्वस्य दीर्घोऽप्य । ८ । ३ । १४, १११ ।

मे उसी वर्गवाला नासिकास्थानीय वर्ण विकल्प करके होता है।  
जैसे —

एतद् + मुरारि = एतमुरारि ।

पट् + मासा = पशमासा ।

पट् + नगर्य = पशुनगर्य ।

१८-दन्तस्थान वाले अक्षर के बाद यदि ल् आये तो उसके स्थान में ल् हो जाता है, और न् के स्थान में अनुनासिक ल् (अर्थात् ळ) होता है, जैसे —

तत् + लय = तत्तय (उसका नाश) ।

वृक्षान् + लगुडम् = वृक्षाल्लगुडम् ।

तस्मान् + लाजयेन् = तस्माल्लालयेन् ।

पराक्रमात् + लावणम् = पराक्रमाल्लावणम् ।

विद्वान् + लिखति = विद्वाल्लिखति ।

१९-यदि वर्णों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्णों के बाद ह् आये तो ह् के स्थान में उसी वर्ण का चीया अक्षर कर देना या न कर देना अपनी इच्छा पर रहता है, जैसे —

धाक् + हरि = धाह्रि अथवा धाग्रि ।

यहाँ कर्ग के प्रथम अक्षर क् के उपरान्त ह् आया, इस कारण ह् के

१ तोलि ॥ ८ । ४ । ६० ॥

२ कयो होऽयतरस्याम् ॥ ८ । ४ । ६२ ॥

आवे तो र् और ढ् का लोप हो जाता है, अगे पूर्व में आए हुए 'अ' 'इ' 'उ' यदि ह्रस्व रहे तो साथही साथवे दीर्घ हो जाते हैं।

जैसे—पुनर्	+	रमते	=	पुना रमते
हरिर्	+	रम्य	=	हरी रम्य
शम्भुर्	+	राजते	=	शम्भू राजते
कविर्	+	रचयति	=	कवी रचयति
गुरुर्	+	रष्ट	=	गुरू रष्ट
शिशुर	+	रोदति	=	शिशू रोदति
वृद्ध	+	ढ	=	वृद्ध

३८—यदि किसी व्यंजन के पूर्व स अथवा एप शब्द आये तो उनके विसर्ग का लोप हो जाता है, जैसे—

स + शम्भु = स शम्भु । एप + विष्णु = एप विष्णु ।

( क ) यदि नञ् लप्पुरुष में ये स और एप ( अयात् अय अनेय शब्द ) आये अथवा क में परिणत होकर आवे ( अयात् सक, एपक ) तब विसर्ग लोप की यह विधि नहीं लगती, यथा—अस शिव का अस शिव न होगा और न एक हरिण का एक हरिण होगा ।

स्थान में कवर्ग का चतुर्थ अक्षर घू हो गया । ( कू के स्थान में गू कैसे हुआ इसके लिए ऊपर देखिए नियम १६ )

२०—अनुनासिक व्यञ्जन (ञ्, म्, ङ्, ण्, न्) तथा अन्त स्थ वर्णों का छोड़ कर और किसी व्यञ्जन के उपरान्त यदि कू खू, चू, छू, दू, ठू, तू, धू, फू में से कोई वर्ण आवे तो पूर्वोक्त व्यञ्जन के स्थान में उसी वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है परन्तु जब उसके बाद कुछ भी नहीं रहता तब उसके स्थान में प्रथम अथवा तृतीय वर्ण हो जाता है, जैसे —

भयात् करोति = भयात्करोति ।

सुहृद् कीरति = सुहृद्वीरति ।

वृक्षाद् पतति = वृक्षात्पतति ।

वाक् । धाग् । रामात् । रामाद् ।

२१—गू यदि किसी ऐसे शब्द के बाद आवे जिसके अन्त में वर्णों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ वर्ण हों और गू के बाद कोई स्वर, अन्त स्थ, अनुनासिक व्यञ्जन या हू रहे तो गू के स्थान में कभी नू हो जाता है, कभी नहीं, जैसे —

तद् + शिव = तन्निशिव, तत् शिव ।

{ तन्निशिव, तद् शिव, }  
{ तद् किम भी होता है । }

घटान् + गज = घनान्कृग, घनात् गज

१ शरद्वोटि । शरि च । ८ । ४ । ६६ ॥ ८ । ४ । ६६ ।

## तृतीय सोपान

### सज्ञा-विचार

३९—चास्य भाषा का आधार है और शब्द चास्य का यह पौं कह आए हैं। सस्कृत में शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक तो ऐसे जिनका रूप चास्य के और शब्दों के कारण बदलता रहता है और दूसरे ऐसे जिनका रूप सदा समान हो रहता है। न बदलने वालों में यद् कदा आदि अव्यय हैं तथा कर्तुं, गत्वा आदि कृत् क्रियाओं के रूप हैं बदलने वालों में सज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया आदि हैं।

४०—हिन्दी की भांति सस्कृत में भी तीन पुरुष होते हैं—उत्त पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष। अन्य पुरुष को प्रथम पुरुष भी कहते हैं। हिन्दी में केवल दो वचन होते हैं—एकवचन बहुवचन। किन्तु सस्कृत में इनके अतिरिक्त एक द्विवचन भी होता जिससे दो का बोध कराया जाता है। मन्त्राणं सब अन्य पुरुष होती हैं।

४१—सज्ञा के तीन लिङ्ग होते हैं—पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्ग। सस्कृत भाषा में यह लिङ्गभेद किसी स्वामाधिक स्थिति निर्भर नहीं है, ऐसा नहीं है कि सप्त नर वस्तुएँ पुलिङ्ग गाय द्वारा दिखाई जाय, मादा स्त्रीलिङ्ग द्वारा और निर्जीव वस्तुएँ नपुंसक लिङ्ग द्वारा। प्रत्युत यह लिङ्गभेद कृत्रिम है। उदाहरणार्थ 'र' का अर्थ बताने के लिए कई शब्द हैं—स्त्री, महिला, गृहिणी, व

आदि । इनमें 'दार' शब्द स्त्री का बोधक है, तिसपर भी यह पुलिङ्ग में है । इसी प्रकार निर्जीव शरीर का बोध कराने के लिए कई शब्द हैं—तनु ( स्त्रीलिङ्ग ), देह ( पुलिङ्ग ) और शरीर ( नपुंसक लिङ्ग ) तथा जल के लिए आप ( स्त्री० ) और जल ( नपुंसक ) । कई शब्द ऐसे हैं जिनके रूप एक से अधिक लिङ्गों में चलते हैं, जैसे गां शब्द पुलिङ्ग में 'बल' वाचक है और स्त्रीलिङ्ग में 'गाय' वाचक । किन्हीं किन्हीं पुलिङ्ग शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से भी स्त्रीलिङ्ग के शब्द होते हैं और किन्हीं से नपुंसक लिङ्ग के शब्द बन जाते हैं । उदाहरणार्थ सर्वनाम शब्द 'अन्यत्' के रूप तीनों लिङ्गों में अलग अलग होते हैं । पुन—पुत्री, नायक—नायिका, ब्राह्मण—ब्राह्मणी आदि जोड़ी वाले शब्द हैं । इनका सविस्तर विचार आगे चलकर होगा । परन्तु अधिकांश ऐसे शब्द हैं जो एक ही लिङ्ग के हैं—या तो पुलिङ्ग, या स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग ।

४२—हिन्दी में कर्त्ता, कर्म आदि सम्बन्ध दिखाने के लिए ने, को, से आदि शब्द मन्त्रा में पीछे अथवा सर्वनाम के पीछे जोड़ दिये हैं, जैसे—गोविन्द ने मारा, गोविन्द को मारा, तुमने बिगाड़ा, तुमको डाटा आदि । किन्तु संस्कृत में यह सब सम्बन्ध दिखाने के लिए सज्ञा या सर्वनाम आदि का रूप ही बदल देते हैं, यथा 'गोविन्द ने' की जगह " गोविन्द ", 'गोविन्द को' की जगह 'गोविन्दम्' और 'गोविन्द का' की जगह 'गोविन्दस्य' । इस प्रकार एक ही शब्द के



४९—ऊकारान्त पुलिङ्ग शब्द

स्वयम्भू—ब्रह्मा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्वयम्भू	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुव
स०	हे स्वयम्भू	हे स्वयम्भुवौ	हे स्वयम्भुव
द्वि०	स्वयम्भुवम्	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुव
तृ०	स्वयम्भुवा	स्वयम्भूम्याम्	स्वयम्भूमि
च०	स्वयम्भुवे	स्वयम्भूम्याम्	स्वयम्भूम्य
प०	स्वयम्भुव	स्वयम्भूम्याम्	स्वयम्भूम्य
प०	स्वयम्भुव	स्वयम्भुवा	स्वयम्भुवाम्
स०	स्वयम्भुवि	स्वयम्भुवो	स्वयम्भुवु

सुत्र ( सुन्दर मौ, घाला ) स्वभू ( स्वय पैदा हुआ ), प्रतिभू, ( जामिन ) के रूप इसी प्रकार होते हैं ।

५०—रुकारान्त पुलिङ्ग शब्द

( क ) पितृ—बाप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पिता	पितरौ	पितर
स०	हे पित	हे पितरौ	हे पितर

कई रूप हो जाते हैं। प्रथमा, द्वितीया आदि में लेकर सप्तमी तक सात विभक्तियाँ (अथवा भाग) होते हैं।

किसी शब्द में जब विभक्ति के प्रत्यय नहीं लगे रहते तब उसे 'प्रातिपदिक' कहते हैं। प्रातिपदिक में प्रत्यय जोड़ जोड़ कर विभक्तियों के रूप तयार किये जाते हैं। पाणिनि के अनुसार वे प्रत्यय इस प्रकार हैं —

विभक्ति	—	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	—	सु	ओ	जस्
द्वितीया	—	अम्	आट्	शस्
तृतीया	—	टा	भ्याम्	मिस्
चतुर्थी	—	हे	भ्याम्	व्यस्
पञ्चमी	—	हसि	भ्याम्	भ्यम्
षष्ठी	—	इस्	ओस्	भाम्
सप्तमी	—	हि	ओस्	सुप्

सम्बोधन के लिए अलग प्रत्यय नहीं दिये गये, क्योंकि इस रूप बहुधा प्रथमा विभक्ति के अनुसार चलते हैं, केवल कहीं कहीं एकवचन में अन्तर पड़ जाता है। विभक्तिसूचक इन प्रत्ययों से सुप् कहते हैं। इनके जाड़ने की विधि बड़ी जटिल है। उदाहरणार्थ "सु" का "उ" उड़ा दिया जाता है, केवल स् रह जाता है, यथा—  
 राम + सु = रामस् = राम । कहीं कहीं यह स् भी नहीं जोड़ा जाता यथा—  
 विद्या + सु = विद्या । टा का ट् लोप करके यह प्रत्यय जुड़

शेष रूप पहिले वाले सारी के समान होते हैं। ( सुतमिच्छतीति ) सुती, ( सुखमिच्छतीति ) सुखी, ( लूनमिच्छतीति ) लूनी, ( क्षाममिच्छतीति ) क्षामी, ( प्रस्तीममिच्छतीति ) प्रस्तीमी के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

### ४८—उकारान्त पुलिङ्ग शब्द

#### • मानु—सूर्य

•	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	मानु	मान्	मानयः
स०	हे मानो	हे मान्	हे मानय
दि०	मानुम्	मान्	मानून्
तृ०	मानुगे	मानुभ्याम्	मानुभि
च०	मानये	मानुभ्याम्	मानुभ्यः
प०	मानो	मानुभ्याम्	मानुभ्यः
द०	माने	मान्ते	मानूताम्
स०	माता	मान्ते	मानुषु

जम्, रिप्, पिप्, युच्, ऊच् ( जोष ), जन्तु, प्रप्, शिप्, विप् ( चञ्चमा ), पञ्, नस्, वेष् ( वांश् ) इत्यादि समस्त उकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप मानु की तरह चलते हैं।

है, यथा—भगवत् + टा = भगवत् + आ = भगवता। किन्तु कहीं टा का स्थान इन ल लेता है, यथा—नर + इन = नरेण। इसी कारण जब तक पाणिनि के व्याकरण का अन्तर् प्रकाश ज्ञान प्राप्त न करले तब तक प्रातिपदिकों में सुप् प्रत्यय जोड़ कर रूप सिद्ध करना दुःसाध्य है। इसी कारण नीचे साधारणतया प्रचलित प्रातिपदिकों के सिद्ध रूप दिये जाते हैं।

४३—संस्कृत में प्रातिपदिक पहले दो भागों में विभक्त किये जाते हैं—( १ ) स्वरान्त, ( २ ) व्यञ्जनान्त। स्वरान्त में अकारान्त शब्द प्रायः सभी पुलिङ्ग अथवा नपुंसक लिङ्ग में होते हैं। आकारान्त प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, थोड़े से ही पुलिङ्ग में होते हैं। इकारान्त शब्द कोई पुलिङ्ग में, कोई स्त्री लिङ्ग में और कोई नपुंसक लिङ्ग में होते हैं। ईकारान्त प्रायः स्त्री लिङ्ग में, किन्तु कुछ पुलिङ्ग में भी होते हैं। उकारान्त प्रायः तीनों लिङ्गों में होते हैं। ऊकारान्त बहुधा स्त्रीलिङ्ग और पुलिङ्ग में होते हैं। ञकारान्त प्रायः सभी पुलिङ्ग में होते हैं। ऐकारान्त, ओकारान्त और आकारान्त बहुत कम शब्द हैं। जेव स्वरों में अन्त होने वाले प्रातिपदिक प्रायः नहीं के बराबर हैं।

व्यञ्जनान्त प्रातिपदिक प्रायः ट्, श्, म्, य् इन चारों को जोड़ कर सभी व्यञ्जनों में अन्त होने वाले पाये जाते हैं। इनमें भी बहुधा चकारान्त, जकारान्त, तकारान्त, दकारान्त, धकारान्त, नकारान्त, शकारान्त, पकारान्त, मकारान्त और हकारान्त ही अधिक प्रयोग में आते हैं। नीचे क्रमानुसार उनके रूप दिखाने जाते हैं।

( ग ) दातृ—देने वाला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दाता	दातारौ	दातार
स०	हे दात	हे दातारौ	हे दातार
द्वि०	दातारम्	दातारौ	दातृन्
तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभि
च०	दात्रे	,	दातृभ्य
प०	दातु	,	,
प०	"	दात्रो	दातृणाम्
स०	दातरि	,	दातृषु

धातृ ( ग्राह्य ), कर्तृ ( करने वाला ), गन्तृ ( जाने वाला ), नेतृ ( ले जाने वाला ), कर्तृ ( कोई कार्य करने वाला ) आदि शब्दों के तथा नष्ट ( पीता ) के रूप दातृ के समान चलते हैं ।

५१—ऐकारान्त पुलिङ्ग शब्द

२—धन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	रा	रायौ	राय
स०	हे रा	हे रायौ	हे राय
द्वि०	रायम्	रायौ	राय

## स्वरान्त सज्ञाएँ

## ४४-अकारान्त पुलिङ्ग शब्द

## बालक—लड़का

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	बालक	बालकौ	बालका
सम्बोधन	हे बालक	हे बालकौ	हे बालका
द्वितीया	बालकम्	बालकौ	बालकान्
तृतीया	बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकैः
चतुर्थी	बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्यः
पञ्चमी	बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्यः
षष्ठी	बालकस्य	बालकयोः	बालकानाम्
सप्तमी	बालके	बालकयोः	बालकेषु

राम, वृत्त, अश्व, सूर्य, चन्द्र, नर, पुनः, सुर, देव, रथ, सुत, राजा, रामम् (गद्गा), मनुष्य, जन, दन्त, लोक, ईश्वर, पाद, भक्त, मास, गङ्गा, दुष्ट, कुसुम, धृक (मेड़िया), व्याघ्र, सिंह, इत्यादि समस्त अकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप बालक के समान होते हैं। इतनी प्रकार यादृश, तादृश, भवाद्दृश, भाद्दृश, त्वादृश, एताद्दृश आदि शब्द भी चलते हैं। स्पष्टना के लिये ताद्दृश के रूप दिये जाते हैं।

द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभि
च०	पित्रे	”	पितृभ्य
प०	पितु	”	”
ष०	”	पित्रो,	पितॄणाम्
स०	पितरि	”	पितॄषु

भ्रातृ ( भाई ), देवृ ( देवर ), जामातृ ( दामाद ) इत्यादि पुतिङ्ग सम्बन्धसूचक श्रकारात् ज दांके रूप पितृ के समान होते हैं ।

### ( र ) नृ-मनुष्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा०	न	नरौ	नर
स०	हे न	हे नरौ	हे नर
द्वि०	नरम्	नरौ	नॄन्
तृ०	न्रा	नृभ्याम्	नृभि
च०	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्य
प०	नृ	नृभ्याम्	नृभ्य
ष०	नृ	न्रो	{ नृणाम् नृणाम्
स०	नरि	न्रो	नृषु

तादृश—उसकी तरह

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तादृश	तादृशौ	तादृशा
स०	हे तादृश	हे तादृशौ	हे तादृशा
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशान्
तृ०	तादृशेन	तादृशाम्ब्याम्	तादृशे
च०	तादृशाय	तादृशाम्ब्याम्	तादृशेभ्य
प०	तादृशात्	तादृशाम्ब्याम्	तादृशेभ्य
प०	तादृशस्य	तादृशयो	तादृशानाम्
स०	तादृशे	तादृशयो	तादृशेषु

नोट—यही शब्द इसी अर्थ में शकारान्त होते हैं। उनके रूप व्यञ्जनान्त सज्ञाथों में मिलेंगे।

४५—आकारान्त पुलिङ्ग शब्द

विश्वपा—ससार का रक्षक

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपा	विश्वपौ	विश्वपा
स०	हे विश्वपा	हे विश्वपौ	हे विश्वपा
द्वि०	विश्वपाम्	विश्वपा	विश्वप



५३—अकारान्त पुलिङ्ग शब्द

ग्लौ—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ग्लौ	ग्लावौ	ग्लाव
स०	हे ग्लौ	हे ग्लावौ	हे ग्लाव
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लाव
तृ०	ग्लावा	ग्लोभ्याम्	ग्लौभि
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
प०	ग्लाव	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
प०	ग्लाव	ग्लावो	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावो	ग्लौषु

और भी अकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप ग्लौ के समान होते हैं।

५४—अकारान्त नपुमकलिङ्ग-शब्द

फल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	फलम्	फले	फलानि
	हे फल	हे फले	हे फलानि

तृ०	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभि
च०	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्य
प०	विश्वप.	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्य
प०	विश्वप	विश्वपो	विश्वपाम्
स०	विश्वपि	विश्वपो	विश्वपासु

गोपा ( गाय का रक्तक ), शखधमा ( जंगल बजाने वाला ),  
 सोमपा ( सोमरस पीनेवाला ), धृम्रपा ( धुम्रा पीने वाला ), बजदा  
 ( बज देने वाला या इन्द्र ), तथा और भी दूसरे आकारान्त धातुओं  
 से निकले हुए समान सज्ञा शब्दों के रूप विश्वपा के समान  
 होते हैं ।

### ४६-इकारान्त पुलिङ्ग शब्द

#### ( क ) कवि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	कवि	कवी	कवय
म०	हे कवे	हे कवी	हे कवय
द्वि०	कविम्	कवी	कवीन्
तृ०	कविना	कविभ्याम्	कविभि
च०	कवये	कविभ्याम्	कविभ्य
प०	कवे	कविभ्याम्	कविभ्य

तृ०	राया	राभ्याम्	राभि
च०	राये	राभ्याम्	राभ्य
प०	राय	राभ्याम्	राभ्य
प०	राय	राभ्याम्	राभ्य
स०	रायि	रायो	रायाम्
		रायो	रायु

## ५२—ओकारान्त पुलिङ्ग

गो—साँड, बैल

प्र०	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	गौ	गावौ	गाव
स०	हे गौ	हे गावौ	हे गाव
द्वि०	गाम्	गावौ	गा
तृ०	गया	गोभ्याम्	गोभि
च०	गये	गोभ्याम्	गोभ्य
प०	गो	गोभ्याम्	गोभ्य
प०	गो	गवो	गवाम्
स०	गवि	गवो	गोषु

समस्त ओकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप गो के समान होते हैं।

प्र०	कवे	कव्यो	कवीनाम्
स०	कवी	कव्यो	कविषु

हरि, मुनि, अपि, कपि, यति, विधि ( ब्रह्मा ), विरञ्चि ( ब्रह्मा ), जलधि, गिरि ( पहाड़ ), सन्नि ( घोड़ा ), रवि ( सूर्य ), वह्नि ( आग ), अग्नि, इत्यादि इकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप कवि के समान होते हैं ।

नोट —विधि ( विधान तरीका, के अर्थ में ) हिन्दी में खीलिङ्ग है , किन्तु संस्कृत में यही शब्द पुलिङ्ग में है, इसका ध्यान रखना चाहिए ।

( ए ) पति शब्द के रूप बिलकुल भिन्न प्रकार से होते हैं

पति—स्वामी, मालिक, दूल्हा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पति	पती	पतय
स०	हे पते	हे पती	हे पतय
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभि
च०	पत्ये	”	पतिभ्य
प०	पत्यु	”	”
प०	,	पत्यो	पतीनाम्
स०	पत्यौ	”	पतिषु

५३—अकारान्त पुलिङ्ग शब्द

स्त्री—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्त्री	स्त्रौ	स्त्राव
स०	हे स्त्री	हे स्त्रौ	हे स्त्राव
द्वि०	स्त्रावम्	स्त्रौ	स्त्राव
तृ०	स्त्राया	स्त्रोभ्याम्	स्त्रीभि
च०	स्त्रावे	स्त्रौभ्याम्	स्त्रीभ्य
प०	स्त्राव	स्त्रौभ्याम्	स्त्रीभ्य
प०	स्त्रान	स्त्रावो	स्त्रावाम्
स०	स्त्रावि	स्त्रावो	स्त्रीषु

और भी अकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप स्त्री के समान  
ते हैं।

५४—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग-शब्द

फल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	फलम्	फले	फलानि
	हे फल	हे फले	हे फलानि

## तृतीय सोपान

किन्तु जब पति शब्द किसी शब्द के साथ समास के अन्त में आता है तो उसके रूप कवि के ही समान होते हैं, जैसे —

### भूपति—राजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भूपति	भूपती	भूपतय
स०	हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतय
द्वि०	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्
तृ०	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
च०	भूपतये	"	भूपतिभ्यः
प०	भूपते	"	भूपतीनाम्
प०	"	भूपत्यो	भूपतियुः
स०	भूपती	"	

महीपति, गृहपति, नरपति, लोकपति, अधिपति, सुरगजपति, गणपति (गणेश), जगत्पति, बृहस्पति, पृथ्वी इत्यादि शब्दों के रूप भूपति के समान कवि शब्द की भाँति हैं।

(ग) सखि ( मित्र ) शब्द के भी रूप विलुप्त भिन्न होते हैं, जैसे —

## तृतीय सोपान

तृ०	राया	राम्याम्	रामि
च०	राये	राम्याम्	राम्य'
प०	राय	राम्याम्	राम्य
प०	राय	रायो	रायाम्
स०	रायि	रायो	रायु

## ५२—ओकारान्त पुलिङ्ग

गो—साँझ, बैल

एकवचन

द्विवचन

बहुवचन

प्र०	गौ	गावौ	गाव
स०	हे गौ	हे गावौ	हे गाव
द्वि०	गाम्	गावौ	गा
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभि
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्य
प०	गो	गोभ्याम्	गोभ्य
प०	गो	गवो	गवाम्
स०	गवि	गवो	गोषु

समस्त ओकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप गो के समान होते हैं।

शुकी, पकी, सुथी, शुद्धी, परमधी के रूप भी सुधी के समान होते हैं ।

( ग ) सखी ( सखायमिच्छतीति )

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथ०	सखा	सखायौ	सखाय
स०	हे सखी	हे सखायौ	हे सखाय
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सख्य
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभि
च०	सख्ये	"	सखीभ्य
प०	सख्यु	"	"
प०	"	सख्यो	सख्याम्
स०	सख्यि	"	सखीषु

( घ ) सखी ( सखमिच्छतीति )

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सखी	सख्यौ	सख्य
स०	हे सखी	हे सख्यौ	हे सख्य
द्वि०	सख्यम्	सख्यौ	सख्य



५३—अकारान्त पुलिङ्ग शब्द

ग्लौ—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ग्लौ	ग्लावौ	ग्लाव
स०	हे ग्लौ,	हे ग्लावौ	हे ग्लाव
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लाव
तृ०	ग्लावा	ग्लोभ्याम्	ग्लौभि
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
प०	ग्लाव	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
प०	ग्लाव	ग्लावो	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावो	ग्लौषु

अत्र भी ओकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप ग्लौ के समान होते हैं।

५४—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग-शब्द

फल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	फलम्	फले	फलानि
स	हे फल	हे फले	हे फलानि

प्र०	प्रथ्य	प्रथ्यो	प्रथ्याम्
स०	प्रथ्यि	"	प्रथीषु

पेगी ( कुर्नी से जानेवाला ) तथा जजपी के रूप प्रथी के समान होते हैं ।

उन्नी, ग्रामणी, सेनानी शब्दों के रूप भी प्रथी के समान होते हैं। फेजल सप्तमी के एक वचन में उन्न्याम्, ग्रामय्याम्, सेनान्याम् प्रथी के रूप हो जाते हैं ।



### ( ए ) सुधी—परिङित, विद्वान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सुधी	सुधियी	सुधियः
स०	हे सुधी	"	"
द्वि०	सुधियम्	"	"
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
च०	सुधिये	"	सुधीभ्य
प०	सुधिय	"	"
ष०	"	सुधियो	सुधियाम्
स०	सुधियि	"	सुधीषु

द्वि०	फलाम्	फले	फलानि
तृ०	फलेन	फलाभ्याम्	फलै,
च०	फलाय	फलाभ्याम्	फलेभ्य
प०	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्य
प०	फलस्य	फलयो	फलानाम्
स०	फले	फलयो	फलेषु

मित्र, धन, अरण्य ( जंगल ), मुख, कमल, कुत्तुम, पुष्प, पर्ण ( पत्ता ), नक्षत्र, पत्र ( कागज या पत्ता ), बीज, जल, वृण ( घास ), गगन, शरीर, पुस्तक, शान इत्यादि समस्त अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप फल के समान होते हैं ।

### ५५—इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

( क ) धारि—पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	धारि	धारिणी	धारीणि
स०	हे धारि, हे धारे	हे धारिणी	हे धारीणि
द्वि०	धारि	धारिणी	धारीणि
तृ०	धारिणा	धारिभ्याम्	धारिभि
च०	धारिणे	धारिभ्याम्	धारिभ्य
प०	धारिण्य	धारिभ्याम्	धारिभ्य

प्र०	वारिण्य	वारिण्यो	वारिण्याम्
स०	वारिणि	वारिण्यो	वारिण्यु

अस्मि ( हृद्दी ), दधि ( दही ), सक्थि ( जाँघ ), अक्षि ( आँख ) को छोड़ कर समस्त इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप वारि के समान होते हैं ।

### ( ख ) दधि—दही

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दधि	दधिनी	दधीनि
स०	हे दधि, दधे	दधिनी	दधीनि
द्वि०	दधि	दधिनी	दधीनि
तृ०	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभि
च०	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्य
प०	दध्न	दधिभ्याम्	दधिभ्य
ष०	दध्न	दध्नो	दध्नाम्
स०	दध्नि, दधनि	दध्नो	दधिषु

६७-उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

धेनु-गाय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनु	धेनू	धेनव
स०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनव
द्वि०	धेनुम्	धेनू	धेनू
तृ०	धेन्या	धेनुभ्याम्	धेनुभि
च०	धेनये, धेन्वै	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य
प०	धेनो, धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य
प०	धेनो, धेया	धेन्वो	धेनूणाम्
स०	धेनौ, धेन्वाम्	धेन्वो	धेनुषु

तनु (शरीर), रेणु [ (ध्रनि) पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी ],  
नु [ (डुङ्डी) पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी ] इत्यादि सभी  
कारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप धेनु के समान होते हैं।

६३-उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

घधू-बह

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तधू	घध्वौ	घध्व

## अक्षि—ऑख

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षिणि
स०	हे अक्षि, अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षिणि
द्वि०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षिणि
तृ०	अक्ष्या	अक्षिम्याम्	अक्षिभि
च०	अक्ष्यो	अक्षिम्याम्	अक्षिभ्यः
प०	अक्ष्य	अक्षिम्याम्	अक्षिभ्यः
प०	अक्ष्य	अक्ष्यो	अक्ष्याम्
स०	अक्षिण, अक्षिणि	अक्ष्यो	अक्षिपु

अस्थि और सन्धि के रूप भी इसी प्रकार होते हैं ।

( ग ) जब इकारान्त तथा उकारान्त विशेषण शब्दों का नपुंसक लिङ्ग वाले सहा शब्दों के साथ होता है तो उनके चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एक वचन में और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में विकल्प करके इकारान्त तथा उकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के समान होते हैं, जैसे—शुचि ( पवित्र ), शुचि ( भारी ) ।

स०	हे वधू	हे वध्वौ	हे वध्व
द्वि०	वधूम्	वध्वौ	वधू
तृ०	वध्वा	वधूम्याम्	वधूभि
च०	वध्वै	"	वधूम्य
प०	वध्वा	वधूम्याम्	वधूम्य
प०	"	वध्वे	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	"	वधूषु

वधू ( सेना ), वध्व ( रस्ती ), वध्व ( सास ), कर्कवधू ( ने )  
इत्यादि सभी ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप वधू के समान  
होते हैं।

### ( क ) भू—पृथ्वी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भू	भुवो	भुवः
सं०	हे भू	हे भुवौ	हे भुव
द्वि०	भुवम्	भुवौ	भुव
तृ०	भुवा	भूम्याम्	भूभि
च०	भुवै, भुवे	भूम्याम्	भूम्य
प०	भुवा, भुव	भूम्याम्	भूम्य
प०	भुवा, भुव		
स०	भुवाम्, भुवि		

शुचि ( पवित्र )

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
शुचि	शुचिी	शुचीनि
हे शुचि, शुचे	हे शुचिनी	हे शुचीनि
शुचि	शुचिनी	शुचीनि
शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभि
शुचये, शुचिने	"	शुचिभ्य
शुचे , शुचिन	शुचिभ्याम्	शुचिभ्य
' "	शुचयो , शुचिनो	शुचीनाम्
शुची, शुचिनि	" "	शुचिषु

५६—उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

वस्तु—चीज

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
हे वस्तु, हे वस्तो	हे वस्तुनी	हे वस्तूनि
वस्तु	वस्तुी	वस्तूनि
वस्तुना	वस्तुभ्याम्	वस्तुभि



ख्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भी पुलिङ्ग के समान होते हैं।  
उदाहरणार्थ—नौ।

## आकारान्त ख्रीलिङ्ग शब्द

नौ—नाव

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नौ	नावी	नाव
स०	हे नौ	हे नावी	हे नाव
डि०	नावम्	नावो	नाव
तृ०	नावो	नौभ्याम्	नौभि
च०	नावे	नौभ्याम्	नौभ्य
प०	नाव	नौभ्याम्	नौभ्य
प०	नाव	नावो	नावाम्
स०	नावि	नावो	नौपु

प्रकार द्यो (आकाश) तथा धार भी आकारान्त ख्रीलिङ्ग होते हैं।

## ॥ सज्ञाएँ

जो कम सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार लिङ्गानुसार दिया गया है। किन्तु

च०	वस्तुने	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्य'
प०	वस्तुन	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्य
प०	वस्तुन	वस्तुना	वस्तुनाम्
स०	वस्तुनि	वस्तुनो	वस्तुषु

दारु ( काठ ), जानु ( मुठना ), जतु ( लास ), जत्रु ( कश की सधि ), तालु, मधु ( शहद ), [ सानु ( पर्वत की बांग पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग भी ] इत्यादि शब्दों के रूप वस्तु के समान होते हैं।

( क ) उकारान्त विशेषण शब्दों के रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एक वचन में तथा यष्टी व सप्तमी के द्विवचन में उकारान्त पुलिङ्ग शब्द के समान विकल्प करके होते हैं, जैसे- बहु ( बहुत ) ।

### बहु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	बहु	यहुनी	यहुनि
स०	हे बहु, बहो	हे यहुनी	हे बहूनि
द्वि०	बहु	यहुनी	यहुनि
तृ०	बहुना	बहुभ्याम्	बहुभि
च०	बहुने, बहवे	बहुभ्याम्	बहुभ्य

तृ०	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभि	मातृभि
च०	मात्रे	"	मातृभ्य	मातृभ्य
प०	मातृ	"	"	"
प०	"	मात्रो	मातृणाम्	मातृणाम्
स०	मातरि	"	मातृषु	मातृषु

यातृ ( देवरानी ), दुहितृ ( लड़की ) के रूप मातृ के समान होते हैं ।

### स्वसृ—ग्रहिन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्वसा	स्वसारौ	स्वसार
स०	हे स्वस	हे स्वसारौ	हे स्वसार
द्वि०	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसृ
तृ०	स्वसा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभि
च०	स्वसे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्य
प०	स्वसु	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्य
प०	स्वसु	स्वसो	स्वसृणाम्
स०	स्वसरि	स्वसो	स्वसृषु

६५—पेकारात् ख्रीलिङ्ग शब्दों के तथा ओकारान्त ख्रीलिङ्ग गो व्याटि शब्दों के रूप पुलिङ्ग के समान होते हैं । ओकारान्त

ने	बहुन	बहुभ्याम्	बहुभ्य
	उहुन	बहो, बहुनो	बहूनाम्
	, बहुनि	उहो, बहुनो	बहुषु

( मृदु, कटु, लघु पटु इत्यादि के रूप होते हैं ।

### ५७—ऋकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्द

, नेतृ, धातृ, रत्नितृ, इत्यादि शब्द विशेषण हैं, इसलिप प्रयोग तीनों लिङ्गों में होता है । यहाँ पर नपुंसकलिङ्ग के स्वरूप जाते हैं —

कर्तृ—करने वाला

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्तृ	कर्तृशी	कर्तृ'यि
{ हे कर्तृ हे कर्त	हे कर्तृयी	हे कर्तृ'यि
कर्तृ	कर्तृयी	कर्तृ'यि
{ कर्तृ कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृ'मि
{ कर्तृ कर्तृणे	कर्तृभ्याम्	कर्तृ'भ्य
{ कर्तृ कर्तृण्य	कर्तृभ्याम्	कर्तृ'भ्य

लीलिङ्ग शब्दों के रूप भी पुलिङ्ग के समान होते हैं।  
दाहरणार्थ—नौ।

## ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

नौ—नाव

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नौ	नावौ	नाव
स०	हे नौ	हे नावौ	हे नाव
टि०	नावम्	नावो	नाव
तृ०	नावा	नौभ्याम्	नौभि
च०	नावे	नौभ्याम्	नौभ्य
प०	नाव	नौभ्याम्	नौभ्य
प०	नाव	नावो	तावाम्
स०	नावि	नावो	नौपु

इसी प्रकार द्यौ (आकाश) तथा ओर भी ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं।

## व्यञ्जनान्त सज्ञाएँ

नोट—ऊपर स्वरान्त सज्ञाओं का क्रम सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग आदि लिङ्गानुसार दिया गया है। किन्तु

प०	{ कर्तुं कर्तृण्य	{ कर्त्रो कर्तृणो	कर्तृणाम्
स०	कर्तरि	{ कर्त्रो कर्तृणो	कर्तृषु

इसी प्रकार यातृ, नेतृ इत्यादि के भी रूप होते हैं ।

## ५८-आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

### विद्या

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विद्या	विद्ये	विद्या
स०	हे विद्ये	हे विद्ये	हे विद्या
द्वि०	विद्याम्	विद्ये	विद्या
तृ०	विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभि
च०	विद्यायै	विद्याभ्याम्	विद्याभ्य
प०	विद्याया	विद्याभ्याम्	विद्याभ्य
प०	विद्याया	विद्ययो	विद्यानाम्
स० .	विद्यायाम्	विद्ययो	विद्यासु

रमा ( लक्ष्मी ), चाला ( स्त्री ), निशा ( रात ), कन्या, ल ( स्त्री ), भार्या ( स्त्री ), बडधा ( बौड़ी ), राधा, सुमित्रा,

व्यञ्जनान्त सज्ञाएँ सभी लिङ्गों में प्रायः एकसी चलती हैं, इस लिए यहाँ वे वर्णक्रम से रक्ती गई हैं।

## ६६-चकारान्त शब्द

### (क) पुलिङ्ग जलमुच्-बादल

	एकवचन	द्विवचन	बहु वचन
प्रथमा	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुच
स०	हे जलमुक्	हे जलमुचो	हे जलमुच
द्वि०	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुच
तृ०	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भि
च०	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्य
प०	जलमुच	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्य
प०	जलमुच	जलमुचो	जलमुचाम्
स०	जलमुचि	जलमुचो	जलमुच

सत्यवाच् प्रादि सभी चकारान्त शब्दों के रूप इसी प्रकार होते हैं। केवल प्राञ्च्, प्रत्यञ्च्, तिर्यञ्च्, उटञ्च् के रूपों में कुछ भेद होता है। ये सब शब्द अञ्च् (जाना) धातु से बने हैं।

सल्या, कला इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप विद्या समान होते हैं ।

## ५९-इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

### रुचि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	रुचि	रुची	रुचय
स०	हे रुचे	हे रुची	हे रुचय
द्वि०	रुचिम्	रुची	रुची
तृ०	रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभि
च०	रुच्यै, रुचये	रुचिभ्याम्	रुचिभ्य
प०	रुच्या, रुचे	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
प०	रुच्या, रुचे	रुच्यो	रुचीनाम्
स०	रुच्याम्, रुचौ	रुच्यो	रुचिषु

धृति ( धूर ), मति, बुद्धि, गति, शुद्धि, भक्ति, शक्ति, धृति, स्मृति, शान्ति, नीति, रीति, रात्रि, जाति, पट्कि, गीति इत्यादि सभी इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप रुचि के समान होते हैं ।



प्राज्च् ( पूर्वो ) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्राट्	प्राद्वौ	प्राञ्च
स०	हे प्राट्	हे प्राद्वौ	हे प्राञ्च
द्वि०	प्राद्यम्	प्राद्वौ	प्राच
तृ०	प्राधा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भि
च०	प्राधे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्य
प०	प्राध	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्य
ष०	प्राध	प्राधो	प्राधाम्
स०	प्राधि	प्राधो	प्राधु

प्रत्यज्च् ( पच्छिमी ) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
०	प्रत्यट्	प्रत्यद्वौ	प्रत्यञ्च
०	हे प्रत्यट्	हे प्रत्यद्वौ	हे प्रत्यञ्च
०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यद्वौ	प्रतीच
	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भि
	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्य
	प्रतीच	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्य
	प्रतीच	प्रतीचो	प्रतीचाम्
	प्रतीचि	प्रतीचो	प्रत्यञ्चु

## ६०—ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग मण्ड

## नदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नदी	नद्यौ	नद्य
सं०	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्य
द्वि०	नदीम्	नद्यौ	नदी
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभि
च०	नद्यै	"	नदीभ्य
प०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभ्य
स०	'	नद्यौ	नदीनाम्
स०	नद्याम्	"	नदीषु

"स्त्री" आदि कुछ शब्दों को छोड़कर सभी ईकारान्त स्त्री शब्दों के रूप नदी के समान होते हैं, जैसे—राक्षी ( राक्षी ), गौरी, पार्वती, जानकी, अरुन्धती, नद्यी, पृथ्वी, नन्दिनी, द्रोपदी, क्वी, त्रेयी, पान्चाली, त्रिलोकी, पञ्चवटी, अष्टवी ( जगल ), गायत्री, कादम्बरी, कोमुदी ( चन्द्रमा की रोजनी ), माद्री, पुत्ती, देवी, सावित्री, गायत्री, कमलिनी, नलिनी इत्यादि ।

( क ) केवल अर्वा ( खस्वला स्त्री ), तरी ( नाय ), ( वीणा ), लक्ष्मी, स्तरी ( धुआँ ) के प्रथमा के एक वचन में होता है ; जैसे —

## तिर्यञ्च् ( तिरस्का जाने घाला ) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्च,
स०	हे तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्च
द्वि०	तिर्यङ्गम्	तिर्यङ्गौ	तिर्यङ्ग
तृ०	तिरश्वा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भि
च०	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्य
प०	तिरश्च	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्य
प०	तिरश्च	तिरश्चो	तिरश्चाम्
स०	तिरश्चि	तिरश्चो	तिर्यञ्च

## उदञ्च् ( उत्तरी ) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्च
स०	हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्च
द्वि०	उदञ्चम्	उदञ्चौ	उदीच
तृ०	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भि
च०	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्य
प०	उदीच	उदग्भ्याम्	उदग्भ्य
प०	उदीच	उदीचो	उदीचाम्
स०	उदीचि	उदीचो	उदञ्च

प्रथमा एक वचन —अग्नी, तपो, तन्वी, जदमी, स्तरी ।

### जदमी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	जदमी	जदम्यौ	जदम्य
स०	हे जदमि	हे जदम्यौ	हे जदम्य
द्वि०	जदमीम्	जदम्या	जदमी
तृ०	जदम्या	जदमाभ्याम्	जदमीभि
च०	जदम्यै	जदमीभ्याम्	जदमीभ्य
प०	जदम्या	जदमीभ्याम्	जदमीभ्य
प०	जदम्या	जदम्यो	जदमीणाम्
स०	जदम्याम्	जदम्यौ	जदमीषु

### स्त्री

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्त्री	स्त्रियो	स्त्रियः
स०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रिय
द्वि०	स्त्रियम् स्त्रीम्	स्त्रिया	स्त्रिय, स्त्री
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभि

( ख ) सीतिङ्ग वाच्—वाणी

	एकवचन	द्विवचा	बहुवचन
प्र०	वान्, वाग्	वागौ	वाच
स०	हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाच
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाच
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भि
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्य
प०	वाच	वाग्भ्याम्	वाग्भ्य
व०	वाच	वाचो	वाचाम्
स०	वाचि	वाचो	वाचु

रच्, त्वच् ( चमड़ा, पेड़ की छाल ), शृच् ( सोच ), ऋच् ( ऋग्वेद के मन्त्र ) इत्यादि सभी चकारान्त श्री लिङ्ग शब्दों के रूप वाच् के तरह होते हैं ।

६७—जकारान्त शब्द

( क ) पु० ऋत्विज् ( पुजारी )

	एकवचन	द्विवचा	बहुवचन
प्र०	ऋत्विक्	ऋत्विजौ	ऋत्विज
स०	हे ऋत्विक्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विज-
द्वि०	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विज

च०	क्षियै	क्षीम्याम्
प०	क्षिया	"
प०	"	क्षियो
स०	क्षियाम्	"

## ६१-ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

श्री-लक्ष्मी

प्रथमा	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
स०	श्री	क्षियौ	क्षिय
द्वि०	हे श्री	हे क्षियौ	हे क्षिय
तृ०	क्षियम्	क्षियौ	क्षिय
च०	क्षिया	क्षीम्याम्	क्षीमि
प०	क्षियै क्षिये	'	क्षीम्य
प०	क्षिया , क्षिय	"	"
स०	" , क्षियाम्, क्षियि	क्षियो	क्षीणाम्, क्षिया
		"	क्षीपु

भी ( उर ), ही ( लज्जा ), वी ( बुद्धि ), सुश्री इत्यादि के रूप  
श्री के नमान होते हैं ।

## तृतीय मोपान

तृ०	अतिज	अतिगम्याम्	अतिभि
च०	अतिजे	अतिगम्याम्	अतिगम्य
प०	अतिज	अतिगम्याम्	अतिगम्य
प०	अतिज	अतिनाः	अतिनाम्
स०	अतिजि	अतिजो	अतिवृ

भूभुज् ( राजा ), हुतभुज् ( अग्नि ), भिपज् ( वैद्य ), वणिज् ( बनिया ), पयोमुच् ( घादल ) के रूप अतिज् के समान होते हैं

## भिपज्—वैद्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भिपक्	भिपजा	भिपज
स०	हे भिपक्	हे भिपजौ	हे भिपज
दि०	भिपजम्	भिपजौ	भिपज
तृ०	भिपजा	भिपगम्याम्	भिपभि

इत्यादि ।

## वणिज्—बनिया

प्र०	वणिक्	वणिजी	वणिज
स०	हे वणिक्	हे वणिजा	हे वणिजः
दि०	वणिजम्	वणिजा	वणिज
तृ०	वणिजा	वणिगम्याम्	वणिभि

इत्यादि ।

## पयोमुच्—घादल

प्र०	पयोमुक्	पयोमुजी	पयोमुच
------	---------	---------	--------

स०	हे पयोमुक्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुच
द्वि०	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुच
तृ०	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भि
इत्यादि ।			

### परिवाज्—सन्यामी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	परिवाट्	परिवाजौ	परिवाज
स०	हे परिवाट्	हे परिवाजौ	हे परिवाज
द्वि०	परिवाजम्	परिवाजौ	परिवाज
तृ०	परिवाजा	परिवाद्भ्याम्	परिवाद्भि
च०	परिवाजे	परिवाद्भ्याम्	परिवाद्भ्य
प०	परिवाज	परिवाद्भ्याम्	परिवाद्भ्य
प०	परिवाज	परिवाजो	परिवाजाम्
स०	परिवाजि	परिवाजो	परिवाद्भ्य

इसी प्रकार सम्राज् (महाराजा), विश्वसृज् (सम्राट् का रचने), विराज् (बड़ा) के रूप होते हैं ।

### सम्राज्

प्र०	सम्राट्	सम्राजौ	सम्राज
द्वि०	सम्राजम्	सम्राजौ	सम्राज



१००	दपद	दपदो	दपदाम्
१००	दपदि	दपदो	दपदसु

गरद्, आपद्, विपद्, सम्पद् (धन), मसद् (मभा) के दृपद् के समान होते हैं।

( स ) नपु० हृद्—हृदय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हृत्	हृदी	हृन्दि
स०	हे हृत्	हे हृदी	हे हृन्दि
द्वि०	हृत्	हृदी	हृन्दि
तृ०	हृदा	हृद्भ्याम्	हृद्भि
च०	हृदे	हृद्भ्याम्	हृद्भ्य
प०	हृद	हृद्भ्याम्	हृद्भ्य
प०	हृद	हृदा	हृदाम्
स०	हृदि	हृदो	हृदसु

७०-धकारान्त शब्द

स्त्री० समिध्—यज्ञ की लकड़ी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१०	समिध	समिधौ	समिध
१०	हे समिध	हे समिधौ	हे समिध



याजा), हृदयन्तुद् (हृदय को पीड़ा पहुँचानेवाला)  
दकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप सुहृद् के समान होते हैं।

### पद्—पैर

द्वि०			पद्
तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भि
च०	पदे	पद्भ्याम्	पद्भ्य
प०	पद	पद्भ्याम्	पद्भ्यः
प०	पद	पदो	पदाम्
स०	पदि	पदो	पदसु

नोट—दकारान्त पद् शब्द के प्रथम पाँच रूप नहीं होते। आगरपक्ष पदने पर अकारान्त, पद, के रूपों का प्रयोग होता है।

### ( क ) स्त्री० वृषद्—पत्थर, चट्टान

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वृषद्	वृषदौ	वृषद
स०	हे वृषद्	हे वृषदौ	हे वृषद
द्वि०	वृषदम्	वृषदौ	वृषदं
तृ०	वृषदा	वृषद्भ्याम्	वृषद्भि
च०	वृषदे	वृषद्भ्याम्	वृषद्भ्य
प०	वृषद	वृषद्भ्याम्	वृषद्भ्यः

( ग ) नपु० असृज्—जोहू

प्र०	असृक्	असृजी	असृजि
स०	हे असृक	हे असृजी	हे असृजि
द्वि०	असृक्	असृजी	असृजि
तृ०	असृजा	असृग्भ्याम्	असृग्भि
च०	असृजे	असृग्भ्याम्	असृग्भ्य
प०	असृज	असृग्भ्याम्	असृग्भ्य
प०	असृज	असृजो	असृजाम्
स०	असृजि	असृजो	असृजु

सभी जकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप असृज् के समान हैं।

६८—तकारान्त शब्द

( क ) पुलिङ्ग भूभृत्—राजा, पहाड़

एकवचा	द्विवचा	बहुवचन
भूभृत्	भूभृतौ	भूभृत
हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृत
भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृत
भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भि

अध्वन् (मार्ग), अश्वन् (पत्थर), गध्वन् (यज्ञ करने वाला),  
( ब्रह्मा ), सुशर्मन् ( महाभारत की लड़ाई में एक योद्धा का  
, कृतधर्मन् ( एक योद्धा का नाम ) के रूप आत्मन् के समान  
ने हैं ।

नोट—आत्मा शब्द हिन्दी में झोलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, किन्तु  
उत्त में यह शब्द पुलिङ्ग है, यह ध्यान में रखना चाहिए ।

### पु० राजन्—राजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	राजा	राजानौ	राजान
स०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजान
द्वि०	राजानम्	राजानौ	राज
तृ०	राज्ञा	राजन्याम्	राजभि

## तृतीय सोपान

तृ० सम्राजा सम्राड्भ्याम् सम्राड्भि  
इत्यादि परिवाज् के समान ।

---

	एकवचन	द्विवचन	बहु वचन
प्र०	विराट्	विराजौ	विराजः
द्वि०	विराजम्	विराजौ	विराज
तृ०	विराजा	विराड्भ्याम्	विराड्भि

इत्यादि परिवाज् के समान ।

---

## (ख) स्त्री० सज्—माला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सक्	सजो	सज
स०	हे सक्	हे सजो	हे सज
द्वि०	सजम्	सजौ	सज
तृ०	सजा	सज्भ्याम्	सजिभि
च०	सजे	सज्भ्याम्	सज्य
प०	सज	सज्भ्याम्	सज्य
प०	सज	सजो	सजाम्
स०	सजि	सजो	सजु

सज् ( रोग ) के भी रूप सज् के समान होते हैं ।

---

प्र०	समिधम्	समिधौ	समिध
तृ०	समिधा	समिद्भ्याम्	समिदि
च०	समिधे	समिद्भ्याम्	समिद्भ्य
प०	समिध	समिद्भ्याम्	समिद्भ्य
प०	समिध	समिधो	समिधाम्
स०	समिधि	समिधो	समिधु

धीर्य ( जता ), जुध् ( भूय ), कुध् ( क्रोध ) युध् ( -  
इत्यादि सभी धकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप समिध् के  
होते हैं ।

### ७१-नकारान्त शब्द

पु० आत्मन्—आत्मा

प्र०	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	आत्मा	आत्मागौ	आत्मान
च०	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मान
प०	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मन्
प०	आत्मा	आत्मभ्याम्	आत्मभि
स०	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्य
प०	आत्मन	आत्मभ्याम्	आत्मभ्य
प०	आत्मन	आत्मनो	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	आत्मनो	आत्मसु

## सजा विचार

( ग ) नपु० असृज्—लोह

प्र०	असृक्	असृज्	असृजि
स०	हे असृज	हे असृजा	हे असृजि
दि०	असृक	असृजा	असृजि
तृ०	असृजा	असृजन्याम्	असृजि
च०	असृज	असृजान्	असृज्य
प०	असृज	असृज्याम्	असृज्य
प०	असृज	असृजा	असृजान्
म०	असृजि	असृजो	असृज

सभी जकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप असृज् के समान हैं।

## ६८-तकारान्त शब्द

( क ) पुलिङ्ग भूभृत्—राजा, पहाड़

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
भूभृत्	भूभृतौ	भूभृत
हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृत
भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृत
भूभृता	भूभृदभ्याम्	भूभृजि



प्रथम (मार्ग), अथम (पथ), यच्च (यज करने वाला),  
(यज्ञ), सुजर्मन् (महाभारत की लड़ाई में एक योद्धा का  
) जन्म (एक योद्धा का नाम) के रूप आत्मन् के समान  
ने हैं।

नाट—क्यामा शब्द हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, किन्तु  
जहाँ में यह शब्द पुलिङ्ग है, वह ध्या में रखा चाहिए।

### पु० राजन्—राजा

	एकवचन	द्विवचन	षट्पञ्चा
प्र०	राज	राजानौ	राजान
म०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजान
हि०	राजाय	राजानौ	राज
तु०	राजा	राजभ्याम्	राजभि
व०	राज	राजभ्याम्	राजभ्य
प०	राज	राजभ्याम्	राजभ्य
प०	राज	राजो	राजाम्
स०	राजि राजनि	राजो	राजसु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द राज्ञी (ईकारान्त) है जिसके  
नन्हीं के समान चलते हैं।

घ०	भृशृते	भृशृदभ्याम्	भृशृदभ्य
प०	भृशृत	भृशृदभ्याम्	भृशृदभ्य
प०	भृशृत	भृशृतो	भृशृताम्
स०	भृशृति	भृशृतो	भृशृशु

महीभृत् ( राजा, पहाड़ ), दिनकृत् ( सूर्य ), शशभृत् ( चन्द्रमा ), परभृत् ( कोयल ), मरुत् ( वायु ), विश्वजित् ( समा का जीतने वाला या एक प्रकार का यज्ञ ) के रूप भृशृत् के सन्त होते हैं ।

### श्रीमत्—भाग्यधान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	श्रीमान्	श्रीमन्तौ	श्रीमन्त
स०	हे श्रीमन्	हे श्रीमन्तौ	हे श्रीमन्त
दि०	श्रीमन्तम्	श्रीमन्तौ	श्रीमन्त
तृ०	श्रीमता	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भि
च०	श्रीमते	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्य
पं०	श्रीमत	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्य
प०	श्रीमत	श्रीमतो	श्रीमताम्
स०	श्रीमति	श्रीमतो	श्रीमशु

श्रीमत् ( बुद्धिमान् ), बुद्धिगत्, भागुमत् ( चमकने वाला ), सविमत् ( पहाड़ ), धनुष्मत् ( धनुर्गरी ), अशुमत् ( सूर्य ), विश्वजित्

## तृतीय सोपान

### पु० महिमन्—वर्णन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	महिमा	महिमानौ	महिमान
स०	हे महिमन्	हे महिमानौ	हे महिमान
द्वि०	महिमानम्	महिमानौ	महिन्न
तृ०	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभि
च०	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्य
प०	महिम्न	महिमभ्याम्	महिमभ्य
प०	महिम्न	महिम्नो	महिम्नाम्
स०	महिम्नि महिमनि	महिम्नो	महिमसु

सूर्यन् ( शिर ), मीमन् [ ( चौदही ) खीलिङ्ग ],  
( वङ्गपन ), लघिमन् ( छोटापन ), अणिमन् ( छोटापन ),  
( सफेदी ), कालिमन् ( कालापन ), द्रढिमन् ( मजबूती ), अरि  
इत्यादि समस्त अश्रन्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप महिमन् के  
होते हैं ।

नोट - हिन्दी में महिमा, कालिमा, नीलिमा आदि शब्द खीलिङ्ग  
प्रयुक्त किए जाते हैं किन्तु संस्कृत में पुलिङ्ग में, इसका ध्यान  
चाहिए ।

पेद्यावाला), वनवत् ( वलवान् ), भगवत् ( प्रज्य ), भाग्यवत्  
भाग्यवान् ), गन्धवत् ( गया दुग्धा ), उक्तवत् ( कौल चुका दुग्धा ),  
तवत् ( तुल चुका दुग्धा ) के रूप श्रीमत् के भ्रमान होते हैं ।  
खलिङ्ग में इनके जोड़ के प्रातिपदिक ई प्रत्यय लगाकर श्रीमती,  
द्वैमती आदि बनते हैं और इनके रूप ईकारान्त नदी शब्द के  
भ्रमान चलते हैं ।

### भयत्—आप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भयान्	भवन्तौ	भवन्त
स०	हे भयन्	हे भवन्तौ	हे भवन्त
द्वि०	भयन्तम्	भवन्ता	भवत
तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भि
च०	भयते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्य
प०	भवत	भवद्भ्याम्	भवद्भ्य
प०	भवत	भवतो	भवताम्
स०	भवति	भवता	भवतासु

इसीसे खलिङ्ग भवती शब्द बनता है ।

पु० युयन्—जघान

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
युवा	युगनौ	युवान
हे युवन्	हे युगनौ	हे युवान
युधानम्	युगनौ	यून
यूना	युवभ्याम्	युगभि
यूने	युवभ्याम्	युवभ्य
यून	युवभ्याम्	युवभ्य
यून	यूनो	यूनान्
यूनि	यूनो	युवसु

सके जोर का खोलिझ शब्द युधती है जिसके रूप नदी में  
चलते हैं ।

पु० श्वन्—कुत्ता

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
श्व	श्वानौ	श्वान
हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वान
श्वानम्	श्वानौ	शु
शुना	श्वभ्याम्	श्वभि
शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्य

## महत्-बड़ा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	महान्	महान्तौ	महान्त
स०	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्त
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महत
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भि
च०	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्य
५०	महत	महद्भ्याम्	महद्भ्य
प०	महत	महतो	महताम्
स०	महति	महतो	महत्सु

इसके जोड़ का खीलिङ्ग शब्द महती है ।

## पठत्-पढ़ता हुआ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पठन्	पठन्तौ	पठन्त
स०	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्त
द्वि०	पठन्तम्	पठन्तौ	पठन
तृ०	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भि
च०	पठते	पठद्भ्याम्	पठद्भ्य
प०	पठत	पठद्भ्याम्	पठद्भ्य
प०	पठत	पठतो	पठताम्
स०	पठति	पठतोः	पठत्सु

प०	शुन	शम्याम्	शम्य
प०	शुन	शुनो	शुनाम्
स०	शुनि	शुनो	शुनु

पु० अर्चन्—घोत्र, इन्द्र

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अर्चा	अर्चन्तौ	अर्चन्त
स०	हे अर्चन्	हे अर्चन्तो	हे अर्चन्त
द्वि०	अर्चन्तम्	अर्चन्तौ	अर्चन्त
तृ०	अर्चता	अर्चद्भ्याम्	अर्चद्भिः
च०	अर्चते	अर्चद्भ्याम्	अर्चद्भ्यः
प०	अर्चत	अर्चद्भ्याम्	अर्चद्भ्यः
प०	अर्चत	अर्चतो	अर्चताम्
स०	अर्चति	अर्चतो	अर्चसु

पु० मघवन्—इन्द्र

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवान
स०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवान
द्वि०	मघवाः	मघवानौ	मघवो

धावत् ( दौंता हुआ ), गच्छत् ( जाता हुआ ), वदत् ( बोलता हुआ ), पश्यत् ( देखता हुआ ), गृह्णत् ( लेता हुआ ), गतत् ( गिरता हुआ ), शोचत् ( सोचता हुआ ), पान् ( पीता हुआ ), भजत् ( होता हुआ ) इत्यादि सभी शब्द इत्ययान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप पठत् के समान होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में पठन्ती, धावन्ती आदि होते हैं और रूप नदी के समान चलते हैं।

### उत्—दांत

दि०			उत्
तृ०	दत्ता	दद्म्याम्	दन्ति
च०	दत्ते	दद्म्याम्	दन्म्य
प०	दत्त	दद्म्याम्	दन्म्य
प०	दत्त	दत्तो	दताम्
म०	दत्ति	दत्तो	दधु

नोट—इस शब्द के प्रथम पाँच रूप संस्कृत में नहीं पाए जाते, उनके स्थान पर स्वरान्त दत्त शब्द के रूपों का प्रयोग होता है।

### ( रा ) स्त्रीलिङ्ग सरित्—नदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सरित्	सरितौ	सरित्
रा०	हे सरित्	हे सरितौ	हे सरित्



तृ०	मघोता	मघत्रभ्याम्	मघवभि
च०	मघोने	मघत्रभ्याम्	मघत्रभ्य
प०	मघोन	मघवभ्याम्	मघवभ्य
प०	मघोन	मघोना	मघोनाम्
स०	मघोनि	मघोनो	मघवसु

मघवन् का रूप विकल्प करके इस प्रकार भी होता है —

प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघत्रन्त
स०	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्त
द्वि०	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवत
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भि
च०	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्य
प०	मघवत	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्य
प०	मघवत	मघवतो	मघवताम्
म०	मघवनि	मघवता	मघवसु

### पु० पुपन्—सूर्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पूपा	पूपणौ	पूपण
स०	हे पूपन्	हे पूपणौ	हे पूपण
द्वि०	पूप्याम्	पूपणौ	पूप्य
तृ०	पूप्या	पूपभ्याम्	पूपभि

द्वि०	सरित्तम्	सरित्ती	सरित
तृ०	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भि
च०	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्य
प०	सरित	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्य
प०	सरित	सरितो	सरिताम्
स०	सरिति	सरितो	सरित्सु

विद्युत् ( बिजली ), योग्नि ( लौ ) के रूप सरित् के चलते हैं ।

### ( ग ) नपु० जगत्—ससार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	जगत् जगद्	जगती	जगन्ति
स०	हे जगत्, हे जगद्	हे जगती	हे जगन्ति
द्वि०	जगत्	जगती	जगन्ति
तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भि
च०	जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्य
प०	जगत	जगद्भ्याम्	जगद्भ्य
प०	जगत	जगतो	जगताम्
स०	जगति	जगतो	जगत्सु

श्रीमत्, भवत् ( होता हुआ ), तथा और भी तकारात् सकलिङ्ग शब्दों के रूप जगत् के समान होते हैं ।

च०	पू०	पू०भ्याम्	पू०भ्य
प०	पू०	पू०भ्याम्	पू०भ्य
प०	पू०	पू०भ्यो	पू०भ्याम्
स०	पू०, पू०णि	पू०भ्यो	पू०भ्य

### प० हस्तिन्—हाथी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हस्ती	हस्तिनौ	हस्तिन
स०	हे हस्तिन्	हे हस्तिनौ	हे हस्तिन
द्वि०	हस्तिनम्	हस्तिनौ	हस्तिन
त०	हस्तिना	हस्तिभ्याम्	हस्तिभि
च०	हस्तिने	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्य
प०	हस्तिन	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्य
प०	हस्तिन	हस्तिनो	हस्तिनाम्
स०	हस्तिनि	हस्तिनो	हस्तिभ्य

स्वामिन्, करिन् ( हाथी ), गुणिन् ( गुणी ), मन्त्रिन् ( मन्त्री ),  
 शिन् ( चन्द्रमा ), पत्तिन् ( पत्नी, चिट्ठिया ), धनिन् ( धनी ), वाजिन्  
 घोड़ा ), तपस्विन् ( तपस्वी ), एकाकिन् ( अकेला ), बलिन्  
 बली ), सुखिन् ( खुरी ), सत्यवादिन् ( सच बोलने वाला )  
 नाधिन् इत्यादि इन् में अन्त होनेवाले शब्दों के रूप हस्तिन् के  
 माने होते हैं ।

इक्षन्त शब्दों के जोड़ के खीलिङ्ग शब्द ईकार जोड़ कर स्तिनी, एकाकिनी, भाविनी आदि ईकारान्त होते हैं जिनके रूप दी के समान चलते हैं।

पथिन् शब्द के रूपों में जो भेद होता है वह नीचे दिखाया जाता है —

पुलिङ्ग पथिन्—मार्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पन्था	पन्थानौ	पन्थान
स०	हे पन्था	हे „	हे पन्थान
हि०	पन्थानम्	पन्थानौ	पथ
वृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभि
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्य
प०	पथ	पथिभ्याम्	पथिभ्य
प०	पथ	पथो	पथाम्
म०	पथि	पथो	पथिषु

( क ) स्त्री० सीमन्—चौहद्दी

सीमन् के रूप महिमन् के समान होते हैं, जैसे —

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सीमा	सीमानौ	सीमान
स०	हे सीमन्	हे सीमानौ	हे सीमान

स० व्या० १००

निशे	{ निज्याम् निह्याम्	{ निज्य निह्य
निश	{ निज्याम् निह्याम्	{ निज्य निह्य
निश	निशो	निशाम्
निशि	निशो	{ निष् निह् निह्

### ७७-पञ्चान्त शब्द

पु० द्विप्—शनु

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्विप्	द्विषी	द्विष
हे द्विप्	हे द्विषी	हे द्विष
द्विषम्	द्विषी	द्विष
द्विषा	द्विह्याम्	द्विह्यि
द्विषे	द्विह्याम्	द्विह्य
द्विष	द्विह्याम्	द्विह्य
द्विष	द्विषो	द्विषाम्
द्विषि	द्विषो	द्विह्यु

द्वि०	सीमानम्	सीमानौ	सीमन्
तृ०	सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभि
च०	सीम्ने	सीमभ्याम्	सीमभ्य
प०	सीम्न	सीमभ्याम्	सीमभ्य
प०	सीम्न	सीम्नो	सीम्नाम्
स०	{ सोम्नि सीमनि	सीम्नो	सीमसु

## ( ख ) नपु० नामन्—नाम

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
स०	हे नाम, हे नामन्	हे नाम्नी, नामनी	हे नामानि
द्वि०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभि
च०	नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्य
प०	नाम्य	नामभ्याम्	नामभ्य
प०	नाम्न	नाम्नो	नाम्नाम्
स०	नाम्नि, नामनि	नाम्ना	नामसु

धामन् ( घर, चमक ), व्योमन् ( आकाश ), सामन् ( स वेद का मन्त्र ), प्रेमन् ( प्यार ), दामन् ( रस्सी ) के रूप नामन् समान होते हैं ।

## स्त्री० प्रावृप्—वर्षा ऋतु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	प्रावृट्, प्रावृड्	प्रावृषौ	प्रावृषा
स०	हे प्रावृट्, प्रावृड्	हे प्रावृषौ	हे प्रावृष
द्वि०	प्रावृषम्	प्रावृषौ	प्रावृष
तृ०	प्रावृषा	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भि
च०	प्रावृषे	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भ्य
प०	प्रावृष	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भ्य
प०	प्रावृष	प्रावृषो	प्रावृषाम्
स०	प्रावृषि	प्रावृषो	प्रावृड्सु

## ७८—सकारान्त शब्द

## पु० चन्द्रमस्—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	चन्द्रमा	चन्द्रमसौ	चन्द्रमस
स०	हे चन्द्रम	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमस
द्वि०	चन्द्रमसम्	चन्द्रमसौ	चन्द्रमस
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभि
च०	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्य
प०	चन्द्रमस	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्य
प०	चन्द्रमस	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसाम्
स०	चन्द्रमसि	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसु

नपु० चर्मन्—चर्मड़ा

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० चर्म	चर्मणी	चर्माणि
स० हे चर्म, हे चर्मन्	हे चर्मणी	हे चर्माणि
द्वि० चर्म	चर्मणी	चर्माणि
तृ० चर्मणा	चर्मभ्याम्	चर्मभि
च० चर्मणे	चर्मभ्याम्	चर्मभ्य
प० चर्मण्य	चर्मभ्याम्	चर्मभ्य
प० चर्मण्य	चर्मणो	चर्मणाम्
स० चर्मणि	चर्मणो	चर्मसु

पर्वन् ( पौर्णमासी, या अमावास्या या त्योहार ), ब्रह्मन् ( ब्रह्म ),  
 चर्मन् ( कवच, जिरह पहनर ), जन्मन् ( जन्म ), घर्मन् ( रास्ता ),  
 गर्मन् ( सुप्त ) के रूप चर्मन् के समान होते हैं ।

नपु० अहन्—दिन

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१० अह	अह्नी, अह्नी	अहानि
१० हे अह	हे अह्नी, अह्नी	हे अहानि
द्वे० अह	अह्नी, अह्नी	अहानि
तृ० अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभि
३० अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्य



दिवौकस् ( देवता ), महौजम् ( बड़ा तेजगाला ), वेधस् ( बड़ा ), सुमनस् ( अच्छा चित्त वाला ), महावशस् ( बड़ा म्बी ), महातेजस् ( बड़ी कान्ति वाला ), विशालवक्षस् ( बड़ी छाती वाला ), दुर्वासम् ( दुर्गामा—बुरे कपड़े वाला ), इतम् इत्यादि सभी सकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप चन्द्रमस् समान होते हैं ।

### पु० मास्—महीना

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०			मास
तृ०	मासा	माभ्याम्	माभि
च०	मासे	माभ्याम्	माभ्य
प०	मास	माभ्याम्	माभ्य
प०	मास	मासे	मामाम्
स०	मासि	मासे'	{ मा सु मासु

### पु० पुम्स्—पुरुष

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पुमान्	पुमासौ	पुमान्
स०	हे पुमन्	हे पुमासौ	हे पुमान्
द्वि०	पुमांसम्	पुमासौ	पुंस

पं०	अद्	अद्गोभ्याम्	अद्गोभ्य
प०	अद्	अद्गो	अद्गाम्
स०	अद्भि, अद्भिनि	अद्गो	अद्गु, अद्गुस्

### नपु० भाविन्—होने वाला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भावि	भाविनी	भावीनि
स०	हे भावि	हे भाविनी	हे भावीनि
द्वि०	भावि	भाविनी	भावीनि
तृ०	भाविना	भाविभ्याम्	भाविभि
च०	भाविने	भाविभ्याम्	भाविभ्य
प०	भाविन	भाविभ्याम्	भाविभ्य
प०	भाविन	भाविनो	भाविनाम्
स०	भाविनि	भाविनो	भाविषु

इसी प्रकार सभी इञ्जन्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं

### ७२-पकारान्त शब्द

#### स्त्री० अप्-पानी

अप् के रूप केवल बहुवचन में होते हैं —

बहुवचन

प्र०	आप
स०	हे आप

तृ०	पुसा	पुम्भ्याम्	पुग्भि
च०	पुसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
प०	पुस	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
प०	पुंस	पुसो	पुसाम्
स०	पुसि	पुसो	पुसु

पु० विद्वस्—विद्वान्

	ए०व०	द्विव०	ब०ब०
प्र०	विद्वान्	विद्वत्सौ	विद्वत्स
स०	हे विद्वन्	हे विद्वत्सौ	हे विद्वत्स
द्वि०	विद्वत्सम्	विद्वत्सौ	विद्वत्स
तृ०	विद्वत्सु	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भि
च०	विद्वत्से	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
प०	विद्वत्स	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
प०	विद्वत्सु	विद्वत्सो	विद्वत्साम्
स०	विद्वत्सि	विद्वत्सो	विद्वत्सु

यस् में अन्न होने वाले शब्दों के रूप इसी प्रकार चलते हैं।  
इसके जोड़ का खोलिङ्ग शब्द “विद्वत्सु” है, जिसके रूप नदी  
के समान चलते हैं।

पु० लघीयस्—उससे छोटा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	लघीयान्	लघीयासौ	लघीयास
स०	हे लघीयन्	हे लघीयासौ	हे लघीयास

स्त्री० पुर्-नगर

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पू	पुरौ	पुर
स०	हे पू	हे पुरौ	हे पुर
द्वि०	पुरम्	पुरौ	पुर
तृ०	पुरा	पृथ्याम्	पृथि
च०	पुरे	पृथ्याम्	पृथ्यं
प०	पुर	पृथ्याम्	पृथ्य
प०	पुर'	पुरो	पुराम्
स०	पुरि	पुरो	पूरुं

धुर् ( धुरा ) के रूप भी इसी प्रकार होते हैं ।

७५-वकारान्त शब्द

स्त्री० दिव्-आकाश, स्वर्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्यौ	दिवौ	दिव
स०	हे द्यौ	हे दिवौ	हे दिव
द्वि०	दिवम्	दिवौ	दिव
तृ०	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभि
च०	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्य

। द्वि०	लघीयासम्	लघीयासौ	लघीयस
। तृ०	लघीयसा	लघीयोभ्याम्	लघीयोभि
। च०	लघीयसे	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्य
। प०	लघीयम	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्य
। प०	लघीयस	लघीयसे।	लघीयमाम्
। स०	लघीयसि	लघीयसो	लघीय सु, लघीयस्सु

श्रेयस्, गरीयस् ( अधिक बडा, ) द्रढीयस् ( अधिक मजबूत ),  
 द्राघीयस् ( अधिक लम्बा ), प्रथीयस् ( अधिक माटा या बडा ),  
 इत्यादि ईयस् प्रत्यय से बने हुए पुलिङ्ग शब्दों के रूप लघीयम् के  
 समान होते हैं ।

इनके जोड़ घाले त्रिलिङ्ग शब्द श्रेयसी, गरीयसी, द्रढीयसी,  
 द्राघीयसी इत्यादि "ई" जोड़कर बनते हैं जिनके रूप नदी के समान  
 चलते हैं ।

### पु० श्रेयस्—अधिक प्रशंसनीय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	श्रेयान्	श्रेयासौ	श्रेयास
स०	हे श्रेयन्	हे श्रेयामौ	हे श्रेयास
द्वि०	श्रेयासम्	श्रेयामौ	श्रेयस
तृ०	श्रेयसा	श्रेयाभ्याम्	श्रेयोभि
च०	श्रेयसे	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्य

## ७४-रकारान्त शब्द

नपु० धार—पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वा	धारी	वारि
द्वि०	वा	वारी	वारि
तृ०	वारा	वाभ्याम्	वार्भि
च०	वारे	वाभ्याम्	वाभ्यं
प०	धार	"	'
प०	"	वारो	वाराम्
स०	वारि	"	वारुं

( क ) स्त्री० गिर्—वाणी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	गी	गिरौ	गिर
स०	हे गी	हे गिरौ	हे गिर
द्वि०	गिरम्	गिरौ	गिर
तृ०	गिरा	गीभ्याम्	गीभिः
च०	गिरे	गीभ्याम्	गीभ्यं
प०	गिर	गीभ्याम्	गीभ्यं
प०	गिर	गिरो	गिराम्
स०	गिरि	गिरो	गीर्णुं

प०	श्रेयस	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्य
प०	श्रेयस	श्रेयसो	श्रेयसाम्
स०	श्रेयसि	श्रेयसो	{ श्रेयसु अथ सु

## पु० दोस्—भुजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दो	दोपौ	दोष
स०	हे दो	हे दोपौ	हे दोष
द्वि०	दो	दोपौ	दोष, तौ
तृ०	{ दोषा दोष्णा	{ दोभ्याम् दोषभ्याम्	{ दोभि दोषभि
च०	{ दोषे दोष्णे	{ दोभ्याम् दोषभ्याम्	{ दोभ्य दोषभ्य
प०	{ दोष दोष्ण	{ दोभ्याम् दोषभ्याम्	{ दोभ्य दोषभ्य
प०	{ दोष दोष्ण	{ दोषो दोष्णो	{ दोषाम् दोष्णाम्
स०	{ दोषि दोष्णि दोषणि	{ दोषो दोष्णो	{ दोषु दोषु दोषु

## (क) स्त्री० अप्सरस्-अप्सरा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अप्सरा	अप्सरसौ	अप्सरसः

स्त्री० पुर्-नगर

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पू	पुरौ	पुर
स०	हे पू	हे पुरौ	हे पुर
द्वि०	पुरम्	पुरौ	पुर
तृ०	पुरा	पूर्याम्	पूरि
च०	पुरे	पूर्याम्	पूर्य
प०	पुर	पूर्याम्	पूर्य
प०	पुर	पुरो	पुराम्
स०	पुरि	पुरो	पूरु

धुर् ( धुरा ) के रूप भी इसी प्रकार होते हैं ।

७५-वकारान्त शब्द

स्त्री० दिव्-आकाश, स्वर्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्यौ	दिवौ	दिव
स०	हे द्यौ	हे दिवौ	हे दिव
द्वि०	दिवम्	दिवौ	दिव
तृ०	दिवा	द्युम्याम्	द्युमि
च०	दिवे	द्युम्याम्	द्युम्य



स०	हे अप्सर	हे अप्सरसौ	हे अप्सरस
द्वि०	अप्सरसम्	अप्सरसौ	अप्सरस
तृ०	अप्सरसा	अप्सरोभ्याम्	अप्सरोभि
च०	अप्सरसे	"	अप्सरोभ्य
प०	अप्सरस	"	अप्सरोभ्य
प०	"	अप्सरसो	अप्सरसाम्
स०	अप्सरसि	"	अप्सरसु अप्सर सु

अप्सरस् शब्द का प्रयोग बहुधा बहुवचन में ही होता है ।

स्त्री० आगिस्-आशीर्वाद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	आशी	आशिपौ	आशिप
स०	हे आशी	हे आशिपौ	हे आशिप
द्वि०	आशिपम्	आशिपौ	आशिप
तृ०	आशिपा	आशीभ्याम्	आशीर्भि
च०	आशिपे	आशीभ्याम्	आशीर्भ्य
प०	आशिप	आशीभ्याम्	आशीभ्य
प०	आशिप	आशिपो	आशिपाम्
स०	आशिपि	आशिपो	आशी पु आशीणु

(ख) नपु० पयस्-दूध या पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पय	पयसी	पयासि

प०	दि३	द्युभ्याम्	द्युभ्य
प०	दि३	दिवो०	दिवाम्
स०	दिवि	दिवो	द्युप्

## ७६-शकारान्त शब्द

## पु० विञ्—यनिया

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विट्	विशौ	विश
स०	हे विट्	हे विशौ	हे विश
द्वि०	विशम्	विशौ	विश
तृ०	विश	विद्भ्याम्	विद्भि
च०	विशे	विद्भ्याम्	विद्भ्य
प०	विश	विद्भ्याम्	विद्भ्य
प०	विश	विशो	विशाम्
स०	विशि	विशो	विट्सु

## पु० ताट्—उभके समान

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ताट्	ताटशौ	ताटश
स०	हे ताट्	हे ताटशौ	हे ताटश

प०	श्रेयस	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोम्
प०	श्रेयस	श्रेयसो	श्रेयसाम्
स०	श्रेयसि	श्रेयसो	{ श्रेयसु श्रेय सु

## पु० दौस्—भुजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दो	दोपौ	दोप
स०	हे दो	हे दोपो	हे दाप
द्वि०	दो	दोपौ	दोप, दोष्
तृ०	{ दोपा दोष्णा	{ दोभ्याम् दोपभ्याम्	{ दोभि दोपभि
च०	{ दोपे दोष्णे	{ दोभ्याम् दोपभ्याम्	{ दोभ्यं दोपभ्यं
प०	{ दोप दोष्ण	{ दोभ्याम् दोपभ्याम्	{ दोभ्यं दोपभ्यं
प०	{ दोप दोष्ण	{ दोपो दोष्णो	{ दोपाम् दोष्णाम्
स०	{ दोपि दोष्णि दोपणि	{ दोपो दोष्णो	{ दोषु दा पु दोपु

## (क) स्त्री० अप्सरम्—अप्सरा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अप्सरा	अप्सरसौ	अप्सरस

तादृशम्	तादृशी	तादृश
तादृशा	तादृश्याम्	तादृशि
तादृशे	तादृश्याम्	तादृश्य
तादृश	तादृश्याम्	तादृश्य
तादृश	तादृशे	तादृशाम्
तादृशि	तादृशे	तादृशु

दृश् ( जेसा ), मादृश् ( मेरे समान ), भवादृश् ( आप के ), त्वादृश् ( तुम्हारे समान ), एतादृश् ( इसके समान ) के रूप तादृश के समान होते हैं ।

के जोड़ वाले खीलिङ्ग शब्द तादृशी, मादृशी, यादृशी, ती आदि हैं जिनके रूप नदी के समान चलते हैं ।

इसके लिङ्ग में तादृश, मादृश, त्वादृश इत्यादि के रूप इस होंगे —

नपु० तादृश—उसके समान

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तादृक्	तादृशी	तादृशि
हे तादृक्	हे तादृशी	हे तादृशि
तादृक्	तादृशी	तादृशि
तादृशा	तादृश्याम्	तादृशि

इत्यादि पुलिङ्ग के समान ।

स०	हे अप्सर	हे अप्सरसौ	हे अप्सरस
द्वि०	अप्सरसम्	अप्सरसौ	अप्सरस
तृ०	अप्सरसा	अप्सरोभ्याम्	अप्सरोभि
च०	अप्सरसे	"	अप्सरोभ्य
प०	अप्सरस	"	अप्सरोभ्य
प०	"	अप्सरसो	अप्सरसाम्
स०	अप्सरसि	,	अप्सरसु अप्सर सु

अप्सरस् शब्द का प्रयोग बहुधा बहुवचन में ही होता है ।

### स्त्री० आशिस्-आशीर्वाद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	आशी	आशिपौ	आशिप
स०	हे आशी	हे आशिपौ	हे आशिप
द्वि०	आशिपम्	आशिपौ	आशिप
तृ०	आशिपा	आशीभ्याम्	आशीभि
च०	आशिपे	आशीभ्याम्	आशीभ्य
प०	आशिप	आशीभ्याम्	आशीभ्य
प०	आशिप	आशिपो	आशिपाम्
स०	आशिपि	आशिपो	आशी पु आशीषु

### ( स्त ) नपु० पयस्—दूध वा पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पय	पयसी	पयामि

तादृश, मादृश, भवादृश, त्वादृश इत्यादि के जोड़के अकारान्त शब्द तादृश, मादृश, भवादृश, त्वादृश आदि हैं और उनके रूप अकारान्त शब्दों के समान होते हैं जैसा कि नियम ४४ में पहिना ही दिया चुके हैं।

### ( क ) स्त्री० दिग्—दिशा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दिक्, दिग्	दिशौ	दिश
स०	हे दिक् दिग्	हे दिशौ	हे दिश
द्वि०	दिशाम्	दिशौ	दिश
तृ०	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भि
च०	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्य
प०	दिश	दिग्भ्याम्	दिग्भ्य
प०	दिश	दिशो	दिशाम्
स०	• दिशि	दिशो	दिशु

### स्त्री० निग्—रात

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
दि०	निशाम	निशौ	निश
त०	निशा	{ निग्भ्याम् निद्भ्याम्	{ निग्भि निद्भि

स०	हे पय	हे पयसी	हे पयासि
द्वि०	पय	पयसी	पयासि
तृ०	पयसा	पयोम्याम्	पयोनि
च०	पयसे	पयोम्याम्	पयोम्
प०	पयस	पयोम्याम्	पयोम्
प०	पयस	पयसो	पयमा
स०	पयसि	पयसो	पयसु

अम्भस् ( पानी ), नभस् ( आकाश ), आगस् ( पाप ),  
 उरस् ( छाती ), मनस् ( मन ), वयस् ( उम्र ), रजस् ( धूल ),  
 वक्षस् ( छाती ), तमस् ( अंधेरा ), अयस् ( लोहा ), धव  
 ( वचन, वात ), यशस् ( यश, कीर्ति ), सरस् ( तालाब ), तप  
 ( तपस्या ), शिरस् ( शिर ), इत्यादि सभी असन्त नपुंसकलि  
 शब्दों के रूप पयस् के समान होते हैं ।

### नपु० हविस्—होम की वस्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हवि	हविषी	हवींषि
स०	हे हवि	हे हविषी	हे हवींषि
द्वि०	हवि	हविषी	हवींषि
तृ०	हविषा	हविभ्याम्	हविभि
च०	हविषे	हविभ्याम्	हविभ्यं

प०	हविष	हविभ्याम्	हविभ्यं
प०	हविष	हविषो	हविषाम्
स०	हविषि	हविषो	हविषु, हविषु

सब 'इस्' में अन्त होनेवाले नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप स् की तरह होते हैं।

### नपु० वचुस्—आसि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वचु	वचुषी	वचूषि
स०	हे वचु	हे वचुषी	हे वचूषि
दि०	वचु	वचुषी	वचूषि
तृ०	वचुषा	वचुभ्याम्	वचुभिः
च०	वचुषे	वचुभ्याम्	वचुभ्यः
प०	वचुष	वचुभ्याम्	वचुभ्यं
प०	वचुष	वचुषो	वचुषाम्
स०	वचुषि	वचुषो	वचुषु, वचुषु

धनुस् ( धनुष ), वपुस् ( शरीर ), आयुस् ( उम्र ), यजुस् ( यजुर्वेद ) इत्यादि सब 'उस्' में अन्त होने वाले नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप वचुस् के समान होते हैं।



नपुंसक लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	{ एतत्, एतद् एनत् एनद्	एते	एतानि
द्वि०	{ एतत्, एतद् एनत्, एनद्	एते	एतानि
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतै
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्य
प०	एतस्मात्, एतस्माद्	एताभ्याम्	एतेभ्य
प०	एतस्य	एतयो, एनयो	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयो, एनयो	एतेषु

स्त्री लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	एता	एते	एता
द्वि०	एताम्, एनाम्	एते, एने	एता, एना
तृ०	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभि
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्य
प०	एतस्या	एताभ्याम्	एताभ्य
प०	एतस्या	एतयो, एनयो	एतासाम्
स०	एतस्याम्	एतयो, एनयो	एतासु

## ७९-इकारान्त शब्द

पु० मधुलिह्—शहद की मसृती, भारा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	मधुलिह्	मधुलिहौ	मधुलिह
स०	हे मधुलिह्	हे मधुलिहौ	हे मधुलिह
द्वि०	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिह
तृ०	मधुलिहा	मधुलिहभ्याम्	मधुलिहिभि
च०	मधुलिहे	मधुलिहभ्याम्	मधुलिहभ्य
प०	मधुलिह	मधुलिहभ्याम्	मधुलिहभ्य
प०	मधुलिह	मधुलिहो	मधुलिहाम्
स०	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिहसु

पु० अनडुह्—घेल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाह
स०	हे अनड्वान्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाह
द्वि०	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुह
तृ०	अनडुहा	अनडुहभ्याम्	अनडुहिभि
च०	अनडुहे	अनडुहभ्याम्	अनडुहभ्य
प०	अनडुह	अनडुहभ्याम्	अनडुहभ्य



प०	अनहुह	अनहुहो	अनहुहाम्
स०	अनहुहि	अनहुहो	अनहुहसु

स्त्री० उपानद्—जूता

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	उपानत्, उपानद्	उपानहौ	उपानह
स०	हे उपानत्, हे उपानद्	हे उपानहौ	हे उपानह
द्वि०	उपानहम्	उपानहौ	उपानह
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानन्ति
च०	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्य
प०	उपानह	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्य
प०	उपानह	उपानहो	उपाहाम्
स०	उपानहि	उपानहो	उपानहसु

चतुर्थ सोपान

सर्वनाम-विचार

८०—हिन्दी में 'सर्वनाम' शब्द का अर्थ 'किसी सज्ञा के निमित्त आया हुआ शब्द' है और यह अर्थ अँगरेजी के 'प्रोना' शब्द का भी है। किन्तु संस्कृत में सर्वनाम शब्द से ऐसे ३५

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सा	ते	ता
द्वि०	ताम्	ते	ता
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभि
च०	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्य
प०	तस्या	ताभ्याम्	ताभ्य
प०	तस्या	तयो	तासाम्
स०	तस्याम्	तयो	तासु

( घ ) अदस्—बह

पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभि
च०	अमुस्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्य
प०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्य
प०	अमुष्य	अमुयो	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयो	अमीषु

शब्दों का बोध होता है जो सर्व शब्दों से प्रारम्भ होते हैं और जिनके रूप प्रायः एक से चलते हैं (सर्वादीनि सर्वनामानि)।

इन ३५ शब्दों में

(१) कुछ तो जिस अर्थ में हिन्दी में सर्वनाम शब्द प्रयुक्त हैं उस अर्थ में सर्वनाम हैं।

(२) कुछ विशेषण हैं, और

(३) कुछ सख्यावाची शब्द हैं।

इस परिच्छेद में केवल प्रथम श्रेणी के शब्दों पर विचार किया जायगा।

८१—उत्तम पुरुषवाची 'अस्मद्' शब्द के रूप इस प्रकार चलते हैं —

### अस्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अहम्	आयाम्	वयम्
द्वि०	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, न
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्मभिः
च०	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्
प०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
प०	मम, मे	आवयो, नौ	अस्माकम्
स०	मयि	आवयो	अस्मासु

## नपुंसक लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अद	अम्	अमूनि
द्वि०	अद	अम्	अमूनि
तृ०	अमुना	अमूम्याम्	अमीभि
च०	अमुन्मे	अमूम्याम्	अमीभ्य
प०	अमुन्मात्	अमूम्याम्	अमीभ्य
प०	अमुप्य	अमुयो	अमीषाम्
स०	अमुप्मिन्	अमुयो	अमीषु

## स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	असौ	अम्	अम्
द्वि०	अमूम्	अम्	अम्
तृ०	अमुया	अमूम्याम्	अमूभि
च०	अमुय्यै	अमूम्याम्	अमूभ्य
प०	अमुप्या	अमूम्याम्	अमूभ्य
प०	अमुप्या	अमुयो	अमूपाम्
स०	अमुप्याम्	अमुयो	अमूपु

( क ) इन में से 'मा, नौ, न , मे, नौ, न , मे, नौ, न ' ये वैकल्पिक रूप सत्र जगह प्रयोग में नहीं लाए जा सकते । वाक्य के आरम्भ में, पद के चरण के आदि में, तथा च, वा, ह, हा, अह, एष इन प्रत्ययों के ठीक पूर्व तथा सम्बोधन शब्द ( हरे बालक ! आदि ) के ठीक अनन्तर इनका प्रयोग वर्जित है , जैसे " मे गृहम् " कहना पस्कृत व्याकरण के अनुसार निषिद्ध है क्योंकि 'मे' वाक्य के आरम्भ में है ।

( ख ) 'अस्मद्' शब्द के रूप लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलते । प्रकृति चाहे पुरुष हो या स्त्री 'अह' का ही प्रयोग होगा । इसी प्रकार अन्य विभक्तियों में भी समझना चाहिए ।

८२—मध्यमपुरुषवाची 'युष्मद्' शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं ।

### युष्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, व
तृतीया	त्वया	युवाम्याम्	युष्माभि
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाम्याम्, वाम्	युष्मभ्यम् व
पञ्चमी	त्वत्	युवाम्याम्	युष्मत्



८५-सम्बन्धसूचक हिन्दी के 'जो' शब्द के लिए संस्कृत में 'यद्' शब्द है। इसके रूप तीनों लिङ्गों में भिन्न भिन्न होते हैं जो कि नीचे दिये जाते हैं। इसके साथ के 'सो' शब्द के लिए 'अदम्' 'अयम्' 'तद्' शब्द के रूप आवश्यकता के अनुसार प्रयोग में आते हैं। यथा —

सोऽयं तव पुत्र आगतः यं देव्या स्वकरकमलैरुपलालितं  
यह तुम्हारा वह पुत्र आगया जिसका देवी जी ने अपने हस्त  
मलो से लालन पालन किया ) ,

ये परीक्षायामुत्तीर्णास्ते पारितोषिकं लप्स्यन्ते—( जो परीक्षा  
उत्तीर्ण हुए वे इनाम पायेंगे ) ,

या षोडशवर्षीया आसीत् सा ब्रह्मचारिणीवा—( जो सोलह  
वर्ष की थी उसके साथ ब्रह्मचारी ने व्याह किया ) ,

यद्यदन्तौ पतितं तत्तद्गस्मीभूतम्—( जो चीज आग में पड़ी वह  
रुम हो गई )

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता ।

तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना ।

( जो मनुष्य आत्महत्या करते हैं वे मर कर ऐसे लोकों में  
हुँचते हैं जो असुरों के हैं तथा जिनमें सदा अंधेरा रहता है )

पष्ठी	तव, ते	युवयो, वाम्	युष्माकम्, व
सप्तमी	त्वयि	युवयो	युष्मासु

ऊपर ८२ ( क ) में उल्लिखित नियम युष्मद् शब्द के वैकल्पिक ( त्वा, वाम्, व, ते, वाम्, व, ते, वाम्, व, ) रूपों पर भी ठीक उसी प्रकार लागू है। ८२ ( ख ) नियम भी यहाँ लागू है।

८३—संस्कृत के 'भवत्' शब्द का अर्थ 'आप' है। इसके रूप तीनों लिङ्गों और तीनों वचनों में चलते हैं और किया आदि का प्रयोग करने के लिए यह अन्य पुरुष वाची है। यथा—भवान् आगच्छतु, न कि, भवान् आगच्छ। पुलिङ्ग में इसके रूप श्रीमत् ( देखिए ६८ के अन्तर्गत श्रीमत् शब्द के रूप ) के समान भवान् भवन्तो भवन् इत्यादि चलते हैं, नपुंसक लिङ्ग में जगत् ( देखिए ६८ ( ग ) ) के समान 'भवत्, भवती, भवन्ति' आदि होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में यह शब्द 'भवती' ईकारान्त हो जाता है और नदी ( देखिए ६० ) के समान भवती, भवत्यौ, भवत्य आदि इसके रूप होते हैं।

( क ) भवत् के पूर्व कभी २ 'अत्र' और 'तत्र' शब्द जोड़कर 'अत्रभवत्' और 'तत्रभवत्' शब्द होते हैं। इन शब्दों के रूप भी ठीक भवत् के समान चलते हैं, केवल अर्थ में थोड़ा भेद है। 'अत्र भवत्' का प्रयोग निकटवर्ती किसी मान्य पुरुष के सम्बन्ध में होता है और 'तत्रभवत्' दूरवर्ती के सम्बन्ध में, यथा—अत्रभवान् आचार्य अस्मान् आज्ञापयति, तत्रभवान् कालिदास प्रख्यात विरासीत्—इत्यादि।

## यद् — जो

## पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	य	यौ	ये
द्वि०	यम्	यौ	यान्
तृ०	येन	याम्याम्	यै
च०	यस्मै	याम्याम्	येभ्य
प०	यस्मात्	याम्याम्	येभ्य
प०	यस्य	ययो	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययो	येषु

## नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	यत् यद्	ये	यानि
द्वि०	यत्, यद्	ये	यानि
तृ०	येन	याम्याम्	यै
च०	यस्मै	याम्याम्	येभ्य
प०	यस्मात्	याम्याम्	येभ्य
प०	यस्य	ययो	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययो	येषु

८४—‘यह’ शब्द के लिए सस्त्रुन में दो शब्द हैं ‘इदम्’ और ‘एतद्’। इसी प्रकार ‘वह’ के लिए भी दो शब्द हैं ‘तद्’ और ‘अदस्’। इनके प्रयोग में कुछ भेद है वह इस प्रकार है —

इदमस्तु सन्निरुष्ट समीपतरवर्ति चेतत्रो रूपम्।

अदसस्तु विप्ररुष्ट तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥

अर्थात् ‘इदम्’ शब्द के रूपों का प्रयोग तब करना चाहिए जब किसी निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो, यदि किसी बहुत ही निकट की वस्तु का बोध कराना हो तो ‘एतद्’ शब्द के रूपों का प्रयोग करना चाहिए। यदि दूरस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो ‘अदस्’ शब्द के रूपों का काम में लाना चाहिए। ‘तद्’ शब्द के रूपों का प्रयोग केवल ऐसी वस्तुओं के विषय में करना चाहिए जो सामने नहीं हैं—परोक्ष हैं। उदाहरणार्थ यदि मेरे पास दो पुरुष बैठे हैं तो जो बहुत निकट बैठा है उसके विषय में ‘एतद्’ शब्द और जो जरा दूर है उसके विषय में ‘इदम्’ शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई पुरुष दूर खड़ा है और उसके विषय में कोई बात कहनी है तो अदस् शब्द का प्रयोग करेंगे। ‘तद्’ शब्द का प्रयोग ऐसे लोगों के विषय में होगा जो इस समय दृष्टिगोचर नहीं हैं।

इन चारों शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं जो कि नीचे दिखाए जाते हैं —

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	या	ये	या
द्वि०	याम्	ये	या
तृ०	यया	याम्याम्	यामि
च०	यस्यै	याम्याम्	याम्य
प०	यस्या	याम्याम्	याम्य
प०	यस्या	ययो	यासाम्
स०	यस्याम्	ययो	यासु

८६—प्रश्नवाची सर्वनाम 'कौन, क्या' के लिए संस्कृत में 'किम्' शब्द है, इसके रूप तीनों लिङ्गों में नीचे लिखे प्रकार से चलते हैं। उदाहरणार्थ क आगत ? ( कान आया है ? ), का आगता ? ( कौन स्त्री आई है ? ),

किमस्ति ? ( क्या है ? ) आदि इसके प्रयोग होते हैं।

( क ) इसी शब्द के रूपों के साथ 'अपि' 'चित्' अथवा 'चन' जोड़ देने से, हिन्दी के किसी, कोई, कुछ आदि अनिश्चयवाचक सर्वनामों का बोध होता है; यथा —

कोऽपि आगतोऽस्ति  
 कश्चिदागतोऽस्ति  
 कश्चनागतोऽस्ति

} —कोई आया है।

इदम् और एतद् के रूपों को देखने से प्रकट होगा कि इनके कुछ वैकल्पिक रूप भी हैं—इदम् के (पु०) एनम्, एनो, एनान्; एनेन, एनयो, एनयो, (नपु०) एनत्, एने, एनानि, एनेन, एनयो, एनया और (स्त्री०) एनाम्, एने, एना, एनया, एनयो, एनयो एतद् के भी ये ही रूप हैं। इन विशेष रूपों का प्रयोग तब होता है जब इदम् शब्द अथवा एतद् शब्द के साधारण रूपों में से किसी का प्रयोग हो चुका होता है और फिर उसी वस्तु विषय में कुछ और बात कहनी रहती है। यथा—

एतद् वस्त्रं सुष्ठु धावयमैनत् पाटय—इस कपड़े को अच्छे तरह धोओ, इसे फाड़ मत डालना।

यहाँ "इसे" के स्थान में वैकल्पिक 'एनत्' प्रयुक्त हुआ है, किन्तु "इस" के स्थान में "एनत्" नहीं आसकता।

एष पञ्चविंशतिवर्षदेशीयोऽधुना एनम् उद्गाहय—यह पञ्चविंशति वर्ष के लगभग हो गया, इसका अब व्याह कर दो।

यहाँ भी पहले एष आया, तदनन्तर एनम्।

काऽप्यागताऽस्ति  
काचिदागताऽस्ति  
काचन आगताऽस्ति

}—कोई आई है।

किमप्यस्ति  
किञ्चिदस्ति  
किञ्चनास्ति

}—कुछ है।

इसी प्रकार कमपि मा हिंसी, कामपि मा शासय, किमपि मा चोरय, इत्यादि प्रयोग होते हैं।

## किम्—कौन

### पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	क	कौ	के
द्वि०	कम्	कौ	कान्
तृ०	केन	काभ्याम्	कै
च०	कस्मै	काभ्याम्	केभ्य
प०	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्य
प०	कस्य	कयो	केयाम्
स०	कस्मिन्	कयो	केषु

( क ) इदम्—यह

पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमस्, एनस्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभि.
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्य	अनयो, एनयो	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयो, एनयो	एषु

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	इदम्, एनत्	इमे, एने	इमानि, एनानि
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभि
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्य	अनयो, एनयो	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयो, एनयो	एषु



नपुसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	किम्	के	कानि
द्वि०	क्विम्	के	कानि
तृ०	केन	काम्याम्	कै
च०	कस्मै	काम्याम्	केभ्य
प०	कस्मात्	काम्याम्	केभ्य
प०	कस्य	कयो	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयो	केषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	का	के	का
द्वि०	काम्	के	का
तृ०	कया	काम्याम्	काभि
च०	कस्यै	काम्याम्	काम्य
प०	कस्या	काम्याम्	काम्य
प०	कस्या	कयो	कासाम्
स०	कस्याम्	कयो	कासु

८७-हिन्दी निजवाचक सर्वनाम ( reflexive pronoun )  
 'मैं' 'आप' 'अपने को' आदि अर्थ बोध कराने के लिये सस्कृत

## स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	इयम्	इमे	इमा
द्वि०	इमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमा, एना
तृ०	अनया, एनया	आभ्याम्	आभि
च०	अस्यै	आभ्याम्	आभ्य
प०	अस्या	आभ्याम्	आभ्य
प०	अस्या	अनयो, एनयो	आसाम्
स०	अस्याम्	अनयो, एनयो	आसु

## ( ख ) एतद्-यद्

## पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	एष	एतौ	एते
द्वि०	एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्, एनानि
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतै
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्य
प०	एतस्मात् एतस्माद्	एताभ्याम्	एतेभ्य
प०	एतस्य	एतयो एनयो	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयो, एनयो	एतेषु

मे तीन शब्दों का प्रयोग होता है—( १ ) आत्मन्, ( २ ) स्व, ( ३ ) स्वयम् । इस अर्थ का बोध कराने के लिये आत्मन् शब्द के रूप केवल पुलिङ्ग एक वचन में चलते हैं और सब लिङ्गों और वचनों में निजधाचकता का अर्थ देते हैं, जैसे —

स आत्मान निन्दितवान्,  
सा आत्मान निन्दितवती,  
सर्वा राजकन्या आत्मान मुकुरे अद्राक्षु,  
सा आत्मानमपराधिनीममन्यत,  
सा आत्मनि कमपि दोष नाद्राक्षीत्,  
तच्छरीरमात्मनैव विनष्टम् इत्यादि ।

‘स्व’ शब्द के तीन अर्थ होते हैं—नातेदार, धन और ‘अपने आप’ । इन में से जब इसका अर्थ ‘अपने आप’ का होता है तभी यह सर्वनाम होता है । तब इसके रूप सर्व शब्द ( ६४ ) के समान तीनों लिङ्गों में अलग २ चलते हैं, केवल पुलिङ्ग प्रथमा बहुवचन तथा पञ्चमी और सप्तमी के एकवचन में बालक के समान रूप होते हैं—स्वे, स्वा, स्वात्, स्वस्मात्, स्वे, स्वस्मिन् । ‘स्वयम्’ शब्द का कोई और रूप नहीं होता, सब लिङ्गों और वचनों में यह ऐसा ही प्रयोग में आता है, यथा —

सा स्वयमपराध कृत्वा दोष मयि क्षिप्तवती, राजा स्वयमुक्तो गृह्णाति मन्त्रिणा का कथा, इत्यादि ।

( क ) परस्परवाची सर्वनाम सस्कृत में तीन होते हैं—परस्पर, अन्योन्य और इतरेतर । इनके रूप बालक के समान होते हैं और क घचन में—

परस्पर विघाद कृतवान्,  
अन्योन्येन मिलितम्,  
इतरेतरस्य सौभाग्य दूषयति ।

येही शब्द जत्र क्रियाविशेषण होते हैं तब इनके रूप नहीं चलते, बल परस्परम्, अन्योन्यम् और इतरेतरम् होते हैं, यथा —

तौ परस्पर मिलितौ ।

८८—निश्चयाच्चक सर्वनाम ( यही, वही, उसी ने ) का निश्चयात्मक अर्थ बतलाने के लिए, सर्वनाम के रूपों के साथ 'एष' जोड़ कर सस्कृत में निश्चय का बोध कराते हैं, यथा —

क आगत ? स एष पुन आगत ।

केनेद कृतम् ? तेनेव तु कृतम् इत्यादि ।

अनिश्चयात्मक ई ( क ) सर्वनामों को छोड़ कर ऊपर लिखे और सत्र सर्वनामों के साथ इस प्रकार 'एष' जोड़ कर 'ही' का निश्चयात्मक अर्थ प्रकट किया जा सकता है ।

इसी प्रकार अशीति, नवति के भी रूप होते हैं।

( थ ) शत, सहस्र अयुत, लक्ष, प्रयुत, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखव, महापद्म, अन्त्य, मध्य, परार्ध, शब्द केवल नपुंसक लिङ्ग में होते हैं और इनके रूप फल के अनुसार तीनों घवनोमें चलते हैं।

( व ) लक्षा ( स्त्री० ) के रूप विद्या के समान और कोटि के रूपे कवि के समान होते हैं।

( ध ) खर्व ( पु० ) निखर्व ( पु० ) के रूप बालक के समान, जलधि ( पु० ) के रूप कवि के समान तथा शङ्ख के भानु ( ४८ ) के समान चलते हैं।

१००—पूरक मख्यायाची (ordinal numeral adjectives) शब्दों के रूप इस प्रकार चलते हैं —

( के ) प्रथम शब्द के रूप ६६ ( क ) में उल्लिखित हैं, अग्रिम और आदिम के रूप लिङ्गानुसार बालक, फल और विद्या के समान होते हैं।

( ख ) द्वितीय और तृतीय शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में ऊपर ६५ ( ग ) में उदाहृत हैं।

( ग ) चतुर्थ और इसके आगे के पूरक मख्यायाची शब्दों के रूप यदि अकारान्त पु० हो तो बालक के समान, अकारान्त नपुंसक हो तो फल के समान, यदि अकारान्त स्त्रीलिङ्ग हा तो

## पञ्चम सोपान

### विशेषण विचार

८९—हिन्दी में कभी कभी तो विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार विशेषण बदलता है ( जैसे अच्छा लड़का, अच्छे लड़के, अच्छी लड़की, अच्छी लड़कियाँ ), किन्तु बहुधा नहीं बदलता ( जैसे लाल घोड़ा, लाल घोड़ी, लाल घोड़े, लाल घोड़ियाँ ) । सस्कृत में विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार विशेषण का रूप बदलता है, जिस लिङ्ग, जिस वचन और जिस विभक्ति का विशेष्य होता है, उसी लिङ्ग उसी वचन और उसी विभक्ति का विशेषण भी होता है । यहाँ तक कि ऐसे विशेष्यो के साथ भी विशेषण बदलता है जैसे लिङ्ग के लिए भिन्नरूप नहीं रखते, किन्तु जिनके प्रकरण आदि से लिङ्ग अवगत हो जाता है, यथा हिन्दी में 'मैं सुन्दर हूँ' इस वाक्य का अनुवाद सस्कृत में 'अहं सुन्दरोऽस्मि' और 'अहं सुन्दरी अस्मि' इन दोनों वाक्यों से होगा । यदि बोलने वाला पुरुष है तो प्रथम वाक्य प्रयोग आवेगा और यदि वह स्त्री है तो दूसरा वाक्य । हिन्दी में विशेषण के साथ अलग विभक्तिसूचक परसर्ग ( का, में आदि ) नहीं लगाते, जैसे—'पढ़े लिखे मनुष्यों का आदर होता है' इस वाक्य में 'का' शब्द केवल 'मनुष्यों' के उपरान्त लगाया गया है, विशेषण 'पढ़े लिखे' के उपरान्त नहीं, परन्तु सस्कृत में विशेषण और विशेष्य दोनों में विभक्तियाँ लगती हैं । ऊपर के वाक्य का अनुवाद होगा

विद्या के समान और ईकारान्त स्त्री० हों तो नदी के समान चलते हैं ।

( घ ) शत और इसके आगे की सख्याओं के पूरक सख्यावाचक शब्द पु० तथा नपुंसक में तम जोड़ कर और स्त्रीलिङ्ग म—तमा जोड़ कर बनते हैं । जैसे—सहस्रतम, सहस्रतमा, सहस्रतमौ आदि ।

१०१—ऊपर सख्यावाची शब्द एक से लेकर सौ तक तथा सहस्र, दश सहस्र, लक्ष, दशलक्ष आदि के लिये दिये गये हैं । ऐसी सख्याएँ जैसे १३५, ११०५, १०५१५ आदि बीच की सख्याओं के लिये विशेष उपाय से काम लिया जाता है जो कि नीचे दिखाया जाता है ।

( १ ) सौ या सहस्र या लक्ष के पूर्व 'अधिक' शब्द या 'उत्तर' शब्द जोड़ देना यथा —

एक सौ पैंतीस मनुष्य उपस्थित हैं—एकचत्वारिंशदधिकं शतं मनुष्याणामुपस्थितम् । अथवा पञ्चत्रिंशदुत्तरं शतम्

दो सौ इकतालीस आदिमियों के ऊपर जुमाना लगाया गया और तीन सौ उनमठ को सजा हुई । मनुष्याणामेकचत्वारिंशदधिकयोः शतयोः ( एकचत्वारिंशदुत्तरयोः शतयोः वा ) उपरि अर्थ दण्ड आदिष्ट, एकोनपञ्च्यधिकाना त्रयाणां शतानामुपरि काय दण्ड ।

एक लाख पन्द्रह हजार तीन सौ बत्तीस—द्वात्रिंशदधिकं सहस्राणि एक लक्षञ्च ।

- १६ { पटपण्यधिकपटशतम्, पटपण्यधिक पटशतम्  
 { पटपण्युत्तरपटशतम्, पटपण्युत्तर पटशतम्
- ७१ { त्रिसप्तत्यधिकपटशतम्, त्रिसप्तत्यधिक पटशतम्  
 { त्रिसप्तत्युत्तरपटशतम्, त्रिसप्तत्युत्तर पटशतम्
- ८४ { चतुरशीत्यधिकपटशतम्, चतुरशीत्यधिक पटशतम्  
 { चतुरशीत्युत्तरपटशतम्, चतुरशीत्युत्तर पटशतम्
- ११५ { पञ्चनवत्यधिकपटशतम्, पञ्चनवत्यधिक पटशतम्  
 { पञ्चनवत्युत्तरपटशतम्, पञ्चनवत्युत्तर पटशतम्
- १२१ { प चविंशत्यधिकत्रयोदशशतम्  
 या  
 { प चविंशत्यधिकत्रिशताधिकमहस्रम्
- १२८ { अष्टाविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतम्  
 या  
 { अष्टाविंशत्यधिकनवशताधिकमहस्रम्
- १३६ { एकोनचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतिशतम्  
 या  
 { एकोनचत्वारिंशदधिकत्रिशताधिकमहस्रम्
- १६१७ सप्तत्रिंशदधिकपटशताधिकनवसहस्राधिकपञ्चायुतम्

९९—इस गिनती के शब्दों के रूपों में जो भेद है वह नीचे देखाया जाता है।

( क ) जब ' एक ' शब्द का अर्थ सरयापाचक ' एक ' होता है तो इसका रूप केवल एक पचन में होता



सी प्रकार 'अधिक' और 'उत्तर' शब्द के योग से धोर भी  
पाएँ बनाई जासकती हैं ।

कभी कभी 'च' जोड़ते जाते हैं, जैसे—२३५ द्वे गते पञ्चविंशच्च ।

२ ) कभी कभी सरख्याओं के धोलने में हम लोग ढो कम दो,  
कम पाँच सौ इत्यादि में कम शब्द का प्रयोग करते हैं—संस्कृत  
में कम शब्द का बोधक ऊन शब्द जोगा जाता है, यथा—दो कम  
—द्वयूने गते द्वयून शतद्वय, द्वयूनशतद्वयी इत्यादि । चार  
—चरूने गते चरून शतचरू, चरूनशतचरूयी इत्यादि ।  
पाँच सौ—चतुरन्पञ्चशतानि चतुरन् शतपञ्चतयम् इत्यादि ।  
रणा के लिए कुछ ऐसी सरयाएँ ऊपर दे दी गई हैं ।

१०२—कम का भेद बतलाने के लिए संस्कृत के शब्द गृह्णाम  
में सम्मिलित किये जाते हैं । वस्तुतः यह कमवाची विशेष-  
हैं इस लिए यहाँ दिये जाते हैं । मुख्य २ ये हैं —

(क) अन्य (दूसरा), अन्यतर (जब दो दूसरों में से एक के  
में कुछ व्यवहार हो चुका हो तो दूसरे के लिये यह शब्द  
में आता है), इतर (दूसरा) तथा (किम्, यद् और तद्  
नामों से इतर और इतम प्रत्यय जोड़ कर गने हुए) कतर  
में से कौन सा), कतम (दोमें अधिक में से कौन सा), यतर  
में से जो सा), यतम (दो से अधिक में से जो सा), ततर  
में से वह सा), ततम (दो में अधिक में से वह सा) शब्दों के  
तीनों लिङ्गों में चलते हैं और एक समान होते हैं । उदाहरण

५०४	{ चतुरधिकपञ्चशत, चतुरधिक पञ्चशत	{ चतुरधिकपञ्चशत, चतुरधिक पञ्चशतम् ।
५०५	{ पञ्चाधिकपञ्चशत, पञ्चाधिक पञ्चशत	{ पञ्चोत्तर पञ्चशत, पञ्चोत्तर पञ्चशतम् ।
५०६	{ षट्त्रिंशदधिकपञ्चशत, षट्त्रिंशद पञ्चशत	{ षट्त्रिंशदपञ्चशत, षट्त्रिंशद पञ्चशतम् ।
५०७	{ सप्तत्रिंशदधिकपञ्चशत, सप्तत्रिंशद पञ्चशत	{ सप्तोत्तरपञ्चशत, सप्तोत्तर पञ्चशतम् ।
५०८	{ अष्टत्रिंशदधिकपञ्चशत, अष्टत्रिंशद पञ्चशत	{ अष्टोत्तरपञ्चशतम्, अष्टोत्तर पञ्चशतम् ।
५०९	{ नवत्रिंशदधिकपञ्चशत, नवत्रिंशद पञ्चशत	{ नवोत्तरपञ्चशतम्, नवोत्तर पञ्चशतम् ।
५१०	{ दशत्रिंशदधिकपञ्चशत, दशत्रिंशद पञ्चशत	{ दशोत्तरपञ्चशतम्, दशोत्तर पञ्चशतम् ।
५११	{ सप्तदशत्रिंशदधिकपञ्चशत, सप्तदशत्रिंशद पञ्चशत	{ सप्तदशोत्तरपञ्चशतम्, सप्तदशोत्तर पञ्चशतम् ।
५१२	पट्शत	
५१३	{ पञ्चविंशत्यधिकपट्शतम्, पञ्चविंशत्युत्तरपट्शतम्	{ पञ्चविंशत्यधिकपट्शतम्, पञ्चविंशत्युत्तर पट्शतम् ।
५१४	{ सप्तत्रिंशदधिकपट्शतम्, सप्तत्रिंशदुत्तरपट्शतम्,	{ सप्तत्रिंशदधिक पट्शतम्, सप्तत्रिंशदुत्तर पट्शतम् ।
५१५	{ पट्चत्वारिंशदधिकपट्शतम्, पट्चत्वारिंशदुत्तरपट्शतम्,	{ पट्चत्वारिंशदधिक पट्शतम्, पट्चत्वारिंशदुत्तर पट्शतम् ।
५१६	{ पञ्चपञ्चाशदधिकपट्शतम्, पञ्चपञ्चाशदुत्तरपट्शतम्,	{ पञ्चपञ्चाशदधिक पट्शतम्, पञ्चपञ्चाशदुत्तर पट्शतम् ।

## अन्यत्-दूसरा

## पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अन्य	अन्यौ	अन्ये
द्वि०	अन्यम्	अन्यौ	अन्यान्
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
प०	अन्यस्मान्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
प०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययो	अन्येषु

## नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अन्यत्	अन्ये	अन्यानि
द्वि०	अन्यत	अन्ये	अभ्यानि
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
प०	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
प०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययोः	अन्येषु

- १६६ { पटपञ्चदशधिकपटशतम्, पटपञ्चदशधिक पटशतम्  
 { पटपञ्चदशुत्तरपटशतम्, पटपञ्चदशुत्तर पटशतम्
- १६७ { त्रिसप्तत्यधिकपटशतम्, त्रिसप्तत्यधिक पटशतम्  
 { त्रिसप्तत्युत्तरपटशतम्, त्रिसप्तत्युत्तर पटशतम्
- १६८ { चतुरशीत्यधिकपटशतम्, चतुरशीत्यधिक पटशतम्  
 { चतुरशीत्युत्तरपटशतम्, चतुरशीत्युत्तर पटशतम्
- १६९ { पञ्चनवत्यधिकपटशतम्, पञ्चनवत्यधिक पटशतम्  
 { पञ्चनवत्युत्तरपटशतम्, पञ्चनवत्युत्तर पटशतम्
- १७० { प चविंशत्यधिकपञ्चोदशशतम्  
 या  
 { प चविंशत्यधिकपञ्चोदशशतधिकमहत्तम्
- १७१ { अष्टाविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतम्  
 या  
 { अष्टाविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतधिकमहत्तम्
- १७२ { एकोनचत्वारिंशदधिकैकोनत्रिंशतिशतम्  
 या  
 { एकोनचत्वारिंशदधिकैकोनत्रिंशतिशतधिकमहत्तम्
- १७३ सप्तत्रिंशदधिकपटशतधिकनवसहस्राधिकपञ्चायुतम्

९९-इस गिनती के शब्दों के रूपों में जो भेद है वह नीचे दिखाया जाता है।

( क ) जब ' एक ' शब्द का अर्थ सख्यावाचक ' एक ' होता है तो इसका रूप केवल एक वचन में होता

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अन्या	अन्ये	अन्या
द्वि०	अन्याम्	अन्ये	अन्या
तृ०	अन्यया	अन्याभ्याम्	अन्याभि
च०	अन्यस्यै	अन्याभ्याम्	अन्याभ्य
प०	अन्यस्या	अन्याभ्याम्	अन्याभ्य
प०	अन्यस्या	अन्ययो	अन्यासाम्
स०	अन्यस्याम्	अन्ययो	अन्यासु

( स ) पूर्व ( पहला अथवा पूर्वी ), अधर ( वादवाला अथवा पश्चिमी ), दक्षिण ( दक्षिणी ), उत्तर ( उत्तरी ), पर ( दूसरा ), अपर ( दूसरा ) और अधर ( नीचेवाला ) इन शब्दों के रूप एक समान चलते हैं और तीनों लिङ्गों में होते हैं । उदाहरण के लिए ' पूर्व ' शब्द के रूप दिए जाते हैं ।

पूर्व

पुलिङ्ग

प्र०	पूर्व	पूर्वी	पूर्वे, पूर्वा
------	-------	--------	----------------

है, इसके अतिरिक्त अर्थों में हमके रूप तीनों वचनों में होते हैं।

### एक-शब्द

	पुलिङ्ग	नपुं०	स्त्रीलिङ्ग
	एकवचन	एकवचन	एकवचन
प्र०	एक	एकम्	एका
द्वि०	एकम्	एकम्	एकाम्
तृ०	एकेन	एकेन	एकया
च०	एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
प०	एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्या
प०	एकस्य	एकस्य	एकस्या
स०	एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्

१ 'एक' शब्द के इतने अर्थ होते हैं —

एकोऽरपार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा ।

साधारणे समानेऽपि सख्याया च प्रयुज्यते ॥

अथात् अल्प ( थोड़ा कुछ ), प्रधान, प्रथम, केवल, साधारण, समान और एक, इतने अर्थों में एक शब्द का प्रयोग होता है।

यहुवचन में इसका अर्थ होता है—'कुछ लोग,' 'कोई कोई' यथा 'एके पुरुषा, एका नार्य,' 'एकानि फलानि' इत्यादि।

## अन्यत्-दूसरा

## पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अन्य	अन्यौ	अन्ये
द्वि०	अन्यम्	अन्यौ	अन्यान्
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
प०	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
ष०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययो	अन्येषु

## नपुंसकलिङ्ग

	अन्यत्	अन्ये	अन्यानि
प्र०	अन्यत्	अन्ये	अन्यानि
द्वि०	अन्यत	अन्ये	अन्यानि
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
प०	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
ष०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययो	अन्येषु

प०

अप्यनाम्

स०

अप्यासु, अप्सु

( ट ) नघन् ( नौ ), दशन् ( दस ), तथा सभी नकारान्त सख्यावाची ( एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, पञ्चदशन्, षोडशन् आदि ) शब्दों के रूप पञ्चन् के समान तीनों लिङ्गों में एक ही समान होते हैं । अप्ठन् में जो भेद होता है मो दिखा दिया गया ।

( ठ ) नित्य स्त्रीलिङ्ग ऊनविशति में लेकर जितने सख्यावाची शब्द हैं उन सब के रूप केवल एक वचन ही में होते हैं ।

( ड ) ह्रस्व इकारान्त नित्य स्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक ऊनविशति विशति एकविशति आदि विशति में अन्त होने वाले शब्दों के रूप रुचि शब्द के समान होते हैं ।

एकवचन

प्र० विशति

द्वि० विशतिम्

तृ० विशत्या

च० विशत्यै, विशतये

प० विशत्या, विशते

प० विशत्या, विशते

स० विशस्थाम्, विशतौ

अथात् रुचि के समान ।

( ढ ) नित्य स्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक त्रिशत् ( तीस ), चत्वारिंशत् ( चालीस ), पञ्चाशत् ( पचास ) के तथा शत् में अन्त होने वाले सख्यावाची शब्दों के रूप सत् के समान होते हैं, जैसे —



तिताना मनुष्याणामादर, क्रियते ( अथवा भवति ) । इस प्रकार  
ज्ञा की तरह सस्कृत विशेषण के भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति के  
अभिन्न रूप होते हैं । [ कुछ सख्याधाची विशेषण शत, विंशति,  
शत आदि जिनके सब लिङ्गों में और एक ही वचन में रूप होते  
वे विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार नहीं बदल सकते  
लेकिन विभक्ति के अनुसार बदलते ही हैं । विशेष विशेष स्थलों पर  
स्तुत वर्णन किया गया है ] ।

अधिकतर विशेषणों के रूप मझाओं के समान ही होते  
—जैसे अकारान्त विशेषण चतुर, कुशल, सुन्दर आदि के  
लिङ्ग में अकारान्त वालक के समान और नपुंसक लिङ्ग में  
अकारान्त फल के समान रूप होते हैं । इसी प्रकार ईकारान्त  
विशेषण सुन्दरी, चन्द्रमुखी, सुमुखी आदि के रूप ईकारान्त नदी के  
समान होते हैं । थोड़े से विशेषण ऐसे भी हैं जिनके रूप भिन्न होते  
, उनका विचार इस परिच्छेद में किया गया है ।

९०-सार्धनामिक विशेषण—ऊपर लिखे हुए सर्वनामों में से  
दम्, एतद्, तद्, अदस् ( ८४ ), यद् ( ८५ ), किम् ( ८६ ) तथा  
निश्चयवाचक ( ८७क ) और निश्चयवाचक ( ८८ ) सर्वनाम सभी  
ता प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है , जैसे, अयं पुरुष , एषा  
नारी , एतच्छरीर , ते भृत्या , अमी जना , ये विद्यार्थी , का नारी ,  
तस्मिन्निगरे , तस्मिन्नेव ग्रामे इत्यादि ।

( ज )

सप्तन्-सात

पुलिङ्ग, नपुसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

केवल बहुवचन में ।

प्र०	सप्त
द्वि०	सप्त
तृ०	सप्तभिः
च०	सप्तभ्य
प०	सप्तभ्य
प०	सप्तानाम्
स०	सप्तसु

( झ )

अष्टन्-आठ

पुलिङ्ग, नपुसकलिङ्ग, तथा स्त्रीलिङ्ग

केवल बहुवचन में

प्र०	अष्टौ, अष्ट
द्वि०	अष्टौ, अष्ट
तृ०	अष्टाभिः, अष्टभि
च०	अष्टाभ्यः, अष्टभ्य
प०	अष्टाभ्यः, अष्टभ्य

तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्व
च०	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वभ्य
प०	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वभ्य
प०	पूर्वस्य	पूर्वयो	पूर्वभ्याम्
स०	पूर्वस्मिन्, पूर्व	पूर्वयो	पूर्वेषु

## नपुसकलिङ्ग

प्र०	पूर्वम्	पूर्वं	पूर्वाणि
द्वि०	पूर्वम्	पूर्वं	पूर्वाणि
तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वं
च०	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वभ्य
प०	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वभ्य
प०	पूर्वस्य	पूर्वयो	पूर्वभ्याम्
स०	पूर्वस्मिन्, पूर्व	पूर्वयो	पूर्वेषु

## स्त्रीलिङ्ग

प्र०	पूर्वा	पूर्वं	पूर्वा
द्वि०	पूर्वाम्	पूर्वं	पूर्वा
तृ०	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभि
च०	पूर्वस्यै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्य
प०	पूर्वस्या	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्य

प०

अश्यानाम्

स०

अश्यासु, अश्यासु

( ट ) नवन् ( नो ), दशन् ( दस ), तथा सभी नकारान्त सख्यावाची ( एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, पञ्चदशन्, षोडशन् आदि ) शब्दों के रूप पञ्चन् के समान तीनों लिङ्गों में एक ही समान होते हैं । अष्टन् में जो भेद होता है सो दिखा दिया गया ।

( ठ ) नित्य स्त्रीलिङ्ग ऊनविंशति से लेकर जितने सख्यावाची शब्द हैं उन सब के रूप केवल एक वचन ही में होते हैं ।

( ड ) ह्रस्व इकारान्त नित्य स्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक ऊनविंशति विंशति एकविंशति आदि विंशति में अन्त होने वाले शब्दों के रूप रुचि शब्द के समान होते हैं ।

एकवचन

प्र० विंशति

द्वि० विंशतिम्

तृ० विंशत्या

च० विंशत्यै, विंशतये

प० विंशत्या, विंशते

प० विंशत्या, विंशते

स० विंशत्याम्, विंशतौ

अर्थात् रुचि के समान ।

( ढ ) नित्य स्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत् ( चालीस ), पञ्चाशत् ( पचास ) के तथा शत में अन्त होनेवाले सख्यावाची शब्दों के रूप सत्ति के समान होते हैं, जैसे—

तिताना मनुष्याणामादरः क्रियते ( अथवा भवति ) । इस प्रकार  
 हा की तरह संस्कृत विशेषण के भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति के  
 न भिन्न रूप होते हैं । [ कुछ सख्यायाची विशेषण शत, विंशति,  
 शत आदि जिनके सब लिङ्गों में और एक ही वचन में रूप होते  
 वे विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार नहीं बदल सकते  
 न्तु विभक्ति के अनुसार बदलते ही हैं । विशेष विशेष स्थानों पर  
 स्तुत वर्णन किया गया है ] ।

अधिकतर विशेषणों के रूप सहाय्यों के समान ही होते  
 —जैसे प्रकारान्त विशेषण चतुर, कुशल, सुन्दर आदि के  
 लिङ्ग में प्रकारान्त बालक के समान और नपुंसक लिङ्ग में  
 प्रकारान्त फल के समान रूप होते हैं । इसी प्रकार ईकारान्त  
 विशेषण सुन्दरी, चन्द्रमुखी, सुमुखी आदि के रूप ईकारान्त नदी के  
 समान होते हैं । थोड़े से विशेषण ऐसे भी हैं जिनके रूप भिन्न होते  
 हैं, उनका विचार इस परिच्छेद में किया गया है ।

९०—सार्वनामिक विशेषण—ऊपर लिखे हुए सर्वनामों में मे  
 इदम्, एतद्, तद्, अदस् ( ८४ ), यद् ( ८५ ), किम् ( ८६ ) तथा  
 अनिश्चयवाचक ( ८६क ) और निश्चयवाचक ( ८८ ) सर्वनाम सभी  
 का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है, जैसे, अयं पुरुष, एषा  
 नारी, एतच्छरीर, ते भृत्या, अमी जना, ये विद्यार्थी, का नारी,  
 कस्मिंश्चिन्नगरे, तस्मिन्नेव ग्रामे इत्यादि ।

	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
प्र०	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
द्वि०	त्रिंशत्तम्	चत्वारिंशत्तम्
तृ०	त्रिंशता	चत्वारिंशता
च०	त्रिंशते	चत्वारिंशते
प०	त्रिंशत	चत्वारिंशतः
प०	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
स०	त्रिंशति	चत्वारिंशति

इसी प्रकार पञ्चाशत् के भी रूप होते हैं ।

( त ) नित्य खीजिङ्ग षष्टि ( साठ ), सप्तति (सत्तर), अशीति ( अस्सी ), नवति (नब्बे) इत्यादि सभी इकारान्त सख्यावाची शब्दों के रूप विंशति के अनुसार रुचि के समान होते हैं, जैसे —

	षष्टि	सप्तति
	एकवचन	एकवचन
प्र०	षष्टि	सप्ततिः
द्वि०	षष्टिम्	सप्ततिम्
तृ०	षष्ट्या	सप्तत्या
च०	षष्ट्यै, षष्टये	सप्तत्यै, सप्ततये
प०	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्तते
च०	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्या, सप्तते.
	षष्ट्याम्, षष्टौ	सप्तत्याम्, सप्ततौ

९१—इसका, उसका, मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा, जिसका यदि सम्बन्धसूचक भाव दिखाने के लिए सस्कृत में दो उपाय हैं, एक तो इत्थं, तद्, अस्मद् आदि को षष्ठी विभक्ति के रूपों का प्रयोग करना, जैम, मम पुस्तक, तवार्थ, अस्य प्रबन्ध इत्यादि; दूसरे इन शब्दों में कुछ प्रत्यय जोड़ कर इनसे विशेषण बनाकर उनको अन्य विशेषणों के अनुसार प्रयोग में लाना। ये विशेषण इस प्रकार हैं —

(क) अस्मद् शब्द से—

### पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

मदीय ( मेरा )	अस्मदीय ( हमारा )
मामक ( " )	आत्माक ( " )
मामकीन ( " )	आत्माकीन ( " )

### स्त्रीलिङ्ग

मदीया ( मेरी )	अस्मदीया ( हमारी )
मामिका ( " )	आत्माकी ( " )
मामकीया ( " )	आत्माकीना ( " )

(ख) युष्मद् शब्द से—

### पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

त्वदीय ( तेरा )	युष्मदीय ( तुम्हारा )
-----------------	-----------------------

स्त्रीलिङ्ग

त्वाद्गो ( तुम्हारी )

युष्माद्गो ( तुम्हारी )

१) तद् शब्द से

पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

स्त्रीलिङ्ग

ताद्गो ( वैसा, तैसा )

ताद्गो ( वैसी, तैसी )

ताद्गो ( " " )

२) इदम् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

इद्गो ( ऐसा )

इद्गो ( ऐसी )

इद्गो ( " " )

३) एतद् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

एताद्गो ( ऐसा )

एताद्गो ( ऐसी )

एताद्गो ( " " )

४) यद् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

याद्गो ( जैसा )

याद्गो ( जैसी )

याद्गो ( " " )



१०	पूर्वस्या	पूरयो	पूर्वामाम्
२०	पूर्वस्याम्	पूरयो	पूर्वामु

१०३—विशेषणों की तुलना के लिए हिन्दी में विशेषण का रूपान्तर नहीं होता, केवल आवश्यकतानुसार अधिक, ज्यादा, कम आदि शब्द विशेषण के साथ जोड़ दिए जाते हैं, जैसे—श्याम से गोपाल अधिक सुन्दर है, मुझसे वह अच्छा है अथवा ज्यादा अच्छा है, गोपाल से श्याम कम सुन्दर है, इत्यादि। परन्तु संस्कृत में बहुधा अधिक आदि शब्द जोड़ कर तुलना नहीं की जाती, जैसे—‘गोपाल श्यामादधिकसुन्दरोऽस्ति’ चाहे यह वान्य व्याकरण की दृष्टि से गलत न हो तब भी उसमें हिन्दीपन की गन्ध आती है। संस्कृत में विशेषणों की तुलना करने के लिए प्रत्यय विशेषणों में जोड़ जाते हैं।

(क) सब से सीधा मार्ग तुलना करने का विशेषण में तर्प् (तर) और तमप् (तम) प्रत्ययों का जोड़ देना है। इन परिचक्षित विशेषणों के रूप विशेष्य के अनुसार होते हैं—तर्प् जय दो के बीच में तुलना करनी हो और तमप् जय दो से अधिक के बीच में तुलना करनी हो तो। उदाहरणार्थ —

कुशल	—	कुशलतर , कुशलतम
चतुर	—	चतुर्तर , चतुर्तम
विद्वत्	—	विद्वत्तर , विद्वत्तम

स्वदीयानामस्याना युद्धे नास्ति काऽपि आवश्यकता,  
यदीया सम्पत्ति तदीय स्वत्वम् ।

अस्मद्, युष्मद् आदि की पक्षी के रूपों के विषय में यह नियम नहीं लागता, वे विशेष्य के अनुसार नहीं बदलते, यथा — अस्य पुत्रः, अस्य निबन्ध, अस्य लिपि इत्यादि ।

९२—‘ ऐसा, जैसा ’ आदि शब्दों द्वारा बोधित प्रकार के अर्थ के लिए संस्कृत में अस्मद्, युष्मद् आदि शब्दों में प्रत्यय जोड़ कर तादृश आदि शब्द बनते हैं और विशेषण होते हैं। प्रत्यय विशेषणों की भाँति इनकी विभक्ति, लिङ्ग, वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं। ये शब्द हैं —

( क ) अस्मद् शब्द से

पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

मादृश ( मुझ सा )	अस्मादृश ( हमारा सा )
मादृश (     "     )	अस्मादृश (     "     )

स्त्रीलिङ्ग

मादृशी ( मुझ सी )	अस्मादृशी ( हमारी सी )
-------------------	------------------------

( ख ) युष्मद् शब्द से

पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

त्वादृश ( तुम्ह सा )	युष्मादृश ( तुम्हारा सा )
त्वादृश (     "     )	युष्मादृश (     "     )

धनिन्	—	धनितर , धनितम
महत्	—	महत्तर , महत्तम
गुरु	—	गुरुतर , गुरुतम
लघु	—	लघुतर , लघुतम
पायक	—	पायकतर , पायकतम

( ख ) गुणवाची शब्दों के अनन्तर या तो तरप् तथा तमप् प्रत्यय जोड़ते हैं, या ईयसुन् ( ईयस् ) और इष्टन् ( इष्ट ) । जहाँ दोनों तरप् अथवा ईयसुन् व तमप् अथवा इष्टन् जोड़ने की अनुमति है वहाँ ईयसुन् और इष्टन् जोड़ना अधिक मुहाबरेदार समझा जाता है । इन दो प्रत्ययों के पूर्व, विशेषण के अन्तिम स्वर और उसके उपरान्त यदि कोई व्यंजन हो तो उसका भी (यथा—पटु) केवल पट् रह जाता है, लघु का लब्, धनिन् का धन्) लोप हो जाता है । कहीं २ और भी अन्तर हो जाता है । उदाहरणार्थ —

पटु	—	पटीयस् , पटिष्ठ
लघु	—	लघीयस् , लघिष्ठ
धनिन्	—	धनीयस् , धनिष्ठ
निकट	—	नेदीयस् , नेदिष्ठ
अल्प	—	अल्पीयस् , अल्पिष्ठ
क्षिप्र	—	क्षेपीयस् , क्षेपिष्ठ
गुरु	—	गरीयस् , गरिष्ठ
दीर्घ	—	द्राघीयस् , द्राधिष्ठ

( ग ) किम् शब्द से

कियत् ( कितना )

कियती ( कितनी )

( घ ) यद् शब्द से

यावत् ( जितना )

यावती ( जितनी )

( ज ) एतद् से

एतावत् ( इतना )

एतावती ( इतनी )

परिमाण के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग केवल एक वचन में  
1 सकता है, यथा —

कियान्वाऽधुनाचशिष्ट ?

तावानेव यावान् भवता लङ्घित ।

तेन कियती सम्पत्तिं गुरवे समर्पिता ?

तावती, यावती गुरुणा याचिता ।

९४-मर्यादालोक ' इतने, कितने ' आदि शब्दों का अर्थ

पाने के लिए संस्कृत में दो उपाय हैं —

( १ ) ऊपर ६३ के शब्दों को बहुवचन में प्रयोग करना, इस  
में विशेषण के लिङ्ग और विभक्ति के अनुसार उनमें भी  
विवर्तन होगा, यथा —

कियन्त पुरुषा आगता, कियन्त्य स्त्रिय ?

तावन्त पुरुषा यावन्त स्त्रिय आगता, तावन्त्य एव स्त्रिय  
आदि ।

( २ ) किम्, यद् और तद् से बने हुए नीचे लिखे शब्दों का  
प्रयोग—

इस प्रकार कर्तृ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपाढा और अधिहरण ये नौ कारक हुए। इन्हीं कारकों के व्यवहार में विभक्तियाँ पाती हैं।

क्रिया में जिसका सीधा सम्बन्ध होता हो वही कारक कहला सकता है, ऐसे वाक्यों में जैसे गोविन्द के लड़के गोपाल को श्याम 'पीटा' पीटने की क्रिया से सीधा सम्बन्ध गोपाल (जिसको पीटा) और श्याम (जिसने पीटा) का है, गोविन्द का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस लिए "गोविन्द के" को कारक नहीं कह सकते। गोविन्द का सम्बन्ध गोपाल से है किन्तु पीटने की क्रिया के सम्प्रदान में उसका (गोविन्द का) कोई उपयोग नहीं होता।

अब क्रमानुसार प्रथमा आदि विभक्तियों के प्रयोग पर विचार होगा।

१०५

प्रथमा

(क) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रं प्रथमा—

प्रथमा विभक्ति का उपयोग केवल शब्द का अर्थ बतलाने के लिए, अथवा केवल लिङ्ग और शब्दार्थ बनलाने के लिए, अथवा परिमाण अथवा वचन बतलाने के लिए किया जाता है।

उदाहरणार्थ—

( १ ) केवल प्रातिपदिकार्थ—प्रातिपदिक का अर्थ है शब्द, जिसको अंगरेज़ी में ( Base ) बेस् या ( Crude form ) क्रूड फॉर्म कहते हैं।

( ज ) किम् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

कीदृश ( कैसा )

कीदृशी ( कैसी )

कीदृश ( " )

( झ ) भवत् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

भवाद्दृश ( आप सा )

भवाद्दृशी ( आपसी )

भवाद्दृश ( " )

इनमें शकारान्त के रूप शकारान्त पुलिङ्ग अथवा नपुंसक लिङ्ग सहाधो के अनुसार तथा ईकारान्त के ईकारान्त ( नदी ) सहाधो के अनुसार चलते हैं। जैसा ऊपर कह चुके हैं इनके लिङ्ग और विभक्ति विशेष्य के अनुसार रहते हैं।

९३—परिमाणसूचक ' इतना , कितना ' आदि शब्दों का अर्थ दिखाने के लिए संस्कृत में इदम् आदि शब्दों से विशेष्य बनते हैं। ये इस प्रकार हैं। इनमें तकारान्त शब्दों के रूप पुलिङ्ग तकारान्त श्रीमत् ( ई० ) तथा नपुंसक लिङ्ग में जगत् ( ई० ) अनुसार चलते हैं, और ईकारान्त शब्दों के नदी के समान।

( क ) इदम् शब्द से

इयत् ( इतना )

इयती ( इतनी )

( ख ) तद् शब्द से

तायत् ( उतना )

तायती ( उतनी )

प्रकार सात विभक्तियाँ होती हैं। इन विभक्तियों का क्या प्रभाव होता है यह इस परिच्छेद में दिखाया जायगा।

‘कारक’ का अर्थ है ऐसी वस्तु जिसका क्रिया के सम्पादन में उपयोग आवे। उदाहरण के लिए ‘अयोध्या में रघु ने अपने हाथ में लाखों रुपए ब्राह्मणों को दान दिए’, इस वाक्य में दान क्रिया के सम्पादन के लिए जिन २ वस्तुओं का उपयोग हुआ व ‘कारक’ कहलाएंगी। दान की क्रिया किसी स्थान पर हो सकती है, यहाँ अयोध्या में हुई इसलिए ‘अयोध्या’ कारक हुई, इस क्रिया के करने वाले रघु थे इस लिए ‘रघु’ कारक हुए, यह क्रिया हाथ से सम्पादित हुई इस लिए ‘हाथ’ कारक हुआ, रुपए दिए गये इस लिए ‘रुपए’ कारक हुए, और ब्राह्मणों को दिए गए इसलिए ‘ब्राह्मण’ कारक हुए। क्रिया के सम्पादन के लिए इस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित होते हैं —

क्रिया का सम्पादक—कर्त्ता

क्रिया का कर्म—कर्म

क्रिया का सम्पादन जिसके द्वारा हो—करण

क्रिया जिसके लिए हो—सम्प्रदान

क्रिया जिससे निकले, या जिससे दूर हो—अपदान

क्रिया जिस स्थान पर हो—अधिकरण

१ कर्त्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च ।

अपदानाधिकरणे इत्यादु कारकाणि षट् ॥





इस प्रकार कर्तृ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधि  
रण ये छ कारक हुए। इन्हीं कारकों के व्यवहार में विभक्तियां  
आती हैं।

क्रिया से जिसका सीधा सम्बन्ध होता हो वही कारक कहला  
कता है, ऐसे वाक्यों में जैसे गोविन्द के लड़के गोपाल को श्याम  
पीटा पीटने की क्रिया से सीधा सम्बन्ध गोपाल (जिसको पीटा)  
ए श्याम (जिसने पीटा) का है, गोविन्द का कुछ भी सम्बन्ध  
होता है। इस लिए "गोविन्द के" को कारक नहीं कह सकते।  
गोविन्द का सम्बन्ध गोपाल से है किन्तु पीटने की क्रिया के  
अपादन में उसका (गोविन्द का) कोई उपयोग नहीं होता।

अब क्रमानुसार प्रथमा आदि विभक्तियों के प्रयोग पर विचार  
लागे।

१०५

प्रथमा

(क) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा—

प्रथमा विभक्ति का उपयोग केवल शब्द का अर्थ बतलाने के  
लिए, अथवा केवल लिङ्ग और शब्दार्थ बतलाने के लिए, अथवा  
परिमाण अथवा वचन बतलाने के लिए किया जाता है।

उदाहरणार्थ—

( १ ) केवल प्रातिपदिकार्थ—प्रातिपदिक वा अर्थ है शब्द, जिसको  
अंगरेजी में ( Base ) बेस् या ( Crude form ) क्रूड फॉर्म कहते हैं।

( क ) सर्व शब्द के एक वचन के रूप परिमाणवाची हैं, यथा —

सर्वाऽपि विद्या विमुखीऽभूव,  
सर्वोऽपि प्रबन्ध समाया पठित  
सर्वमपि धान्यमुच्चारितम् इत्यादि

बहुवचन के रूप सख्यावाची 'सर्व' का अर्थ देते हैं, यथा—सर्वेणा धनिकानां धन क्षणस्थायि ।

द्विवचन के रूप प्रयोग में नहीं मिलते किन्तु यदि किसी वस्तुओं के साथ सर्व का अर्थ जाना हो तो द्विवचन का प्रयोग कर सकते हैं ।

९६—परिमाणवाची अल्प ( थोड़ा ), अर्ध ( आधा ) ने ( आधा ), सम ( बराबर ) तीनों लिङ्गों में अलग अलग चलते हैं—पुलिङ्ग में बालक के समान, नपुंसक लिङ्ग में फल समान और स्त्रीलिङ्ग में विद्या के समान । केवल अल्प, अर्ध और ने के पुलिङ्ग में प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं—अल्पे अल्पा अर्धे अर्धा, नेमे नेमा ।

( क ) पूरक सख्यावाची प्रथम और चरम शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं, जैसे परिमाणवाची अल्प आदि के । इन भी पुलिङ्ग प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं—प्रथमे प्रथमा चरमे चरमा ।

प्रत्येक शब्द का कुछ नियत अर्थ होता है, और संस्कृत के वैयाकरणों के हिसाब से किसी शब्द में जब तक प्रत्यय लगाकर पद (सुप्तिङन्त पद) न बना लिया जाय तब तक उसका अर्थ नहीं समझा जा सकता। यदि किसी शब्द के केवल अर्थ का बोध कराना हो तो प्रथमा विभक्ति लगाने हैं—जैसे यदि केवल 'राम' उच्चारण करें तो संस्कृत में यह शब्द निरर्थक होगा—यदि "राम" कहें तब राम शब्द के अर्थ का बोध होगा। इसके लिए सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण ही में नहीं, प्रत्युत अव्ययों तक में भी संस्कृत वैयाकरण प्रथमा लगाते हैं, यदि न लगाएँ तो उन अव्ययों का अर्थ हाथ निकले—जैसे नीचै, उच्चै आदि।

( २ ) केवल शब्दार्थ और लिङ्ग—ऐसे शब्द जिनमें लिङ्ग नही होता (जैसे उच्चै आदि अव्यय) और ऐसे जिनका लिङ्ग नियत है अर्थात् मालूम है कि यह शब्द केवल पुलिङ्ग में होता है (जैसे वृष्ट), अव्यय केवल नपुंसक लिङ्ग में होता है (जैसे फलम्) अथवा केवल स्त्रीलिङ्ग में होता है (जैसे फण्या) इनको छोड़ कर यात्री शब्दों का अर्थ और लिङ्ग दोनो प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही जान पड़ते हैं, जैसे—तट, तटी, तटम् इन शब्दों में तट से यह ज्ञात होता है कि यह शब्द पुलिङ्ग में है और इसका अर्थ किनारा है, तटी स्त्रीलिङ्ग है और इसका अर्थ किनारा है, तटम् नपुंसकलिङ्ग है और इसका भी अर्थ किनारा है।

( ३ ) केवल परिमाण—जैसे सेरो ग्रीहि, यहाँ प्रथमा विभक्ति से सेर का परिमाण विदित होता है। कितना चावल ? सेर भर चावल—इस अर्थ के लिए यहाँ प्रथमा विभक्ति है।

(ख) सत्यावाची कतिपय (कुत्र) शब्द के रूपों के विषय में ऊपर लिखा हुआ नियम लगता है, यथा—वर्णो कतिपर्यरेव ।

(ग) तीय प्रत्ययान्त द्वितीय और तृतीय शब्दों के रूप सर्व के समान होते हैं, केवल चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के वचन में सजा शब्दों (वालक फल और धिया) के समान होते हैं। उदाहरण के लिए द्वितीय के रूप पुलिङ्ग और श्रीतिङ्ग देये जाते हैं —

## द्वितीय

### पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वितीय	द्वितीयौ	द्वितीये
द्वितीया	द्वितीयम्	द्वितीयो	द्वितीयान्
तृतीया	द्वितीयेन	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीये
चतुर्थी	{ द्वितीयस्मै द्वितीयाय	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्य
पञ्चमी	{ द्वितीयस्मात् द्वितीयात्	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्य
षष्ठी	द्वितीयस्य	द्वितीययो	द्वितीयान्
सप्तमी	{ द्वितीयस्मिन् द्वितीये	द्वितीययो	द्वितीयेषु

( ४ ) केवल वचन ( संख्या )—जैसे ' बालक ' कहने से एक बालक, ' बालकौ ' से दो बालकों का और ' बालका ' कहने से कई बालकों का बोध होता है ।

( ख ) सम्बोधने च— ✓

प्रथमा विभक्ति का उपयोग सम्बोधन करने में भी होता है, जैसे —

बालका । हे बालको, कन्या । हे कन्याओ आदि । इसी लिए सम्बोधन को अलग विभक्ति नहीं मानते । ऊपर महाश्रो के रूप देते समय सम्बोधन के भी रूप कहीं २ दिए गए हैं, इस से यह नहीं समझना चाहिए कि सम्बोधन की भी कोई आठवीं विभक्ति होती है । रूप केवल आत्माना के लिए दिए गए हैं, क्योंकि सम्बोधन करते समय प्रथमा के एक वचन में कुछ अन्तर पड़ जाता है ।

( ग ) संस्कृत-व्याकरणों में ऊपर ( क ) और ( ख ) में लिखे हुए दो ही सूत्र प्रथमा विभक्ति के उपयोग के लिए मिलते हैं । अथ प्रश्न यह उठता है कि सारे संस्कृत साहित्य में कर्तृवाच्य का कर्त्ता ( बालक गच्छति, कन्या फलमश्नुते, लुप्तका वृक्षमारोहन्ति आदि ) और कर्मवाच्य का कर्म ( हरि सेव्यते, पित्रा पुत्र ताड्यते, भ्रात्रा भगिनी पाट्यते, भोजन स्वाद्यते ) प्रथमा विभक्ति में मिलता है । यह प्रथमा किस नियम अथवा सूत्र से निश्चित होनी चाहिए । इसका समाधान इस प्रकार है । संस्कृत भाषा में क्रिया अथवा व्यापार को ही वाच्य में प्रधानत्व दिया गया है । पता करना है इसके बारे में सत्र से पहले पूर्ण निश्चय हो जाना चाहिए ; फिर कर्त्ता, कर्म आदि

द्विनवति	{ द्विनवत द्विनवतितम	{ द्विनवती द्विनवतितमी
६३ त्रयोनवति या	{ त्रयोनवत त्रयोनवतितम	{ त्रयोनवती त्रयोनवतितमी
त्रिनवति	{ त्रिनवत त्रिनवतितम	{ त्रिनवती त्रिनवतितमी
६४ चतुर्नवति	{ चतुर्नवत चतुर्नवतितम	{ चतुर्नवती चतुर्नवतितमी
६५ पञ्चनवति	{ पञ्चनवत पञ्चनवतितम	{ पञ्चनवती पञ्चनवतितमी
६६ षण्णवति	{ षण्णवत षण्णवतितम	{ षण्णवती षण्णवतितमी
६७ सप्तनवति	{ सप्तनवत सप्तनवतितम	{ सप्तनवती सप्तनवतितमी
६८ अष्टानवति या	{ अष्टानवत अष्टानवतितम	{ अष्टानवती अष्टानवतितमी
अष्टनवति	{ अष्टनवत अष्टनवतितम	{ अष्टनवती अष्टनवतितमी
६९ नवनवति या	{ नवनवत नवनवतितम	{ नवनवती नवनवतितमी
एकोनशत नपुं०	एकोनशततम	एकोनशततमी
१०० शत	शततम	शततमी
२०० द्विशत	द्विशततम	द्विशततमी
३०० त्रिशत	त्रिशततम	त्रिशततमी
चतुरशत	चतुरशततम	चतुरशततमी

आधेगे । ऊपर कारक ( १०४ ) का व्याख्यान करते समय कहें कि क्रिया से सम्बन्ध रखने पर ही कारक हो सकता है । अन्य भाषाओं में किसी में कर्म को प्रधान घ है और किसी में कर्ता को, जैसे अंगरेजी में कर्ता को । अंगरेजी में कर्ता निश्चित हो जाता है फिर उसके अनुसार क्रिया कर्म आदि आते हैं । परन्तु मरुत में क्रिया का निश्चय होना मुख्य है और उसका निश्चय हो जाने पर उसी के सम्बन्ध में अन्य कारक शब्द आते हैं । क्रिया बतला जाने पर उसके साथ जिस शब्द का जैसा अन्वय हो उस शब्द का वैसा कारक समझना चाहिए । उदाहरणार्थ कोई क्रिया जैसे 'गच्छति' ले लीजिए, अथ 'गच्छति' से इन बातों का बोध होता है—

( १ ) क्रिया वर्तमान काल में हो रही है ।

( २ ) इस क्रिया का सम्पादक कोई अन्यपुरुष एकवचन है अथ कोई ऐसा वाक्य ले लीजिए जिसमें "गच्छति" शब्द आता हो जैसे—

राम ग्राम गच्छति—

इस वाक्य में दो शब्द हैं जो अन्यपुरुष और एकवचन में हैं, अर्थात् राम और ग्रामम् । ग्रामम् कर्मस्थानीय है य आगे द्वितीया के प्रयोग वाले सूत्रों से व्यक्त हो जायगा, इसलिए यह कर्त्ता हो नहीं सकता, वाक्यी वचा 'राम' शब्द, यही कर्त्ता सकता है । इसी प्रकार कर्मवाच्य के कर्म के विषय में भी कि

प०	पूर्वस्या	पूर्वयो	पूर्वामाम्
स०	पूर्वस्याम्	पूर्वयो	पूर्वांस्तु

१०३-विशेषणों की तुलना के लिए हिन्दी में विशेषण का रूपान्तर नहीं होता, केवल आवश्यकतानुसार अधिक, ज्यादा, कम आदि शब्द विशेषण के साथ जोड़ दिए जाते हैं जैसे—श्याम से गोपाल अधिक सुन्दर है, मुझसे वह अन्ध्रा है अथवा ज्यादा अन्ध्रा है, गोपाल से श्याम कम सुन्दर है, इत्यादि। परन्तु मस्कृत अधिक आदि शब्द जोड़ कर तुलना नहीं की जाती, जैसे 'श्यामादधिकसुन्दरोऽस्ति' चाहे यह वाक्य व्याकरण में नहीं है।

हिन्दीपन की गन्ध आती प्रत्यय विशेषणों

तरफ



साथ कर्म का जिस शब्द का अन्वय लग जायगा वही कर्म होगा, जैसे—'मेयते' से यह पता चल जाता है कि कोई अन्यपुरुष कवचन की सहा कर्म हो सकती है। अब जिस धाम्य में 'सेव्यते' किया आवे जिसका सम्बन्ध कर्म रूप ही में सिद्ध हो अन्य में नहीं वही कर्म होगा, जैसे—हरि सेव्यते इत्यादि।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि कर्तृवाच्य में किया का कर्ता और कर्मवाच्य में किया का कर्म यह भी प्रथमा विभक्ति में होते हैं।

१०६

## द्वितीया

### (क) कर्तुरीप्सिततम कर्म—

“किसी धाम्य में प्रयोग किए गए पदार्थों में से जिगको कर्ता सब से अधिक चाहता है उसे कर्म कहते हैं”, पाणिनि ने कर्म कारक की इस प्रकार परिभाषा दी है।

“जिस वस्तु या पुरुष के ऊपर किया का फल समाप्त होता है उसे कर्म कहते हैं” यह हिन्दी तथा अंग्रेजी में कर्मकारक की परिभाषा बतलाई जाती है, किन्तु साहित्य में ऐसे अनेकों उदाहरण आते हैं जिन पर किया का फल समाप्त तो होता है, किन्तु वे कर्मकारक नहीं माने जाते, जैसे—यह घर जाता है। यहाँ यद्यपि 'जाने' का कार्य घर पर समाप्त होता है तथापि 'घर' साधारणतः कर्म नहीं माना जाता। सस्कृत में भी 'घर'

दिनवति	{ दिनवत दिनवतितम	{ दिनवती दिनवतितमी
६३ त्रयोनवति या	{ त्रयोनवत त्रयोनवतितम	{ त्रयोनवती त्रयोनवतितमी
त्रिनवति	{ त्रिनवत त्रिनवतितम	{ त्रिनवती त्रिनवतितमी
६४ चतुर्नवति	{ चतुर्नवत चतुर्नवतितम	{ चतुर्नवती चतुर्नवतितमी
६५ पञ्चनवति	{ पञ्चनवत पञ्चनवतितम	{ पञ्चनवती पञ्चनवतितमी
६६ षण्णवति	{ षण्णवत षण्णवतितम	{ षण्णवती षण्णवतितमी
६७ सप्तनवति	{ सप्तनवत सप्तनवतितम	{ सप्तनवती सप्तनवतितमी
६८ अष्टानवति या	{ अष्टानवत अष्टानवतितम	{ अष्टानवती अष्टानवतितमी
अष्टनवति	{ अष्टनवत अष्टनवतितम	{ अष्टनवती अष्टनवतितमी
६९ नवनवति या	{ नवनवत नवनवतितम	{ नवनवती नवनवतितमी
एकोनशत नपुं०	एकोनशततम	एकोनशततमी
१०० शत	शततम	शततमी
२०० द्विशत	द्विशततम	द्विशततमी
३०० त्रिशत	त्रिशततम	त्रिशततमी
० चतुश्शत	चतुश्शततम	चतुश्शततमी

को साधारण नियमों के अनुसार कर्म नहीं मानते, न 'जाना' को सञ्ज्ञा किया मानते हैं। घर को कर्म मानने के लिए साधारण नियमों के अतिरिक्त विशेष नियम हैं। इसी प्रकार और भी स्थल दिखाए जायेंगे जो कि साधारण परिभाषानुसार कर्म के अन्तर्गत नहीं होते और जिन्हें सञ्ज्ञा देने के लिए विशेष विशेष सूत्रों को रचना करनी पड़ी।

### (ख) कर्मणि द्वितीया—

कर्म को बतलाने के लिए द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है जैसे —

भक्त हरि को भजता है। इसमें 'हरि को' कर्म है, इसलिए हरि शब्द में द्वितीया करनी होगी—भक्ता हरिं भजति। ब्रह्मचारी वेदमधीते।

### (ग) अधिशीङ्स्थासा कर्म—

गी, स्था, तथा आस् धातुओं के पूर्व यदि अधि-उपसर्ग लग जाय तो इन क्रियाओं का आधार कर्म कहलाता है अर्थात् निश्चय स्थान पर इन धातुओं की क्रिया होती है यह कर्म होता है जैसे —

चन्द्रापीड मुक्ताशिलापट्टम् अधिशिष्ये—चन्द्रापीड मुक्ताशिला की पट्टरी पर लेट गया।

अर्थास्ते गोप्रभितोऽधितस्थो—इन्द्र के आधे आत्मन पर बँठा था ।

भूपति सिंहासनम् अध्यास्ते—राजा सिंहासन पर बँठा है ।

यहाँ ये क्रियाएँ पटरी, आत्मन और सिंहासन पर, जो आधार हुई हैं इसलिए इन शब्दों को कर्म कहेंगे और इनमें द्वितीया प्रेमिति होगी । यदि अधि-उपसर्ग न लगा होता तो आधार के अर्थ में सप्तमी होती—गिलापट्टे गिरये, अध्यात्मने तस्या, सिंहासने आस्ते ।

( घ ) अभिनिविशश्च

अभि तथा नि उपसर्ग जब एक साथ विश् धातु के पहिले आते हैं तो विश् का आधार कर्म कारक होता है, जैसे —

सन्मार्गम् अभिनिविशते—वह अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है ।

धन्या सा कामिनी याम् भवन्मनोऽभिनिविशते—वह स्त्री धन्य है जिसके ऊपर आपका मन लगा है ।

१, २, ३ ये सब क्रियाओं के आधार हैं, इसलिए वास्तव में ये अधि करण हैं और इनमें सप्तमी हानी चाहिए थी, किन्तु इस नियम विशेष से ये कम हो गए हैं और इनमें द्वितीया हो गई ।

ानी से " का संस्कृतानुवाद जल शब्द के तृतीयान्त से होगा

। जलेन—राम जलेन मुख प्रक्षालयति ।

ग) अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया—✓

अर्थात् कर्तृवाच्य में जो कता रहता है वह कर्मवाच्य तथा विधवाच्य में तृतीयान्त हो जाता है उसे—

रामो हति—कर्तृवाच्य रामेण हन्यते—कर्मवाच्य ।

राम स्वपिति—कर्तृवाच्य, रामेण सुप्यते—भाववाच्य ।

अह जीवामि—कर्तृवाच्य, मया जीन्यते—भाववाच्य ।

घ) प्रकृत्यादिभ्य उपसख्यानम्—✓

अर्थात् प्रकृति आदि (स्वभावादि) अर्थों में तृतीया होती है, से—प्रकृत्या दयालु—स्वभाव से दयालु

नास्मा श्यामोऽयम्—यह श्याम नामक है,

सुखेन जीवति—सुख में जीता है अर्थात् सुखपूर्वक जीता है,

शिशु क्लेशेन स्यातु शम्नोति—बच्चा कठिनता में खड़ा होता है,

अर्जुन सरलतया पठति—अर्जुन आसानी से पढ़ लेता है ।

नोट—इन सब उदाहरणों के देखने से यह स्पष्ट है कि यह एन प्राय उन स्थलों में लगता है जो अंग्रेजी में क्रियाविशेषण या क्रियाविशेषण वाक्य कहलाते हैं । उदाहरणार्थ ऊपर के वाक्यों में प्राय हुए तृतीयान्त " प्रकृत्या—Naturally (adverb) या By

किंतु संस्कृत में का, की स्थानीय पक्षी न खगकर द्वितीया लगती है  
अनुवाद के समय इसका ध्यान रखना चाहिए ।

( ज ) अभितःपरितःसमयानिकृपाहाप्रतियोगेऽपि—

अभित ( चारों ओर या सब ओर ), परित ( सब ओर ), समय  
( समीप ), निकृपा ( समीप ), हा, प्रति ( ओर, तरफ ) शब्दों को  
जिससे सन्निकटता पाई जाती है उसमें द्वितीया होती है, जैसे —

परिजन राजानम् अभित तस्यै—नौकर लोग राजा के चारों ओर  
खड़े थे ।

रक्षासि वेदीं परितो निरास्थत्—राक्षसों को वेदी के चारों ओर  
निकाल दिया ।

ग्राम समया निकृपा या—ग्राम के समीप ।

हा शठम्—हाथ गठ ।

मातु हृदय कन्या प्रति स्निग्ध भवति—माता का हृदय कन्या  
ओर ( कन्या के प्रति ) कोमल होता है ।

नाट—यहाँ भी हिन्दी और संस्कृत दोनों के व्यवहार में विभिन्न  
हैं । प्रति के साथ हिन्दी में पष्ठी लगती है, संस्कृत में द्वितीया, इस  
प्रकार अभित परित, समय, निकृपा के साथ भी होता है ।

२ हा के साथ कभी कभी सम्बोधन भी होता है ; जैसे —  
हा भगवत्यरुन्धति ।

nature ( adverbial phrase ) से, नाम्ना—By name ( adverbial phrase ) से, सुखेन—Happily अथवा ! happiness ( adverbial phrase ) से, फलेमेन—With difficulty ( adverbial phrase ) से, सरलतया—Easily ( adv ) या With ease ( adverbial phrase ) से अनूत होते हैं ।

### ( च ) अपवर्गे तृतीया

फलप्राप्ति अथवा कार्यसिद्धि को " अपवर्ग " कहते हैं, अपवर्ग के अर्थ का बोध कराने के लिए कालवाची तथा मार्गवाची शब्दों में तृतीया होती है, अर्थात् जितने " समय " में या जितने "मार्ग" चलते चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस " समय " और "मार्ग" में तृतीया होती है, जैसे—

मासेन व्याकरणम् अधीतवान्—महीने भर में व्याकरण पढ़ लिया, अर्थात् महीने भर व्याकरण पढ़ा और भली भाँति आगम्य एवं पढ़ने का कार्य महीने भर में सिद्ध हो गया ।

क्रोशेन पुस्तक पठितवान्—कोस भर में पुस्तक पढ़ डाली अर्थात् एक कोस चलते चलते पुस्तक पढ़ डाली । इसी प्रकार

चतुर्भिः वर्षैर्गृह निर्मापितवान्—चार वर्ष में घर बनवा लिया

पञ्चविंशत्या दिवसैः अयमिमं ग्रन्थं लिखितवान्—पचीस दिन इसने यह ग्रन्थ लिख डाला ।

( भ ) अन्तराऽन्तरेण युक्ते—

अन्तरा ( बीच में ), अन्तरेण ( विषय में, बिना, छोड़ कर ) शब्दों जिससे सन्निकटता प्रतीत होती है उसमें द्वितीया होती है, जैसे—

अन्तरा त्वां मां हरि —तुम्हारे हमारे बीच में हरि हूँ ।

रामम् अन्तरेण न किञ्चिद् जानामि—राम के बारे में मैं कुछ नहीं जानता ।

त्वामन्तरेण कोऽन्य प्रतिकर्तुं समर्थ —तुम्हारे बिना दूसरा कौन बदला देने में समर्थ हूँ ।

नोट—यहाँ भी हिन्दी में गड़ी जाती है और मन्त्र में द्वितीया ।

( ट ) काला-वनोरत्यन्तसयोगे द्वितीया—

जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार हो तो समय और मार्गाचक्ष शब्दों में द्वितीया होती है, जैसे —

अत्यारि वर्षाणि वेदम् अधिजगे—चार वर्ष तक वेद पढ़ा ।

सहस्र वर्षाणि राक्षस तपस्नसवान्—राक्षस ने हजार वर्ष तक लगातार तप किया ।

कोश कुटिला नदी—नदी कोस भर तक टेढ़ी है ।

सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता—हे राजन्, विश्ववर्ण की सभा सौ योजन लम्बी है ।



सप्तमि दिनै निरोगो जात—सात दिन में नीरोग हो गया ।  
 योजनाभ्यां कथा समाप्तवान्—दो योजना भर में कहानी खतम  
 कर दी ।

( छ ) सहसाकसार्धसमयोगे तृतीया

सह, साक, सार्ध, सम, इन सब शब्दों का अर्थ 'साथ' होता है । इनके प्रयोग में तृतीया आती है, जैसे—

राम जानक्या सह, साक, सार्ध, सम वा गच्छति—राम  
 जानकी के साथ जाते हैं । इसी प्रकार —

पुत्रेण सह पिता गच्छति—पिता पुत्र के साथ जाता है ।

हनुमान् धनुरै सह जानकीं मार्गयामास—हनुमान् जी ने  
 बंदरों के साथ जानकी को रोजा ।

भया सह क्रीड—मेरे साथ खेलो ।

उपाध्याय द्वात्रै सह स्नाति—उपाध्याय विद्यार्थियों के  
 साथ नहाता है ।

नोट—'साथ सह', आदि के साथ जो शब्द आता है, उसमें हिन्दी  
 में—का— जो षष्ठी का स्थानीय है लगाया जाता है, किन्तु संस्कृत में  
 तृतीया लगाई जाती है ।

( ज ) पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् । ✓

पृथक् ( अलग ), विना, नाना शब्दों के साथ तृतीया, द्वितीया  
 तथा पञ्चमी विभक्तियों में से कोई एक हो सकती है, जैसे—

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।

द्वाया धानरसिहस्य जले चास्तराऽभवत् ॥

धानरश्रेष्ठ ( हनुमान जी ) की परछाईं जो कि दश योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी थी जल में अधिक सुन्दर लगती थी ।

‘ आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी ।

श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा ’

( ठ ) एनपा द्वितीया

एनप् प्रत्ययान्त शब्द की जिससे सन्निकटता प्रतीत होती है उस द्वितीया या पष्ठी होती है, जैसे —

ग्राम ग्रामस्य वा दक्षिणेन—गाँव के दक्षिण की ओर ।

उत्तरेण नदीम् नदी के उत्तर ।

दण्डकान् दक्षिणेन—दण्डक के दक्षिण ।

तत्रागार धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीय—वहाँ पर ऊँचेर के महल उत्तर मेरा घर है ।

यहाँ दक्षिणेन, उत्तरेण इन दोनों शब्दों में एनप् प्रत्यय है ।

( ड ) गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यां चेष्टायामनध्वनि

जब कि गत्यर्थक धातुओं (ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ जाना' हो जैसे गम्, चल, ह्य् आदि ) का कर्म मार्ग नहीं रहता है थोर क्रिया निष्पन्न में शरीर से व्यापार करना पड़ता है तो उस कर्म में द्वितीया चतुर्थी होती है, जैसे —

रामेण, राम, रामाद् विना दशरथो नाजीवत्—राम के बिना दशरथ नहीं जिए ।

सीता चतुर्दशवर्षाणि राम, रामेण, रामाद् वा पृथगुवास—सीता चौदह वर्ष तक राम से अलग रही ।

जल, जलेन, जलाद् विना कमल स्यातु न शक्नोति—जल बिना कमल नहीं ठहर सकता ।

अन्न, अन्नेन, अन्नाद् विना नरो न जीवति—अन्न के बिना मनुष्य नहीं जीना ।

कौरवा पाण्डवेभ्यः पृथगवसन्—कौरव लोग पाण्डवों से अलग रहते थे ।

( भ ) येनाङ्गविकारः —

शरीर के जिम्मे अङ्ग में खराबी रहती है उसमें तृतीया होती है, जैसे—

अक्षणा काण — एक आँख का काना ।

देवदत्त गिरिस्ता खट्वाटोऽस्ति — देवदत्त सिर का गजा है ।

गिरिधर कर्णेन बधिर — गिरिधर कान का बहरा है ।

रमेश पादेन खञ्ज — रमेश पैर का जँगड़ा है ।

सुरेश कट्या कुब्ज — सुरेश कमर का कुचड़ा है ।

यहाँ भी हिन्दी के-का-के स्थान में तृतीया का प्रयोग सस्तर में होता है ।

— गृह गृहाय वा गच्छति । यहाँ पर 'गृह' मार्ग नहीं है, बल्कि स्थान  
 — और घर जाने में हाथ, पैर तथा शरीर के और अङ्गों को हिलाता  
 जाना पड़ता है, इस लिए गृह, गृहाय दोनों होता है । यदि गत्यर्थक  
 गु का कर्म " मार्ग " हो तो केवल द्वितीया होती है, जैसे—पथान  
 गच्छति ।

अहाँ शरीर से व्यापार नहीं करना पड़ता वहाँ केवल द्वितीया होती  
 , जैसे—मनसा हरिं यजति । यहाँ पर हरि के पास मन के द्वारा जाता है—  
 जैसे कि जाने वाले को हाथ, पैर अथवा शरीर का और कोई अङ्ग नहीं  
 हलाना डुलाना पड़ता, जब इसमें शरीर-व्यापार नहीं होता, इस लिए  
 चतुर्थी नहीं हो सकती । इसी प्रकार —

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके ।

तद्वातान् मृत्सुरभिं क्षितीश्वरो रहस्युपाधाय न तृप्तिमाययौ ।

विधा वदाति विनय, विनयाद् याति पात्रताम् ।

अश्वत्थामा किं न यात स्मृतिं ते ।

परमादुमाख्यां सुमुप्री जगाम ।

( ६ ) दूरान्तिकार्येभ्यो द्वितीया च ।

दूर, अन्तिक ( निकट ) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले  
 शब्दों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी अथवा सप्तमी होती है, जैसे—  
 ग्रामात्, ग्रामस्य वा दूर, दूरेण, दूरात् दूरे वा ।

घनस्य, घनाद् वा अन्तिक, अन्तिनेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा ।

गृहस्य निकट, निकटेन, निकटात्, निकटे वा ।

## ( ३ ) तुल्यायैरतुलोपमाभ्या तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।

‘तुला’ तथा ‘उपमा’ इन दो शब्दा को छोड़ कर शेष सब तुल्य ( समान, बराबर ) का अर्थ घटाने वाले शब्दों के साथ तृतीया अथवा पड़ी होती है, जैसे—

दृष्यस्य, दृष्येन वा तुल्य, सदृश, समो वा—दृष्य के बराबर या समान ।

दुर्योधनो भीमेन भीमस्य वा दुर्यो बलवान् नासीत्—दुर्योधन भीम के बराबर बलौ नहीं थे ।

नाय मया मम वा मम पराक्रमा विभर्ति—यह मेरे समान पराक्रम नहीं रखता ।

मा लोकात्पञ्चदशाहसी श्रुतस्य किं तत् सदृश बुलस्य ।

तुला और उपमा के साथ तृतीया ही होती है—“तेन तुला उपमा वा” ।

## ( ४ ) हेतौ तृतीया ✓

जिस कारण या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है या होता है उसमें तृतीया होती है, जैसे —

पुण्येन दृष्टो हरि —पुण्य के कारण हरि दिखाई पड़ ।

अध्ययनेन वसति—अध्ययन के प्रयोजन से रहता है ।

धन परिश्रमेण भवति—धन परिश्रम से होता है ।

तेजपराधेन दण्ड्योऽसि—उस अपराध के कारण तुम दण्डनीय हो ।

बुद्धि विद्या वर्धते—बुद्धि विद्या से बढ़ती है ।

हेतु में पञ्चमी भी होती है, यथा —

( त ) दुह्याच्पचदण्डस्त्रिप्रच्छिचित्रशासुजिमथमुपाम् ।

कर्मयुक्त स्यादकथित तथा स्यान्नीहकृष्णाम् ॥

दुह् ( दुहना ), याच् ( माँगना ), पच् ( पकाना ), दण्ड् ( दण्ड देना ), रुध् ( रोकना, रूधना ), प्रच्छ् ( पृथ्वी ), चि ( इकट्ठा करना ), म् ( कहना ) शास् ( शासन करना ), जि ( जीतना ), मथ् ( मथना ), मुप् ( चुराना ), गी ( ले जाना ), ह् ( हरना ), वृप् ( खींचना ), यह् ( छोना ), यह धातुष द्विकर्मक हैं ; जैसे—

गा दोग्धि पय —गाय ने दूध दुहता है ।

यलि याचते धमुधाम्—यलि से पृथ्वी माँगता है ।

तण्डुलान् ओदन पचति—चावलों का भात पकाता है ।

गगान् शत दण्डयति—गगों पर एक सौ दण्ड लगाता है ।

यजमवरुणदि गाम्—गाय को बाड़े में घेरता है ।

माणवक पन्थान पृच्छति—माणवक ने रास्ता पूछता है ।

वृषमवचिनोति फलानि—वृष के फलों को इकट्ठा करता है ।

माणवक धर्म ध्रुते शास्ति वा—माणवक से धर्म कहता है ।

शत जयति देवदत्तम्—देवदत्त से एक सौ जीत लेता है ।

सुधां क्षीरनिधि मथ्नाति—क्षीरसागर से अमृत मथता है ।

देवदत्त शत मुष्णाति—देवदत्त से एक सौ चुराता है ।

ग्राममजा गयति, हरति, कर्षति, वहति वा—बकरी को गाँव में जाता है ।

विद्या ददाति विनय विनयाद्याति पात्रताम् ।  
 पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं तत सुखम् ॥  
 प्रजानां विनयाधानाद्दृष्ट्याद्भरणादपि ।  
 स पिता पितरस्तासां केवल जन्महेतव ॥  
 सर्वद्रव्येषु विद्यैव प्रम्यमाहुरनुत्तमम् ।  
 अहार्यत्वादनर्थ्यत्वादक्षयराशौ सर्वदा ॥  
 यथा प्रह्लादनाथेन्द्र प्रतापासपनौ यथा ।  
 तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥

### १०८-चतुर्थी

( क ) कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्—

जिसे कोई चीज दी जाय उसे सम्प्रदान कहते हैं, जैसे—“ब्राह्मण को गाय देता है”—यहाँ पर “ब्राह्मण” सम्प्रदान है ।

( ख ) चतुर्थी सम्प्रदाने

अर्थात् सम्प्रदान में चतुर्थी होती है । इस नियम के अनुसार ऊपर के उदाहरण में “ब्राह्मण” चतुर्थी में होगा, जैसे—“ब्राह्मण गा ददाति ।” इसी प्रकार महा पुस्तक देहि—मुझे पुस्तक दे ।

( ग ) रुच्यर्थानां प्रीयमाणः

रुच् धातु के योग में तथा रुच् के समान अर्थवाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कहलाता है ; जैसे—

इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुएँ भी द्विकर्मक होती हैं ,

माणवक धर्म भाषते वक्ति वा ।

वक्ति वस्तुधा भिद्यते । इत्यादि

ऊपर कही हुई दुहादि धातुआ के प्रधान कर्म से जिनका सम्बन्ध होता अकथित अर्थात् अप्रधान या गौण कर्म कहे जाते हैं, जैसे—दुह् का कर्म “ दूध ” है दूध से सम्बन्ध रखने वाली है “ गाय ” , “ य ” अकथित अथवा अप्रधान कर्म है । इसी प्रकार “ अवरणद्धि ” प्रधान कर्म “ गाय ” है, गाय से सम्बन्ध रखने वाला “ यादा ” है , “ दा ” अकथित कर्म है ।

पय, वस्तुधा, प्रादन इस लिए प्रधान कर्म कहे जाते हैं क्योंकि वे कर्ता पर्यन्त हैं और कर्म छोड़ कर दूसरे कारक हो ही नहीं सकते । गाम्, माणवकम् इत्यादि अप्रधान कर्म हैं , क्योंकि वे कर्म के अतिरिक्त कारक भी हो सकते हैं ; जैसे—

‘ गा दाग्धि पय ’ के बदले गो ( पचमी ) दाग्धि पय ,  
“ प्रजन् अवरणद्धि गाम् ” ,, प्रजे अवरणद्धि गाम्,  
“ माणवक पन्थान पृच्छति ” ,, माणवकात् पन्थानं पृच्छति,  
दि कह सकते हैं ।

( ) गौणे कर्मणि दुहादेः प्रधाने नीहकृष्वहाम् ।

विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः ॥



- (१) विष्णवे रोचते भक्ति — विष्णु को भक्ति अच्छी लगती है ।  
 (२) बालकाय मोदका रोचन्ते—लड़के में लड्डू अच्छे लगते हैं ।

(३) सम्यक् भुज्यते पुरुषाय भोजन न स्वदते—अच्छी तरह खाए हुए पुरुष को भोजन स्वादिष्ट नहीं लगता ।

यहाँ पर उदाहरण न० १ में भक्ति से प्रसन्न होने वाले "विष्णु" हैं, उदाहरण न० २ में लड्डूओं में प्रसन्न होने वाला "बालक" है, और उदाहरण न० ३ में भोजन से प्रसन्न होने वाला "पुरुष" है, इसलिए विष्णवे, बालकाय और पुरुषाय में चतुर्थी हुई ।

(घ) धारैरुत्तमर्णः ✓

"धारि" ( उधार लेना, ऋण लेना ) धातु के योग में महाजन 'ऊर्ण' देने वाले' की सम्प्रदान सज्ञा होती है, जैसे —

श्याम अग्रपतये शत धारयति—श्यामने अग्रपति से एक सौ ऋण लिया है ।

गोविन्दो रामाय लघु धारयति—गोविन्द ने राम से एक लाल उधार लिया है ।

(च) क्रुधद्रुहेर्ष्यामूयार्थानां य प्रति कोपः ✓

अर्थात् क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य् तथा असूय् धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है वह सम्प्रदान समझा जाता है, जैसे —

स्वामी भृत्याय क्रुध्यति—मालिक नौकर पर क्रोध करता है ।

ऊपर कही हुई द्विकर्मक धातुओं में ।  
 तक के गौण कर्म में और नी, ह, कृप्, हैं,  
 हैं, शेष कर्मों में अर्थात् दुह् से मुष् तक के प्रधान कर्म में और द,  
 कृप्, वद् के गौण कर्म में द्वितीया होती है, जैसे—

कतुधास्य

कर्मवास्य

गोप धेनु पयो दोग्धि

गोपेन धेनु पयो दुद्वते

देवा समुद्र सुधां ममन्धु

देवै समुद्र सुधा ममन्ध

सोऽजां ग्राम नयति, हरति }  
 कर्षति, वहति वा }

( तेन अजा ग्राम नीयते,  
 हियते, कृष्यते, उह्यते वा। )

( ६ ) गतिबुद्धिप्रत्ययसानार्थशब्दरूपार्कर्मकाणामणि कृतौ  
 स णौ ( ५ म ) ।

( १ ) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ जाना हो, जैसे—गम्, या, आदि ।

( २ ) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ कुछ समझना या ज्ञान प्राप्त हो, जैसे—बुध् ( जानना ), ज्ञा ( जानना ), विद् ( जानना ) आदि ।

( ३ ) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ खाना हो, जैसे—भक्ष्, अद्, आदि ।

( ४ ) ऐसी धातुएँ जिनका कर्म कोई शब्द हो, जैसे—पठ् ( पढ़ना ), उच्चर् ( बोलना ) आदि, और—

( ५ ) ऐसी धातुएँ जिनका कोई कर्म न हो, जैसे—उत्थि ( बैठना ) आदि ।

खला सज्जनेभ्य अस्यन्ति—दुष्ट लोग सज्जनो में ऐसे निकात करते हैं ।

दुर्योधन पाराडवेभ्य ईष्यति स्म—दुर्योधन पाराडवों से ईष्ठा करता था ।

गठा सर्वेभ्यो द्रुवन्ति—शठ लोग सब से द्रोह करते हैं ।  
सीता रावणाय अरुप्यत्—सीता जी ने रावण के ऊपर कोप किया ।

### ( छ ) तुमर्थाच्च भाववचनात्

अर्थात् किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय ( के लिण ) जोड़ने से जो अर्थ निकलता है (जैसे अनुम् खाने के लिए पानुम् पीने के लिए आदि) वही अर्थ पाने के लिए उस धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी होती है, जैसे—

यागाय याति—( यष्टु याति )—यज्ञ करने के लिए जाता है ।

इसमें " याग " शब्द "यज्" धातु से बना हुआ भाववाचक है । यज्ञ धातु में तुमुन् जोड़ने से " यष्टु " बनता है, जिसका अर्थ " यज्ञ करने के लिए " होता है । वही ( यज्ञ करने के लिए ) अर्थ पाने के लिए इस भाववाचक याग शब्द में चतुर्थी कर दी है । इसी प्रकार —

शयनाय इच्छति ( शयितुम् इच्छति )—सोना चाहता है ।

उत्थानाय यतते ( उत्थातु यतते )—उठने की कोशिश करता है ।

मरणाय गङ्गातट गच्छति ( मर्तुं गङ्गातट गच्छति )—मरने के लिए गङ्गातट को जाता है ।

इन्का साधारण दशा में जो कत्ता रहता है वह शिजन्त अथवा प्रेरणा में कर्म हो जाता है, जैसे,

शत्रूनगमयत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत् ।

आशयच्छासृत देवान्, वेदमध्यापयद् विधिम् ।

आसयत् सलिले पृथ्वीं, य स मे आहरिर्गति ॥

अर्थात् जिन श्रीहरि ने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा आत्मीयों को वेद का समझाया, देवताओं को अमृत सिखाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया, पृथ्वी जल में बिठाया, वही मेरे शरणदाता हैं ।

साधारण रूप

प्रेरणार्थक रूप

शत्रुव स्वर्गमगच्छन्

शत्रून् स्वर्गमगच्छत्

स्वे वेदार्थम् अविदु

स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्

देवा अमृतम् आभन

देवान् अमृतम् आशयत्

विधि वेदम् आयैत

विधि वेदमध्यापयत्

पृथ्वी सलिल प्रास्त

पृथ्वी सलिले आसयत्

नोट—प्रेरणार्थक जाना से भेजना चलना से चलाना आदि होते हैं ।

## १०७—तृतीया

(क) साधकतम करणम्—✓

अर्थात् अपने कार्य की मिद्धि में कर्ता जिम्मेकी सब से अधिक सहायता लेता है उसे करण कहते हैं, जैसे—

दानाय धनमर्जयति ( दातु धनमर्जयति )—देने के लिए धन कमाता है ।

( ज ) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या—

( १ ) अर्थात् जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता उस ( प्रयोजन ) में चतुर्थी होती है, जैसे—

मुक्तये हरिं भजति—मुक्ति के लिए हरि को भजता है ।

धनाय प्रयतते—धन के लिए प्रयत्न करता है ।

शिशु मेदकाय रेादिति—बच्चा लड्डू के लिए भेता है ।

( २ ) अथवा जिस वस्तु के बनाने के लिए किसी दूसरी वस्तु का अस्ति-य रहता है, उसमें चतुर्थी होती है, जैसे

शकटाय दार—गाड़ी (बनाने) के लिए लकड़ी ।

आभूषणाय मुवर्णम्—जेवर (बनाने) के लिए सोना ।

( ३ ) यदि कोई कार्य किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति के लिए किया जाय तो उस परिणाम में चतुर्थी होती है, जैसे—

काव्य यशसे—यश के लिए काव्य, अर्थात् काव्य से यश होता है ।

भक्ति ज्ञानाय—ज्ञान के लिए भक्ति, अर्थात् भक्ति से ज्ञान होता है ।

राम पानी से मुँह धोता है—

यहाँ पर साधारण रूप से तो मुँह धोने में राम अपने हाथ तथा जलपात्र—दोनों की सहायता लेता है, यदि हाथ लगावेगा तो मुँह किस प्रकार धो सकेगा, और यदि जलपात्र होगा तो जल किसमें रखेगा। अस्तु, यह सिद्ध होगया कि अपने हाथ तथा जलपात्र दोनों की सहायता लेता है, किन्तु यहाँ यह है कि मुँह धोने में सबसे अधिक आवश्यकता किसकी है। इस वाक्य में जितने शब्दों का प्रयोग किया गया है उसे देखने से यह स्पष्ट है कि मुँह धोने में सब में अधिक महत्व "पानी" की है इसलिये "पानी" करण कारक है, और "हाथ" करण कारक का चिह्न है।

नोट—किसी वाक्य में जो सब से अधिक आवश्यक सहक हो उसी को करण कहेंगे। वाक्य से बाहर उससे अधिक सहायक हो सकने हैं किन्तु उनका विचार नहीं किया जाता। जहाँ राम "हाथ से" मुँह धोता है। यहाँ "हाथ से" करण कारक यद्यपि 'जल' हाथ से भी अधिक आवश्यक है, किन्तु वाक्य में न होने से करण कारक नहीं है।

(ख) करण तृतीया—

अर्थात् करण कारक का बोध कराने के लिये तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। एवं "राम पानी से मुँह धोता है"

( भ ) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः

अर्थात् जब तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का प्रयोग परोक्ष रहे तो उसके "कर्म" में चतुर्थी होती है, जैसे—

फलेभ्यो याति—( फलानि आनेतु याति )—फलों को जाने के लिए जाता है ।

इस वाक्य का यथार्थ अर्थ ' फलानि आनेतु याति ' है, किन्तु " फलेभ्यो याति " में तुमुनन्त ' आनेतुम् ' का प्रयोग परोक्ष है, और ' आनेतुम् ' का कर्म ' फलानि ' है, इसलिए " फल " शब्द में चतुर्थी हुई । इसी प्रकार —

नमस्कुर्मो नृसिंहाय—( नृसिंहमनुकूलयितु नमस्कुर्म )—नृसिंह का अनुकूल करने के लिए हम लोग नमस्कार करते हैं ।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य—( स्वयम्भुव प्रीणयितु नमस्कृत्य )—ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार करके ।

वनाय गा मुमोच—( वन गन्तु गा मुमोच )—वन जाने के लिए गाध छोड़ दी ।

( ट ) नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलवपड्योगाच्च—

नम , स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अल, तथा चपट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है, जैसे—

तस्मै श्रीगुरुवे नम —उन गुरु जी को नमस्कार ।

रामाय नमः, तुभ्य नमः ।

स्वस्ति भवते—आप का कल्याण हो ।

प्रजाम्य स्वस्ति—प्रजाओं का कल्याण हो ।

अग्नये स्वाहा—यह आहुति अग्नि को ।

पितृभ्य स्वधा ।

इन्द्राय वषट् ।

दैव्येभ्यो हरि अन्नम्—हरि दैव्यों के लिए काफ़ी हैं ।

अन्न मल्लो मल्लाय—पहलवान, पहलवान के लिए काफ़ी हैं ।

ठ ) मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ।

जब अनादर दिखाया जाता है तो मन् ( समझना, दिवादिगणी ) धातु कर्म में चतुर्थी या द्वितीया होती है, जैसे—

मत्वा तृया तृयाय या मन्ये—मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता ।

## १०६-पञ्चमी

क ) ध्रुवमपायेऽपादानम्

जिससे कोई वस्तु अलग हो, उसे अपादान कहते हैं, जैसे—  
“वह कोठे से गिर पड़ा” । यहाँ पर “वह कोठे से अलग हो रहा” ।  
इसलिए “कोठे से” अपादान है, इसी प्रकार “पेड़ से गिरते हैं”,—मे “पेड़” और “राम गाँव से चला गया” में “गाँव” अपादान है ।



ती हैं। पट्टी का धाम्य की क्रिया ने कोई सम्बन्ध नहीं रहता, तो सज्ञा का मज्ञा ने अथवा सज्ञा का सर्वनाम ने सम्बन्ध आपित करती है, जैसे —

श्याम गोविन्दस्य पुत्र ताडितवान्—

यहाँ मारने की क्रिया से गोविन्द का कोई सम्बन्ध नहीं, सम्बन्ध है तो गोविन्द के पुत्र का और श्याम का। हाँ, गोविन्द का पुत्र से सम्बन्ध है,

किन्तु गोविन्द और पुत्र दोनों सहाय्य हैं। श्याम मम पुत्र ताडितवान्।

यहाँ 'मेरा' का पुत्र से सम्बन्ध है, क्रिया से नहीं, और 'मेरा' सर्वनाम है और 'पुत्र' मज्ञा है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि पट्टी किसी कारक का बोध नहीं कराती। उसका क्या प्रयोग है वह नीचे के सूत्रों से प्रकट होगा।

## ११२-पट्टी

क) पट्टी शेषे—

इस सूत्र का अर्थ यह है कि जो बात और विभक्तियों से नहीं बतलाई जा सकती, उसको बतलाने के लिए पट्टी होती है। ये सब सम्बन्ध विशेष हैं। जहाँ स्वामी तथा भृत्य, जन्य तथा जनक, कार्य तथा कारण इत्यादि सम्बन्ध द्वाारा जाते हैं वहाँ पट्टी होती है, जैसे —

## ( ख ) अपादाने पञ्चमी

अर्थात् अपादान में पञ्चमी होती है। इस सूत्र के अनुसार ऊपर के धात्यों में आण हुण "कोठे से" का "प्रासादात्" से "पेड़ से" का "वृक्षात्" से, और "गाँव से" का "ग्रामात्" से सस्कृत में अनुवाद होगा। सम्पूर्ण धात्यों का स्वरूप इस प्रकार होगा—

स प्रासादात् अपतत्,  
वृक्षात् पर्णानि पतन्ति,  
रामो ग्रामाद् जगाम ।

## ( ग ) जुगुप्साविरामप्रमादार्यानामुपसख्यानम्

जुगुप्सा ( घृणा ), विराम ( बन्द हो जाना, अलग हो जाना, देना, हटना ), प्रमाद ( भूल करना ) के समान अर्थ रखने वाले शब्दों साथ पञ्चमी होती है। ( जिस वस्तु से घृणा करे, जिससे हटे अर्थात् दूर कर दे, जिस काम में भूल करे, इन सब में पञ्चमी विभक्ति का होता है )। धैर्यवान् पुरुष अपने निश्चय से नहीं हटते, राजा कर्म से दृढा, पाप से घृणा करता है धर्म में भूल करता है, अपना क्रूर भूल इन वाक्यों में रेखाङ्कित शब्दों में सस्कृत में पञ्चमी होगी। जैसे—

न निश्चितायां द्विरमन्ति धीरा ।

न नव प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मण्य — वह नया तब तक कर्म से न हटा जब तक कि उसे फल न मिल गया ।

राज्ञ पुरुष — राजा का पुरुष ।

यहाँ पर ' राजा ' स्वामी है, ' पुरुष ' भृत्य है । इस "स्वामि तथा भृत्य" का सम्बन्ध दिखाने को " राज्ञ. " में पष्ठी हुई है ।

बालस्य माता - बालक की माँ ।

यहाँ पर ' बालक ' जन्य अर्थात् " पैदा होने वाला " है और ' माता ' जननी अर्थात् " पैदा करने वाली " है, एव इसमें "जन्य जनक" सम्बन्ध है, और इसी को दिखाने के लिए "बालस्य" में पष्ठी हुई है ।

मृत्तिकाया घट — मिट्टी का घड़ा ।

यहाँ पर ' मिट्टी ' कारण है और ' घड़ा ' कार्य है । एव इसमें "कारणकार्य" सम्बन्ध है, और इसी को दिखाने के लिए ' मृत्तिकाया ' में पष्ठी हुई है ।

( ख ) पष्ठी हेतुप्रयोगे

जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है वह और 'हेतु' शब्द—दोनों पष्ठी में रखे जाते हैं, जैसे—

अन्नस्य हेतो वसति—वह अन्न के वास्ते रहता है, अर्थात् अन्न पाने प्रयोजन से रहता है ।

यहाँ रहने का कारण या प्रयोजन "अन्न" है, इसलिए "अन्नस्य" और "हेतो" दोनों में पष्ठी हुई है ।

अध्ययनस्य हेतो कास्या तिष्ठति—अध्ययन के लिए काशी में टिका

वस्मैतस्माद्विरम विस्मात् पर न चमोऽस्मि ।

प्रपाठ्य पुनरिव न मे जानकोविप्रयोग ॥

पापाञ्जुगुप्सते । धर्माध्वमाश्रति ।

कश्चिन्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकाराध्वमत्त ।

घ ) ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च । ५

जब ल्यप् ( प्रेष्य, आनीय आदि ) अथवा क्त्वा प्रत्ययान्त ( दृष्ट्वा, गत्वा आदि ) क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं की जाती किन्तु छिपी रहती है तो उस क्रिया के कर्म और आधार पञ्चमी में होते हैं, जैसे—

श्वशुराजिज्ञहेति—ससुर से जज्जा करती है ।

वास्तव में इस वाक्य को पूर्णरूप से प्रकट करने पर इसका रूप यों होगा—

“ श्वशुर वीक्ष्य दृष्ट्वा वा जिज्ञहेति, ” अर्थात् ससुर को देख कर जज्जा करती है, ‘ श्वशुराजिज्ञहेति ’ में ‘ दृष्ट्वा ’ या ‘ वीक्ष्य ’ प्रकट नही किया गया है इसलिये ‘ दृष्ट्वा ’ का कर्म ‘ श्वशुर ’ पञ्चमी में हो गया ।

आसनाध्वेयते—आसन से देखता है ।

वास्तविक रूप पूर्णरूप से प्रकट करने पर इसका आकार यों होगा —

‘ आसने उपविश्य स्थित्वा वा प्रेक्षते ’ अर्थात् आसन पर बैठ कर देखता है । “ आसनाध्वेयते ” में ‘ उपविश्य ’ या ‘ स्थित्वा ’ प्रकट नहीं किया गया है, इसलिये “ उपविश्य ” का आधार ‘ आसन ’ सप्तमी में न होकर पञ्चमी में हो गया ।

यहाँ पर टिकन का प्रयोजन या कारण "अध्ययन" है, इस लिये 'अध्ययनस्य' और "हेतो" दोनों में पष्ठी हुई है।

### ग) सर्वनाम्नस्तृतीया च

जब हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है तो सर्वनाम हेतु शब्द—दोनों में तृतीया, पचमी या पष्ठी होती है, जैसे —

कस्य हेतो	अत्र वसति	} —किस लिये यहाँ टिका है।
या		
कस्मात् हेतो	अत्र वसति	
या		
केन हेतुना	अत्र वसति	

यहाँ पर "किम्" शब्द सर्वनाम है, इसलिये "कस्य" में पष्ठी और "केन" में तृतीया और "कस्मात्" में पचमी हुई है। इसी प्रकार —

तेन हेतुना	} —उस कारण से।
तस्माद् हेतो	
तस्य हेतो	

येन हेतुना	} —जिस कारण से
यस्माद् हेतो	
यस्य हेतो	

### घ) निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनेनम्

"निमित्त" शब्द का अर्थ रखने वाले ( कारण, हेतु, प्रयोजन ) शब्दों का प्रयोग होने पर सर्वनाम में तथा निमित्त का अर्थ देने वाले शब्दों में प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं, जैसे —

## ( च ) चारुणार्थानामीप्सितः

जिससे कोई वस्तु या पुरुष दूर किया जाता है या मना किया जाता है वह अपादान होता है, जैसे—

यवेभ्यो गा चारयति—जौ से गाय को रोकता है ।

मित्र पापात् निवारयति—मित्र को पाप से दूर रखता है ।

यहाँ पर रोकने वाले की इच्छा जौ बचाने की और पाप से हटाने की गाय को जौ से दूर करता है और मित्र को पाप से, इसलिये जौ और में अपादान कारक होने के कारण पचमी का प्रयोग हुआ ।

## ( छ ) अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति

जब कोई अपने को किसी से छिपाता है तो जिससे छिपाता है अपादान होता है, जैसे—

मातुर्निलीयते कृष्ण —कृष्ण अपनी माता से छिपता है ।

यहाँ पर कृष्ण अपने को “ माता से ” छिपाता है इसलिये “माता” अपादान कारक हुआ ।

## ( ज ) आख्यातोपयोगे

जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज नि पूर्वक पढ़ी जाती है, अथवा मालूम की जाती है वह गुरु अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है, जैसे—

उपाध्यायाद् अधीते—उपाध्याय से पढ़ता है ।

कौशिकाद् विदितशापया—विश्वामित्र से शाप जान क उसने ।

किं निमित्तम्	को हेतु	तत् प्रयोजनम्
केन निमित्तेन	क हेतु	तेन प्रयोजनेन
कस्मै निमित्ताय	केन हेतुना	तस्मै प्रयोजनार्थ
कस्मात् निमित्तात्	कस्मै हेतवे	तस्मात् प्रयोजनार्थ
कस्य निमित्तस्य	कस्मात् हेतो	तस्य प्रयोजनस्य
कस्मिन् निमित्ते	कस्य हेतो	तस्मिन् प्रयोजने
	कस्मिन् हेतौ	

किन्तु जब सर्वनाम का प्रयोग नहीं रहता तब प्रथमा, द्वितीया नहीं होतीं, जेव सब विभक्तियाँ होती हैं, जैसे —

ज्ञानेन निमित्तेन }  
 ज्ञानाय निमित्ताय } — ज्ञान के वास्ते ।  
 ज्ञानात् निमित्तात् }  
 ज्ञानस्य निमित्तस्य }  
 ज्ञाने निमित्ते }

( च ) पष्ठयतसर्थप्रत्ययेन

अतसुच् ( तस् ) प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्दों ( दक्षिण उत्तरत आदि ) की तथा इस प्रत्यय का अर्थ रखने वाले प्रत्यय अन्त होने वाले शब्दों ( उपरि, अध, अग्रे, आदौ, पुर आदि ) जिसमें सन्निकटता पाई जाती है उसमें पठो होती है, जैसे —

ग्रामस्य दक्षिणत, उत्तरत, ।

रथस्योपरि रथस्य उपरिष्ठात् ।

पतिव्रतानाम् अग्रे कीर्तनीया सुदक्षिणा ।

अव्यापकाद् गणित पठनि—अव्यापक से गणित पढ़ता है ।  
 तेषोऽधिगन्तु निगमान्तविद्या वाल्मीकिपाञ्चानिहपर्यटामि—  
 लागे से वेद पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि के यहाँ से इस  
 न पर चली आई हूँ ।

१) जनिकर्तुः प्रकृतिः

जन् धातु के कर्ता का आदि कारण अपादान होता है, जैसे—  
 कामाक्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध पैदा होता है ।  
 यहाँ “ अभिजायते ” का कर्ता “ क्रोध ” है, और इस कर्ता  
 ‘य’ का “ आदि कारण ” “ काम ” है, इसलिए काम  
 आदान कारक है ।

२) भीत्रार्थाना भयहेतुः

जिसके कारण डर मालूम हो अथवा जिसके डर के कारण  
 करनी हो उस कारण को अपादान कहते हैं, जैसे—  
 चोराद् विभेति—चोर से डरता है ।  
 सर्पाद् भयम्—साँप से डर है ।  
 इनमें भय के कारण “ चोर ” और “ साँप ” हैं, इसलिए ये  
 आदान हैं ।

रक्ष मा नरकपातात्—नरक में गिरने से मुझे बचाओ ।  
 भीमाद् दुःशासन आतुम्—भीम से दुःशासन को बचाने के लिए ।  
 यहाँ भी “ नरकपात ” तथा “ भीम ” भय के कारण हैं,  
 लिए अपादान हैं ।



वृत्तस्य अध, वृत्तस्य अधस्तात् ।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुर कौतुकाधानहेतो ।

नोट—ये शब्द दिशा अथवा काल का बोध कराते हैं; उपरि, अध, अध जय दोहरा कर आते हैं तब पन्थी का प्रयोग नहीं जाता किन्तु द्वितीया का ( देखिए १०६ घ ) ।

( छ ) दूरान्तिकार्थः पण्डित्यन्यतरस्याम्

दूर, अन्तिक ( समीप ) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों का योग होने पर पन्थी तथा पचमी होती है; जैसे —

वन ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरम्—जङ्गल गाँव से दूर है ।

प्रयासन्नो माधवीमण्डपस्य—माधवी जता के कुञ्ज के समीप ।

कणपुर प्रयागस्य प्रयागाद् वा समीपम्—काणपुर प्रयाग से या प्रयाग के समीप है ।

नोट—जितने दूरी दिखाई जाती है उगमें पन्थी या पचमी होती है, किन्तु दूर वाची या निकट वाची शब्दों में द्वितीया आवि ( देखिए १०६ घ )

( ज ) अधीगर्थदयेशा कर्मणि

अधि पूर्णक 'इ' धातु ( स्मरण करना ), दय् ( दया करना ), इश् समय होना ) तथा इन का अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के कर्म में पन्थी होती है; जैसे:—

मातु स्मरति—माता को याद करता है ।

स्मरन् राघवबाणां विव्यथे राघवेश्वर —रामचन्द्र जी के बाणों को याद करता हुआ रावण दुःखी हुआ ।

( ४ ) यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी—

( १ ) जिस स्थान से किसी दूसरे स्थान की दूरी दिखाई जाती है वो जिससे दूरी दिखाई जाती है वह स्थान पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है।

तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ—

और जितनी दूरी दिखाई जाती है वह दूरी वाचक शब्द प्रथमा विभक्ति में या सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है, जैसे—

मम गृहात् प्रयागं योजनत्रयमस्ति अथवा मम गृहात् प्रयागं योजनं अस्ति—

यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह " घर " है, इसलिये पञ्चमी विभक्ति में रखा गया है, और जितनी दूरी दिखाई गई है वह " योजन " है, इसलिये ' तीन योजन ' प्रथमा में अथवा सप्तमी में रखा गया है। इसी प्रकार और उदाहरण हो सकते हैं —

कर्यापुरात् प्रयागं अष्टादशयोजनानि अष्टादशयोजनेषु वा।

भरद्वाजाश्रमात् गङ्गायामुनयो सङ्गमः क्रोशः क्रोशे वा इत्यादि।

( २ ) जिस समय से किसी दूसरे समय की दूरी दिखाई जाती है वह समय पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है।

कालात् सप्तमी वक्तव्या—

और जितनी दूरी दिखाई जाती है वह दूरी वाचक शब्द सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है, जैसे—

कार्तिक्या आग्रहायणी मासे—कार्तिकी पूर्णिमा से आग्रहन की पूर्णिमा

एक महीने पर होती है।

प्रभवति निजस्य वन्यकाजनस्य महाराजः—महाराज अपनी पु  
ऊपर समर्थ हैं।

गात्रायामनीशोऽस्मि सवृत्त — मैं अपने अङ्गों का मालिक न रह  
कथञ्चिदीशा मनसा बभूवु—उन लोगों ने बड़ी कठिनाई से  
मन को अपने बस में रक्खा।

शौचस्तिकस्व विभवा न चेपां व्रजन्ति तेषां दयसे न कस्माद्—

जिनका धन प्रातःकाल तक भी नहीं टिकता उनके ऊपर दया  
नहीं दया करता।

रामस्य दयमान — राम के ऊपर दया करता हुआ।

### ( भ ) कर्तृकर्मणोः—कृति

जब कोई क्रिया कृदन्त प्रत्यय के द्वारा प्रकट की जाती है ( जैसे  
की क्रिया "गति" से, याद करने की "स्मृति" से ) तो उस क्रिया  
जो कर्ता या कर्म होता है वह कृदन्त प्रत्ययान्त शब्द के साथ पड़ी  
रक्खा जाता है, उदाहरणार्थ —

कृष्यस्य कृति —कृष्य का कार्य।

यहाँ पर करना क्रिया का बोधक कृति शब्द है जो कि कृ धातु  
कृदन्त क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से बना है। और इसका कर्ता "कृष्य"  
इसलिये कृत् प्रत्ययान्त "कृति" शब्द के साथ कर्ता "कृष्य" में  
हुई है। इसी प्रकार —

रामस्य गति —राम की गति ( चाल )।

बालकाना रोदनम्—बालक का रोना।

यहाँ कार्तिकी पूर्णिमा से दूरी दिखाई गई है, इस लिए उसमें पचमी है और एक महीने की दूरी दिखाई गई है इस लिए "महीने" में सप्तमी है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हो सकते हैं—

अस्मान् दिवसात् गुरुपूर्णिमा दशसु दिवसेषु ।

आश्विनमासस्य प्रथमदिवसात् विजयदशमी पञ्चविंशतिदिवसेषु  
[त्यादि ।

( ६ ) पञ्चमी विभक्ते

इत्यनुत्तरं अथवा तरप् प्रत्ययान्त विशेषण ( देखिए नि० १०३ ) के द्वारा अथवा साधारण विशेषण या क्रिया के द्वारा जिससे किसी वस्तु का तुलनात्मक भेद दिखाया जाता है उसमें पञ्चमी होती है। जैसे —

प्रजा सरत्तति नृप सा वर्द्धयति पार्थिवम् ।

वर्धनाट्टक्षण श्रेय तदभावे सदप्यसत् ॥

माता गुरतरा भूमे खात्पितोच्चतरस्तथा ।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

एकाक्षर पर ब्रह्म, प्राणायामा पर तप ।

सावित्र्यास्तु पर नास्ति, मोनात् सत्य विशिष्यते ॥

इन उदाहरणों में " बढ़ाने से रक्षा करना अच्छा है," यहाँ बढ़ाने से रक्षा करने का भेद दिखाया गया है, इसलिए बढ़ाने में पञ्चमी हुई। इसी प्रकार —

अध्वेतस्य अध्वेता—वेद का अध्ययन करने वाला ।

यहाँ पर “अध्वेता” अधि उपसर्ग पूर्वक “इड्” धातु तथा रुदन्त के प्रत्यय से बना है, इसका कर्म ‘वेद’ है । इसलिये रुदन्त “अध्वेता” के साथ कर्म “वेद” में पठ्ठी टुड् है ।

इसी प्रकार —

विषस्य भोजनम्—विष का खाना

राक्षसानां घात —राक्षसों का बध ।

राज्यस्य प्राप्ति —राज्य की प्राप्ति ।

८ ) न लोकाव्ययनिष्ठाग्वलर्थतृनाम

‘कृत्कर्मणो कृति’ सूत्र से सभी कृन्त प्रत्ययों के योग में कर्त्ता तथा में पठ्ठी का विधान किया गया था, किन्तु ‘नलोकाव्यय’ सूत्र ‘कृत्-कर्मणो कृति’ के क्षेत्र को छोटा कर देने वाला है । इसका अर्थ है —

लकार के अर्थ में प्रयोग किए जाने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में, ड, डक में अन्त होने वाले रुदन्त शब्दों के योग में, अन्त प्रत्यय के योग में, णिष्ठा ( क कर्त्तु ), में अन्त होने वाले शब्दों के योग में खल् तथा खल् के समान अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में तथा तृन् प्रत्याहार के अन्त्यगत आगे प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में पठ्ठी नहीं होती ।

जो प्रत्यय जिस लकार में प्रयुक्त होता है वह नीचे लिखा गया है :—

ध्या० प्र०—११

भूमि से माँ बड़ी है।

आकाश से पिता ऊँचा है।

दूसरे के धर्म से अपना धर्म अच्छा है।

सावित्री से श्रेष्ठ कुछ नहीं।

मौन से सत्य श्रेष्ठ है, आदि उदाहरण भी हैं।

## सप्तमी

### ( क ) आधारी अधिकरणम्—

जिस स्थान पर कोई कार्य होता है उसे अधिकरण कहते हैं।  
जैसे —

वह पाठशाला में पुस्तक पढ़ता है,

यहाँ पर “ पाठशाला में ” अधिकरण है।

### ( ख ) सप्तमी अधिकरणे—

अधिकरण में सप्तमी होती है। इस नियम के अनुसार  
पाठशाला शब्द को सप्तमी में रखना होगा, यथा —

पाठशालाया पुस्तक पठति।

### ( ग ) यतश्च निर्धारणम्

यदि किसी वस्तु का अपने समुदाय की अन्य वस्तुओं  
किसी विशेषण द्वारा कोई विशेष निर्देश किया जाता है, अर्थात्  
विशिष्टता दिखाई जाती है तो वह समुदायवाचक शब्द सप्त  
अथवा षष्ठी में रखा जाता है, जैसे —

प्रभवति निजस्य मन्यकाजनस्य महाराज,—महाराज अपनी पुत्रा  
ऊपर समर्थ हैं।

गात्राणामनीशोऽस्मि सवृत्त — मैं अपने शत्रुओं का मालिक न रहा  
कथञ्चिदीशा मनसा यभूवु —उन लोगों ने यही कठिनाई से मेरा  
मन को अपने घस में रक्खा।

शौचस्तिक्रव विभवा न येषा व्रजन्ति तेषां दयसे न कस्माद्—

जिनका धन प्रातःकाल तक भी नहीं टिकता उनके ऊपर दया  
नहीं दया करता।

रामस्य दयमान — राम के ऊपर दया करता हुआ।

( भ्र ) कर्तृकर्मणोः—कृति

जब कोई क्रिया कृदन्त प्रत्यय के द्वारा प्रकट की जाती है ( जैसे जाने  
की क्रिया "गति" से, याद करने की "स्मृति" से ) तो उस क्रिया का  
जो कर्ता या कर्म होता है वह कृदन्त प्रत्ययान्त शब्द के साथ पड़ी  
रक्खा जाता है, उदाहरणार्थ —

कृष्यस्य कृति —कृष्य का कार्य।

यहाँ पर करना क्रिया का बोधक कृति शब्द है जो कि कृ धातु  
कृदन्त क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से बना है। और इसका कर्ता "कृष्य" है  
इसलिप कृत् प्रत्ययान्त "कृति" शब्द के साथ कर्ता "कृष्य" में  
हुई है। इसी प्रकार —

रामस्य गति —राम की गति ( चाल )।

बालकाना रोदनम्—बालक का रोना।

कविषु कालिदास श्रेष्ठ, } कवियों में कालिदास सत्र से उड़े  
या  
कवीना कालिदास श्रेष्ठ } हैं।

गायु कृष्णा बहुक्षीरा, } गायों में काली गाय बहुत दूध  
या  
गवा कृष्णा बहुक्षीरा } देने वाली होती है।

छात्राणा मैत्र पटु, } विद्यार्थियों में मैत्र तेज है।  
या  
छात्रेषु मैत्र पटु }

इन उदाहरणों में यह दिखाया गया है कि काली गाय में कुछ विशिष्टता है, कालिदास और मैत्र में कुछ विशिष्टता है। ये तीनों विशेष कारण से अपने २ समुदाय में (गायों, कवियों और छात्रों) विशिष्ट हैं।

(घ) यस्य च भावेन भावलक्षणम्—

जब किसी कार्य के हो जाने पर दूसरे कार्य का होना प्रतीत होता है तो जो कार्य हो चुका है उसको सप्तमी में रखते हैं, जैसे—

सूर्ये अस्तगते गोपा गृहम् अगच्छन्—सूर्य के अस्त हो जाने पर ग्राहो अपने घर चले गए।

रामे वन गते दशरथ प्राणान् तस्याञ्ज—राम के वन चले जाने पर दशरथ जी ने अपना प्राण त्याग दिया।

सुरेशे गायति सर्वे जहसु—सुरेश के गाने पर सब हँस पड़े।

सर्वेषु शयानेषु श्यामा रोदिति—सब के सो जाने पर श्यामा रोती है।





यहाँ पर सूर्य के अस्त होने पर ग्यालों का घर जाना । राम के घर में पर दशरथ का प्राण त्याग करना , सुरेश के गाने पर सय का हँसना, सय के सो जाने पर श्यामा का रोना प्रतीत होता है , इसलिए सूर्य, सुरेश, सर्वेण्ड ये सय के सय सप्तमी में हैं ।

नोट—अंग्रेजी में जिसे Nominative absolute कहते हैं, वह संस्कृत में हो चुका हुआ कार्य अथवा 'सति सप्तमी' अथवा 'भावे सप्तमी' बोला जाता है ।

१११—ऊपर के सूत्रों से यह विदित हुआ कि—

प्रथमा विभक्ति कर्तृवाच्य के कर्ता के लिए तथा सम्प्राधान्य के लिए ।

द्वितीया विभक्ति कर्म के लिए

तृतीया विभक्ति करण के लिए

चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान के लिए

पञ्चमी विभक्ति अपादान के लिए और

सप्तमी विभक्ति अधकिरण के लिए प्रधान रूप से प्रयोग

में आती हैं । अर्थात् ये छ विभक्तियाँ एक २ करके छहो कारको बोध कराती हैं । जेप रही पष्ठी विभक्ति, इसका क्या प्रयोग ? ऊपर ( १०४ में ) कह आण हैं कि केवल ऐसे शब्द ( संज्ञा अथवा सर्वनाम ) जिनका क्रिया से सीधा सम्बन्ध स्थापित सकता है कारक कहे जाते हैं, इन कारको का सम्बन्ध क्रिया से स्थापित करने के लिए, पष्ठी को छोड़ कर और सारी विभक्ति

शतृ तथा शानच्— लट् लकार के अर्थ में।

कसु तथा कानच्— लिट् लकार के अर्थ में।

स्यतृ तथा स्यमान— लृट् लकार के अर्थ में।

शतृ तथा शानच् 'तृन्' प्रत्याहार के अन्तर्गत भी हैं, इसलिए वहाँ उदाहरण यहाँ न दिया जाकर उसी जगह पर दिया जायगा, यहाँ पर कानच्, स्यतृ, स्यमान के उदाहरण दिए जायेंगे—

कसु—कार्शी जग्मिवान् पुरुष स्वर्गं लभते—

काशी गया हुआ पुरुष स्वर्ग पाता है।

कानच्—परोपकार चक्राया जना ख्यातिं गच्छन्ति—

परोपकार कर चुके हुए लोग विख्यात हो जाते हैं।

स्यतृ—अन्यान् दुष्टसत्त्वान् जिनेष्यन् इव—

जङ्गल के दुष्ट जीवों को सिखाता हुआ सा।

स्यमान—अक्षयवट पूजयिष्यमाणा यात्रिण गङ्गतीरे एव स्थापयन्ति—

ओ यात्री अक्षयवट की पूजा करना चाहेंगे वे गङ्गा के तीरे

टिक जायेंगे।

'उ' तथा 'उक' प्रत्यय के उदाहरण —

उ—हरिं दिदृक्षु —हरि को देखने का इच्छुक।

उक—दैत्यान् घातुको हरिः—हरि दैत्यों के हन्ता है।

कृदन्त अन्यय प्रधानतया यमुल्, क्त्वा, स्यप्, तुमुन् इत्यादि

खगाकर बनाए जाते हैं, उनके उदाहरण —

यमुल्—स्मारं स्मार स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारि—अपने घर

चरित याद कर कर के मुरारि काष्ठ हो गए।

स्वा—ससार सृष्टा—ससार को रच कर ।

ल्यप्—सीता परित्यज्य लक्ष्मणोऽयाम्नीन् ।

सीता को त्यागकर लक्ष्मण जी चले गए ।

मुमुन्—यशोऽधिगन्तु सु प्रसीदितु वा मनुष्यमर्यामतिवर्तितु वा ।

यश पाने के लिए या सुख चाहने के लिए या मनुष्यों से बढ़ जाने के लिए ।

क तथा क्वत् 'निष्ठा' कहलाते हैं, उनके उदाहरण —

क—विष्णुना हता देव्या —देवज्ञात विष्णु ने मार डाले गए ।

क्वत्—देव्यान् हतवान् विष्णु—विष्णु ने देवियों को मार डाला ।

खल् के उदाहरण —

सुकर प्रपञ्चा हरिणा—हरि का ससार प्रपञ्च आराम से होता है ।

ट् प्रत्याहार के अन्तर्गत ये प्रत्यय हैं —शतृ, शानच्, शानन्, चानश्, इनके उदाहरण ये हैं —

शतृ—याज्ञक पर्यन् = लड़के को देखता हुआ ।

शानच्—पलेश सहमान = दुःख सहता हुआ ।

शानन्—सोम पवमान = सोमरस को पीता हुआ ।

चानश्—आरमान मण्डयमान = अपने को अलङ्कृत करता हुआ ।

ट्—क्ता कटान्—चटाइयों को बनाने वाला ।

टोट—इन सब प्रत्ययों का व्याख्यान " कृदन्त विचार " में आगे मिलेगा ।

उप+यधू ( वध्वा समीपे )=उपयधु ।

उप+गो ( गाघ समीपे )=उपगु ।

उप+नौ ( नाव समीपे )= उपनु ।

( २ ) अन् में अन्त होने वाली सज्ञाओं का “ न् ” ( पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में नित्य ही, और नपुंसकलिङ्ग में इच्छानुसार ) निकाल दिया जाता है, जैसे —

उप+राजन् ( राज समीपे )=उपराज=उपराजम्,

उप+सीमन् ( सीम्न समीपे )=उपसीम=उपसीमम्,

( नपु० ) उप+चर्मन् ( चर्मण समीपे ) = उपचर्म अथवा उपचर्मन्, उपचर्मम् ( यदि न् निकाल दिया जाय, ) अथवा उपचर्म यदि “ न् ” न निकाला जाय तो ) उपचर्मन् होगा ।

( ३ ) सज्ञाओं के अन्त में कभी कभी नित्य और कभी कभी इच्छानुसार अ जोड़ कर सज्ञा अकारान्त बना ली जाती है, यदि वना किसी व्यजन में अन्त होती हो तभी यह समय है । उदाहरणार्थ —

उप+सरित् ( सरित समीपे )=उपसरितम् अथवा उपसरित् ।

शरद्, विषाण्, अनस्, मनस्, उपानद्, अनडुद्, दिव्, हिमपद्, देश्, दृण्, विश्, चेतम्, चतुर्, तद्, यद् कियन्, जरम् इतने अकार प्रयोज्य जोड़ दिया जाता है, जैसे—

उपशरदम्, अधिमनसम्, उपदिशम् ।

## ( ठ ) क्तस्य च वर्त्तमाने

जब क्त प्रत्ययान्त शब्द ( जो कि अधिकांश में भूतकाल के बोधक है ) जैसे—स गत = वह गया ) वर्त्तमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है तो पष्ठी होती है, जैसे —

अहं राजां मतो बुद्धं पूजितो वा—मुझे राजा मानते हैं, मानते हैं अथवा पूजते हैं।

यहाँ पर मत, बुद्ध तथा पूजित में जो क्त प्रत्यय का प्रयोग किया गया है वह वर्त्तमान के अर्थ में है, इस धातु की व्याख्या होगी —

मा राजा मन्यते, बोधति, पूजयति वा ।

विदित तप्यमान च तेन मे भुवनत्रयम् ( रघुपञ्च, १० सर्ग, श्लोक ) उससे पीड़ित होते हुए तीनों भवन मुझे मालूम हैं।

यहाँ पर भी 'विदित' का क्त प्रत्यय वर्त्तमान के अर्थ में प्रयुक्त है। वर्त्तमान काल के स्वरूप में जानने पर इस धातु का आकार यों होगा —

तेन तप्यमान भुवनत्रयम् अहं वेदि ।

## ( ड ) कृत्यानां कर्तरि वा

जिन शब्दों के अन्त में कृत्य प्रत्यय लगते रहते हैं उनका प्रयोग पर क्ता में तृतीया तथा पष्ठी होती है, जैसे —

१ कृत्य प्रत्यय ये हैं—

तन्यत्, तन्य, अनीयत्, यत्, एयत्, क्यप् और केलिम्

( ग ) अव्ययीभाव में जो अव्यय आते हैं उनके प्रायः होते हैं —

( १ ) किसी विभक्ति का अर्थ, यथा—अधि + हरि (हरि) = अति

( २ ) समीप का अर्थ यथा—उप + गङ्गा = उपगङ्गम् ।

( ३ ) समृद्धि का अर्थ, यथा—सु + मद्र ( मद्राणां समृद्धि ) = सुमद्रम् ।

( ४ ) व्यृद्धि ( नाश दरिद्रता ) का अर्थ यथा—दुर् + ( यवनानां व्यृद्धि ) = दुर्यवनम् ।

( ५ ) अभाव, यथा—निर् + मशक ( मशकानामभाव ) = निर्मशकम् ।

( ६ ) अत्यय ( नाश ) यथा—अति + हिम ( हिमस्यात्यय अतिहिमम् ) ।

( ७ ) असम्प्रति ( अनौचित्य ) यथा—अति + निद्रा ( निद्रा न युज्यते ) = अतिनिद्रम् ।

( ८ ) शब्द प्रादुर्भाव ( शब्द का प्रकाश ) यथा—इति + हरि ( शब्दस्य प्रकाश ) = इतिहरि ।

( ९ ) पश्चात्, यथा—अनु + विष्णु ( विष्णो पश्चात् ) = अनुविष्णु ।

( १० ) यथा का भाव ( योग्यता ) यथा—अनु + रूप ( रूपस्य यथा ) = अनुरूपम् ।

१ अव्यय विभक्तिममीपममृद्धिव्यृद्धयर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चादनुपूर्वयोगपक्षसादृश्यसम्प्रतिसाकल्यान्तवचनेषु । २।१।६ ॥

गुरु मया पूज्य  
या  
गुरु मम पूज्य } —गुरु जी मेरे पूज्य हैं ।

न यश्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि —मृत्यो को अपने स्वामियों  
का न डगाना चाहिए ।

अथ प्रश्न यह उठता है कि कैसे मालूम पड़े कि “ मम, मया तथा  
अनुजीविभि ” कर्ता हैं । उत्तर यह है कि ‘पूज्य’ तथा ‘यश्चनीया’ इत्यादि  
कृत्य प्रत्ययान्त क्रियाएँ हैं, उन्हें बदल कर इन वाक्यों को तिङन्त  
क्रियाओं द्वारा कर्तृवाच्य में प्रकट करना चाहिए जैसे —

गुरु मम पूज्य —अह गुरु पूजयेयम् ।

प्रभवोऽनुजीविभि न यश्चनीया —अनुजीविन प्रभून् न यश्चपेयु ।  
अब स्पष्ट है कि “ अह ” तथा “ अनुजीविन ” जो कि अर्थ  
कर्ता हैं, प्रथमा विभक्ति में आ गये हैं । कर्ता होने से ही ये कृत्य क्रियाओं  
के साथ तृतीया या पष्ठी में हो जाते हैं ।

( ६ ) पष्ठी चानादरे

जिसका अनादर या तिरस्कार करके बड़ा कार्य किया जाता है उसमें  
पष्ठी या मप्तमी होती है, जैसे—

परयतोऽपि राज्ञ द्विगुणमपहरन्ति धृता —गजा के देखते रहते भी  
धूर्त लोग दुगुना चुरा लेते हैं ।

रुदन पुत्रस्य वन प्रावाजीन्—रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह  
सन्धासी हो गया ।



॥ ( वीष्मा ) यथा—प्रति + अथ ( अर्थमर्थप्रति )  
=प्रत्यथम्

( अनतिक्रम ) यथा—यथा + शक्ति ( शक्तिमनति  
क्रम्य ) = यथाशक्ति ।

( सादृश्य ) यथा—सह + हरि ( हरे सादृश्यम् )  
=सहरि ।

( ११ ) आनुपूर्व्य ( अर्थात् क्रम ) यथा—अनु + ज्येष्ठ ( ज्येष्ठस्यानु  
पूर्वेण ) = अनुज्येष्ठम् ।

( १२ ) यौगपद्य ( एक साथ होना ) यथा—सह + चक्र ( चोरेण  
युगपत् ) = सचक्रम् ।

( १३ ) सादृश्य का उदाहरण ऊपर ( १० ) के अन्तर्गत आ चुका है ।

( १४ ) सम्पत्ति ( योग्यतानुसार सम्पत्ति को सम्पात्त कहते हैं,  
योग्यता से अधिक किसी देवता आदि के प्रसाद से प्राप्त  
हो तो उसे समृद्धि या श्रद्धि कहते हैं । इसी कारण ऊपर  
समृद्धि के आ चुकने पर भी यहाँ सम्पत्ति शब्द आया ) यथा  
सु + चरित्र्य ( चरित्राणां सम्पत्ति ) = सुचरित्र्यम् ।

( १५ ) माफ्य ( सब को शामिल कर लेना ) यथा—सह + नृणम्  
( नृणमपि अपरित्यज्य ) = सनृणम् ।

( १६ ) अन्त ( तक के अर्थ में ) सह + अग्नि ( अग्निप्रत्ययान्त-  
मधीते ) = साग्नि ।

निवारयतोऽपि पितु अध्ययन परित्यक्तवान्—पिता के मना करने  
भी उनका तिरस्कार करके उसने अध्ययन त्याग दिया।

द्वन्द्वहनजटाज्ज्वालजालाहतानाम्

परिगलितलताना म्लायतां भूखाणाम् ।

अयि जलधर शैलश्रेणिशृङ्गेषु तोय

वितरसि बहु कोऽय श्रीमदस्तावकीन ॥

ऐ बादल ! तेरा यह कैसा भारी गर्व है कि जंगल की घात  
ज्वालाओं से भस्म हो गए हुए, गलित लताओं वाले, मुरझाते हुए  
का अनादर करके तु पर्वतों के शिखरों पर तमाम पानी देता है ।

यहाँ पर ' वृक्षों का ' अनादर किया गया है, इसलिये "भूखाण  
में पड़ी है ।

## सप्तम सोपान

### समास विचार

११३—( क ) छोटे सोपान में विभक्तियों का प्रयोग  
गया है । किन्तु कहीं कहीं शब्दों की विभक्तियों का लोप  
शब्द छोटे कर लिए जाते हैं । यह तब सम्भव होता है जब दो  
शब्दों से अधिक शब्द एक साथ जोड़ दिए जाते हैं । इस  
जोड़ने को ही मोटे ढंग से ' समास ' कहते हैं ।

## ११६-तत्पुरुष समास

( क ) तत्पुरुष उस समास को कहते हैं जिसमें प्रथम शब्द द्वितीय शब्द के विशेषण का कार्य करे, जैसे—

राज्ञ पुरुष = राजपुरुष ।

यहाँ "राज्ञ" एक प्रकार से "पुरुष" का विशेषण है, अथवा  
कृष्ण सर्प = कृष्णसर्प ।

यहाँ "कृष्ण" शब्द "सर्प" शब्द का विशेषण है ।

( रा ) तत्पुरुष शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) तत्पुरुष = तत्पुरुष, (२) स पुरुष = तत्पुरुष । इन दो अर्थों के अनुसार ही तत्पुरुष समास के दो मुख्य भेद हैं (१) जिसमें समास का प्रथम शब्द किसी दूसरी विभक्ति में हो अथवा व्यधिकरण, (२) जिसमें प्रथम शब्द की विभक्ति और दूसरे शब्द की विभक्ति एक ही हो अथवा समानाधिकरण । ऊपर के उदाहरणों में "राजपुरुष" व्यधिकरण तत्पुरुष का उदाहरण है और "कृष्णसर्प" समानाधिकरण का ।

## ११७-( क ) व्यधिकरण तत्पुरुष समास—

व्यधिकरण तत्पुरुष समास के छ भेद होते हैं—

( १ ) द्वितीया तत्पुरुष

( २ ) तृतीया तत्पुरुष

( ३ ) चतुर्थी तत्पुरुष

( ४ ) पञ्चमी तत्पुरुष

समास 'शब्द सम् (भली प्रकार) उपसर्ग लगा कर अस् (हना) धातु से बना है और इसका प्रायः वही अर्थ है जो 'शब्द' का, अर्थात् दो या अधिक शब्दों को इस प्रकार रख देना कि उनके आकार में कुछ कमी भी हो जाए और भी पूर्ण विदित हो। जैसे —

सभाया पति = सभापति ।

यहाँ 'सभापति' का वही अर्थ है जो 'सभाया पति' का, किन्तु 'सभाया' को साथ कर देने से "सभाया" शब्द में विभक्तिसूचक प्रत्यय (-या) का लोप हो गया और इस कारण शब्द 'सभापति' = 'सभाया पति' से जोड़ा हो गया।

जैसे दो शब्दों को जोड़ कर समास करते हैं, वैसे दो या अधिक समास (समस्त शब्द) भी जोड़े जा सकते हैं जैसे—

राज्ञः पुरुषः = राजपुरुष, धनस्य धर्ता = धनधर्ता, इस प्रकार 'समस्त शब्द' हुए, अब यदि ये दोनों जोड़ दिए जायें तो 'राज्ञः पुरुषस्य धनधर्ता =) "राज्ञः पुरुषधनधर्ता" यह एक समस्त शब्द बना। इस प्रकार कितने ही शब्दों को जोड़ कर लम्बे समास बनाये जा सकते हैं। संस्कृत साहित्य में किसी ग्रन्थ में ऐसे २ समास हैं जो कई पक्तियों के हैं। इनका अर्थ निकालना कठिन हो जाता है और इसी से ग्रन्थ जटिल हो जाता है।

(२) किसी समस्त शब्द को तोड़ कर उसका पूर्वकाल का रूप दे देना "विग्रह" कहलाता है। विग्रह का अर्थ है—टुकड़े करना, समस्त शब्द को टुकड़े करके ही पूर्ण रूप दिखाया जा

(४) पष्ठो तत्पुरुष

(६) सप्तमी तत्पुरुष ।

यदि समास का प्रथम शब्द द्वितीया विभक्ति में रहा हो तो यह “द्वितीया तत्पुरुष” होगा । इसी प्रकार जिस विभक्ति में प्रथम शब्द रहेगा उसी के नाम पर इस समास का नाम होगा ।

सात विभक्तियों में केवल प्रथमा विभक्ति शेष रही, यदि प्रथम शब्द प्रथमा विभक्ति में रहे तो व्यधिकरण तत्पुरुष हो ही नहीं सकता, समानाधिकरण होजायगा । इस कारण ये छ ही भेद व्यधिकरण के होते हैं ।

(ए) द्वितीया तत्पुरुष—यह समास थोड़े में ही शब्दों में होता है । मुख्य ये हैं ।

द्वितीया जब श्रित अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न इन शब्दों के संयोग में आती है तब द्वितीया तत्पुरुष समास होता है, यथा—

कृष्ण श्रित = कृष्णश्रित

दुःखमतीत = दुःखातीत

अग्नि पतित = अग्निपतित

प्रलय गत = प्रलयगत

मेघम् अत्यस्त = मेघात्यस्त

जीवन प्राप्त = जीवनप्राप्त

१ द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नै । २।१।२४



क'टम् आपन्न = क'टापन्न', इत्यादि

आपन्न और प्राप्त शब्द के साथ दोनों शब्दों का इच्छानुसार नाम भी बदल सकते हैं, जैसे—प्राप्तजीवन और आपन्नकष्ट'।

( ग ) तृतीया तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति में हो तब उसे तृतीया तत्पुरुष कहते हैं। यह समास अधिकतर इन दशाओं में होना है —

( १ ) जब तृतीयान्त कर्ता या करण कारक हो और साथ वाला शब्द कृदन्त प्रत्यय वाला हो, यथा —

हरिणा त्रात = हरित्रात ( इस उदाहरण में “हरिणा” तृतीयान्त है और कर्ता है, और “त्रात” में “क्त” प्रत्यय है जो कृदन्त है ) ।

नखैर्मिन्न = नखमिन्न ( यहाँ “नखै” तृतीयान्त और करण है और “मिन्न” में क्त प्रत्यय है जो कृदन्त है ) ।

( २ ) जब तृतीयान्त शब्द के साथ ‘पूर्व’, सद्गुण, सम, ऊन, शब्दों में से कोई आवे अथवा ऊन (कम), कलह (लड़ाई), निपुण (चतुर), मिश्र (मिला हुआ), श्लक्ष्ण (चिकना) शब्दों में से कोई आवे अथवा इनके समान अर्थ रखने वालों में से कोई शब्द आवे यथा—

१ कर्तृकरणे कृता बहुलम्

२ पूर्वसदृशसमोनार्थकजहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णौ । २।१।३१

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाह मद्देहे नित्यमव्ययीभाव ।

तत्पुरुष कर्मप्रारय येनाह स्यान्बहुव्रीहि ॥

यह किसी याचक की किसी दाता से प्रार्थना है— ' मैं द्वन्द्व हूँ, अर्थात् मैं दो हूँ ( मैं और मेरी स्त्री ), मैं द्विगु भी हूँ, अर्थात् मेरे दो गाण भी हैं, मेरे घर में नित्य अव्ययीभाव रहता है, अर्थात् मेरे घर कभी कुछ खर्च नहीं होता ( क्योंकि द्रव्य करने को द्रव्य ही नहीं ) । इस लिये ह पुरुष, वह काम करो जिससे मैं बहुव्रीहि हो जाऊँ अर्थात् मेरे घर में बहुत सा धान्य हो जाय ।

( ल ) समास के चार भेद समास में आप्रत्यय दोनों शब्दों की प्रधानता अव्ययीभाव प्रधानता पर किए गए हैं । अव्ययीभाव समास में समास का प्रथम शब्द प्रायः प्रधान रहता है, तत्पुरुष में प्रायः दूसरा, द्वन्द्व में प्रायः दोनों प्रधान रहते हैं और बहुव्रीहि में दोनों में से एक भी प्रधान नहीं रहता दोनों मिल कर एक तीसरे शब्द के ही विशेषण होते हैं ।

११५—अव्ययीभाव समास—

( क ) ' अव्ययीभाव ' शब्द का यौगिक अर्थ है—जो अव्यय नहीं था उसका अव्यय हो जाना । यह अर्थ ही इस समास की एक प्रकार से कुंजी है । अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद रहते हैं—इनमें से प्रथम प्रायः अव्यय रहता है और दूसरा सज्ञा शब्द । दोनों मिलकर अव्यय हो जाते हैं । किसी अव्ययीभाव शब्द के रूप नहीं चलते । अन्तिम शब्द का नपुंसक लिङ्ग के एक



मामेन पूर्ध्व = मासपूर्ध्व, मात्रा सदृश = मातृसदृश, पित्रा  
 नाम = पितृसम, धान्येन ऊन = धान्येनानम्, धान्येन विकलम् =  
 धान्यविकलम्, घावा कलह = घावकलह, घावा युद्ध = घाग्युद्ध,  
 आचारेण निपुण = आचारनिपुण, आचारेण कुशला = आचार-  
 कुशल, गुडेन मिश्र = गुडमिश्रम्, गुडेन युक्त = गुडयुक्तम्, अर्पणेन  
 श्लक्ष्ण = अर्पणश्लक्ष्णम्, कुट्टनेन श्लक्ष्ण = कुट्टनश्लक्ष्णम् ।

(घ) चतुर्थी तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द  
 चतुर्थी विभक्ति में रहे तब उसे चतुर्थी तत्पुरुष कहते हैं । मुख्य  
 तथा यह तब होता है जब कोई वस्तु ( जो किसी से बनी हो या  
 बनती हो ) चतुर्थी में आवे और जिससे यह बनी हो वह उसके  
 अनन्तर आवे, जैसे —

यूपाय दारु = यूपदारु, कुम्भाय मृत्तिका = कुम्भमृत्तिका ।

(च) पञ्चमी तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द  
 पञ्चमी विभक्ति में आवे तब उस तत्पुरुष समास को पञ्चमी तत्पुरुष  
 कहते हैं । मुख्यरूप से यह समास तब होता है जब पञ्चम्यत  
 शब्द ' भय, भीत, भीति और भी ' के साथ आवे, जैसे —

चौराद् भय = चौरभय, स्तेनाद् भीत = स्तेनभीत, वृकाद्  
 भीति = वृकभीति, अयशोभी, इत्यादि ।

(छ) षष्ठी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं जिसमें प्रथम शब्द

सकता है, इस लिए वह विग्रह है। उदाहरणार्थ, 'धनवार्ता' का विग्रह 'धनस्य वार्ता' हुआ।

किन शब्दों को कैसे और किन के साथ जोड़ सकते हैं इसके सूत्र से भी सूत्रम नियम सस्कृत—व्याकरणकारों ने नियत कर रखे हैं। ऐसा नहीं है कि जिस शब्द को जब चाहा तब दूसरे के साथ जोड़ दिया। उदाहरणार्थ —

'रघुषण का लेखक कालिदास प्रसिद्ध कवि था'—इस वाक्य का अनुवाद हुआ 'रघुषणस्य लेखक कालिदास प्रसिद्ध कवि आसीत्'। इस सस्कृत वाक्य में यदि समास करें तो इस प्रकार होगा 'रघुषणलेखककालिदास प्रसिद्धकवि आसीत्' "कवि" और "आसीत्" में समास नहीं हुआ, "कालिदास" और "प्रसिद्ध" में नहीं हुआ।

कब किन वशाब्दों में समास हो सकता है, इसके मुख्य मुख्य नियम इस सोपान में दिए जाएंगे।

११४—(क) समास के मुख्य चार भेद हैं—

(१) अव्ययीभाव

(२) तत्पुरुष *कर्म-वाचक-वा* द्विगु

(३) द्वन्द्व—और

(४) बहुव्रीहि।

तत्पुरुष के अन्तर्गत दो प्रसिद्ध समास हैं—(१) कर्मधारय और (२) द्विगु, इस लिए कभी कभी समास के छ भेद बताए हैं। इन छ भेदों के नाम इस श्लोक में आते हैं —

पष्ठी विभक्ति में हो । यह समास प्रायः सभी पष्ठ्यन्त शब्दों के साथ होता है ।

इसके कुछ अपवाद हैं उनमें से मुख्य २ यहाँ दिये जाते हैं —

( १ ) जब पष्ठी वृच् प्रत्यय में अन्त होने वाले ( कर्ता, धर्ता, सृष्टा आदि ) शब्दों के साथ अथवा अक प्रत्यय में अन्त होने वाले ( पाचक, याचक, सेवक आदि ) शब्दों के साथ आवे, जैसे—

घटस्य कर्ता, जगत सृष्टा, धनस्य हर्ता, अन्नस्य पाचक ।

( २ ) निर्धारण ( किसी वस्तु की दूसरों से विशिष्टता दिखाने ) अर्थ में प्रयोग में आई हुई पष्ठी का समास नहीं होता, जैसे—

नृणां द्विज श्रेष्ठ, गयां ऋष्या बहुचरा—इत्यादि में समास नहीं होगा ।

किन्तु यदि तरप् प्रत्यय में अन्त होने वाले गुणवाची शब्द के साथ पष्ठी आवे तो वहाँ समास हो जायगा और साथ ही साथ तरप् प्रत्यय का लोप भी हो जायगा, जैसे—

सर्वेषां श्वेततर = सर्वश्वेत । सर्वेषां महत्तर = सर्वमहान् ।

१ पष्ठी । २ । २ । २ । २ ।

२ वृजकाम्या कर्तरि । २ । २ । १ । २ ।

३ न निर्धारणे । २ । २ । १ । ० ।

४ गुणात्तरेण तरलोपरचेति वक्तव्यम् ।

इन्द्रो द्विगुरपि चाह मदेहे नित्यमव्ययीभाव ।

तत्पुरुष कर्मप्रारय येनाह म्याम्बुह्रीहि ॥

यह किसी याचक की किसी नाता से प्रार्थना है— ' मैं इन्द्र हूँ, अर्थात् मैं ने हूँ ( मैं और मेरी स्त्री ), मैं द्विगु भी हूँ, अर्थात् मेरे ने गाण भी हूँ, मर घर में नित्य अव्ययीभाव रहता है, अर्थात् मेरे घर कभी कुछ खर्च नहीं होता ( क्यों कि खर्च करने को द्रव्य ही नहीं ) । इस लिये १ पुरुष, वह काम करा जिससे मैं बह्वुह्रीहि हो जाऊँ अर्थात् मेरे घर में बहुत सा वाय हो जाय ।

( ख ) समास के चार भेद समास में प्रायः दोनो शब्दों की प्रधानता अथवा अप्रधानता पर किए गए हैं । अव्ययीभाव समास समास का प्रथम शब्द प्रायः प्रधान रहता है, तत्पुरुष म प्रायः सहायक में प्रायः दोनो प्रधान रहते हैं और बह्वुह्रीहि में दोनो में से एक भी प्रधान नहीं रहता दोनों मिल कर एक तीसरे शब्द की विशेषण होते हैं ।

### ११५—अव्ययीभाव समास—

( क ) ' अव्ययीभाव ' शब्द का यौगिक अर्थ है—जो अव्यय नहीं था उसका अव्यय हो जाना । यह अर्थ ही इस समास की एक प्रकार से कुजी है । अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद रहते हैं—इनमें से प्रथम प्रायः अव्यय रहता है और दूसरा समास शब्द । दोनो मिलकर अव्यय हो जाते हैं । किसी शब्द के रूप नहीं चलते । अन्तिम शब्द का नपुंसक लिंग

(न) सप्तमी तत्पुरुष समास उमे कहने हैं निम्न पाम  
पद सप्तमी विभक्ति में रहा हो। यह समास भी विशेष दशाओं  
में हो होता है। एक आध ये हैं —

(१) जब सप्तम्यन्त शब्द शौण्ड (चतुर), धूर्त, कितव  
(गठ), प्रवीण, सवीत (भूषित), अन्तर, अधि, पट्ट, परिडत,  
कुशल, वपल, निपुण, सिद्ध, शुष्क, पक और बन्ध इन शब्दों में से  
किसी के साथ आवे, जैसे —

अक्षेपु शौण्ड = अक्षशौण्ड, प्रेम्णि धूर्त = प्रेमधूर्त, द्यूते  
कितव = द्यूतकितव, सभायां परिडत = सभापरिडत, आतपे  
शुष्क = आतपशुष्क, कटाहे पक = कटाहपक, ईश्वरे अधीन =  
इश्वराधीन ।

(२) जब घ्वाङ्त्त (कौआ) शब्द अथवा इसके समान अर्थ  
रखने वाले शब्दों के साथ, निन्दा करने के लिए सप्तमी आवे,  
जैसे —

तीर्थे घ्वाङ्त्त = तीर्थघ्वाङ्त्त, आद्वे काक = आद्वकाक इत्यादि

१ सप्तमी शौण्ड ॥२॥१४०॥

२ सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ॥२॥१४१॥

३ घ्वाङ्त्तेण चेपे ॥२॥१४२॥

वचन में जैसा रूप होता है वही रूप अव्ययीभाव समास का पड़ा जाता है और वही नित्य रहता है। उदाहरणार्थ —

यथा काम ( काममनतिक्रम्य इति ) यथाकामम्—जितनी इच्छा हो उतना।

“ यथाकामम् ” में दो शब्द आए—( १ ) यथा और ( २ ) काम, इनमें यथा शब्द प्रधान है, दोनों मिल कर एक अव्यय हुए—( यथाकाम के रूप नहीं चलेंगे ) और अन्तिम शब्द ‘ काम ’ ने पुलिङ्ग होते हुए भी वह रूप धारण किया जो वह तब धारण करता जब नपुंसकलिङ्ग के एकवचन में होता, इसी प्रकार यथा शक्ति ( जितनी सामर्थ्य हो उतना ), अन्तर्गिरि ( पहाड़ के अन्दर ), उपगङ्गम् ( गङ्गाया समीपे ), प्रत्यहम् ( अह अह ), सवाप्पम् ( वाप्पै सह ) इत्यादि।

( ख ) अव्ययीभाव समास बनाते समय इन नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

( १ ) दूसरे शब्द का अन्तिम वर्ण यदि दीर्घ रहे तो ह्रस्व कट दिया जाता है। यदि अन्त में “ ए ” अथवा “ ऐ ” हो तो उसके स्थान में “ इ ” और यदि “ ओ ” अथवा “ औ ” हो तो उसके स्थान में “ उ ” हो जाता है, जैसे—

उप + गङ्गा ( गङ्गाया समीपे ) = उपगङ्ग ( और इसको नपुं एकवचन में नित्य रखते हैं इस लिए ) = उपगङ्गम्।

उप + नदी ( नद्या समीपे ) = उपनदि।

## समानाधिकरण तत्पुरुष समास

११८—(क) समानाधिकरण का अर्थ है ऐसी वस्तुएँ जिनका अधिकरण समान अर्थात् एक हो, जैसे—यदि गोविन्द और श्याम एक ही आसन पर बैठे हों तो वह आसन उन दोनों का समानाधिकरण हुआ, किन्तु, यदि दोनों अलग २ आसनों पर बैठे हों तो अलग २ अधिकरण हुआ, अर्थात् “व्यधिकरण” हुआ इसी प्रकार यदि एक ही समय में दो मनुष्य उपस्थित हों उनकी उपस्थिति समानाधिकरण हुई और यदि भिन्न २ समयों में उपस्थिति व्यधिकरण हुई। इसी प्रकार शब्दों के विषय में जैसे—

राह + पुरुष—इसमें यह आवश्यक नहीं कि राजा उसका पुरुष दोनों एक स्थान और एक समय में हों, इस समानाधिकरण नहीं है, किन्तु कृष्ण + सर्प—यहाँ काल के साथ २ है, जहाँ जहाँ वह साँप जिस २ समय में रहेगा भी उसके साथ २ रहेगा, नहीं तो उसको कृष्ण सर्प कहेंगे, इसलिए इस उदाहरण में समानाधिकरण है।

(ख) तत्पुरुष समास का लक्षण ऊपर बना ऐसा समास जिसका प्रथम शब्द दूसरे का विशेषण है, ऐसा तत्पुरुष समास जिस में (समान में आए हुए

का समानाधिकरण श्रेष्ठ, समानाधिकरण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय तत्पुरुष कहलाना है। कर्मधारय समाम की जिया समाम के दोनों शब्दों को धारण करती है, इसलिये यह नाम पड़ा है जैसे—  
‘दृष्ट्वा सर्पं अपसर्पति’ इस वाक्य में सर्प जब क्रिया करता है तो दृष्ट्वा उसके साथ साथ रहना है। “राज्ञः पुरः अपसर्पति” में राजा पुरुष के साथ नहीं है।

(ग) व्यधिकरण तत्पुरुष और समानाधिकरण तत्पुरुष में मोटे तौर से यह भेद है कि पहले में समास का प्रथम शब्द प्रथमा की छोट कर और किसी विभक्ति में होता है, दूसरे में प्रथमा में होता है।

(घ) कर्मधारय समास में प्रथम शब्द या तो द्वितीय का विशेषण होना चाहिए और द्वितीय शब्द सज्ञा होना चाहिए, अथवा दोनों सज्ञा हों किन्तु प्रथम विशेषण स्थानीय हों, अथवा दोनों विशेषण हों जिसमें समय पड़ने पर किसी तीसरे शब्द का प्रयुक्त विशेषण रहे। नीचे कई प्रकार के कर्मधारय समाम दिए जाते हैं।

११९—(क) जब प्रथम शब्द विशेषण हों और दूसरा विशेष्य तो उस कर्मधारय समास को ‘विशेषणपूर्वपद कर्मधारय’ कहते हैं, जैसे—



रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ ।

यदि दोनों मिलकर दो हो तो द्विवचन में समास रहता जाता और यदि दो से अधिक हो तो बहुवचन में ।

इस समास का जो अन्तिम शब्द होता है, उसी के अनुसार पूरे समास का लिङ्ग होता है, जैसे —

रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ ।

रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च = रामलक्ष्मणभरता ।

रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्च = रामलक्ष्मणभरत-  
शत्रुघ्ना ।

मयूरी च कुकुटश्च = मयूरीकुकुटौ ।

कुकुटश्च मयूरी च = कुकुटमयूर्यौ ।

(ख) समाहार द्वन्द्व

जब समास में ऐसी सहाय्य आधे जो 'च' से जुड़ी हुई होने पर अपना अर्थ बतलाती हैं और साथ ही साथ एक समाहार (समूह) का भी बोध कराती हैं तब वह समाहार द्वन्द्व कहलाता है । इस समास को सदा नपुंसकलिङ्ग एक वचन में ही रखते हैं । उदाहरणार्थ ।

आहारश्च निद्रा च भयञ्च = आहारनिद्राभयम् ।

इस समाहार में आहार, निद्रा और भय का अर्थ है और साथ ही साथ जीवों के लक्षण का भी बोध होता है जीवों में

( १ ) ' कु ' जन्द् का अर्थ जब ' खराब, बुरा ' होता है तब इस जन्द् का समास किसी सजा से होकर पूरा कर्मधारय समास हो जाता है, जैसे—

कुत्सित पुरुष = कुपुरुष, कुत्सित देव = कुदेव, कुत्सित पुत्र = कुपुत्र, कुगेहिनी, कुशिष्य । कहीं २ ' कु ' का अन्त ' कन् ' हो जाता है, जैसे—

कुत्सित अन्न = कदन्न । और कहीं का हो जाता है, जैसे—  
कुत्सित पुरुष = कापुरुष । कृष्ण सर्प = कृष्णसर्प । नीलमुत्पल = नीलोत्पलम् । रक्त कमल = रक्तकमल । दीर्घ नयन = दीर्घनयनम् ।

( २ ) जब किसी वस्तु में उपमा दी जाए तो वह वस्तु जिससे उपमा दी जाए और वह गुण जिसकी उपमा हो, मिल कर कर्मधारय समास होंगे और इस समास का नाम ' उपमानपूर्व पठ कर्मधारय ' होगा । जैसे—

घन इव श्याम = घनश्याम ।

चन्द्र इव आह्लादक = चन्द्राह्लादक ।

प्रथम उदाहरण में किसी वस्तु की बादल से उपमा दी गई और यह बतलाया गया है कि वह वस्तु ऐसी श्याम है जैसे बादल । यहाँ ' बादल ' उपमान और ' श्याम ' सामान्य गुण है इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में चन्द्र उपमान और आह्लादक

खाना, पीना, सोना और डर येही मुख्य बातें होती हैं। इस प्रकार —

पाणी च पादौ च = पाणिपादम् (हाथ और पैर के साथ २ अङ्ग मात्र का भी बोध होता है) ।

अहिनकुलम् ( साँप और नेवले के साथ साथ, ये दोनों जन्म बैरी हैं यह भी बोध होता है ) ।

समाहार द्वन्द्व बहुधा उन दशाङ्गों में होता है जहाँ उस में आपस में शब्द मनुष्य अथवा पशु के—

( १ ) शरीर के अङ्ग हों—जैसे पाणिपादम् ।

( २ ) सेना के अङ्ग हों—अश्वारोहारच पदातयरच = अश्वारोहार पदाति ( घुड़सवार और पैदल ) ।

( ३ ) गाने बजाने वाले हों—मार्दङ्गिकारच पाणविकारच = मार्दङ्गिक पाणविक ( मृदङ्ग और पणव बजाने वाले ) ।

( ४ ) अचेतन पदार्थ हों ( द्रव्य हों गुण नहीं )—गोधूमरच धणुकरच = गोधूमचणक ।

( ५ ) नदियों के भिन्न लिङ्ग के नाम हों—गङ्गा च शोणरच = गङ्गा - शोण, ( किन्तु गङ्गा च यमुना च = गङ्गायमुने होगा, क्योंकि ये एक ही लिङ्ग के हैं ) ।

१ द्वन्द्वरच प्राणितुर्यसेनाङ्गनाम् । २।४२। जातिरप्राणिनाम् । २।४३। विशिष्ट लिङ्गो नदीदेशोऽग्रामा । २।४।७। येषां च विरोधः शाश्वतिकः । २।४।६।

सामान्य गुण है। इस समास में उपमान प्रथम आता है, इसी लिये  
इसको 'उपमानप्रथमपद' कहते हैं।

(ग) जब जिस वस्तु की उपमा दी जाए और वह वस्तु  
जिससे उपमा दी जाए दोनों साथ २ आचं तब उस कर्मधारय  
समास को 'उपमानोत्तरपद कर्मधारय' कहते हैं, क्योंकि यहाँ  
उपमान प्रथम शब्द न होकर द्वितीय होता है, जैसे—

मुख कमलमिथ = मुखकमलम् ।

पुरुष व्याघ्र इव = पुरुषव्याघ्र ।

नोट—(ग) के अन्तर्गत समासों में वह गुण प्रकट कर दिया गया  
निसके कारण उपमा होती है, यहाँ (ग) के अन्तर्गत समासों में वह  
प्रकट नहीं किया जाता; केवल यह बताया जाता है कि उपमेय और  
मान समान हैं।

मुखकमलम्, पुरुषव्याघ्र आदि इन श्रेणी के समासों का दो  
तार से विग्रह कर सकते हैं।

(१) मुखमेव कमलम् और पुरुष एव व्याघ्र, और—

(२) मुख कमलमिथ और पुरुष व्याघ्र इव ।

पहले को उपमितसमास कहेंगे, क्योंकि इस में उपमा है और  
दूसरे को रूपकसमास, क्योंकि दोनों को एक के ऊपर दूसरे को  
आरोप कर दिया है।

( १ ) देशों के नाम भिन्न लिङ्गों में हों तो इनके साथ नगर के  
नामों का भी समास हो सकता है, किन्तु ग्रामों का नहीं ।

कुम्भरश्च कुरुक्षेत्रश्च = कुरुक्षेत्रम् ।

मथुरा च पाटलिपुत्रश्च = मथुरापाटलिपुत्रम् आदि ।

( ७ ) कुछ जीव हों तो—यूका च लिङ्गा च = यूकालिङ्गम् ( शुण्  
भीर जीवों ) ।

( ८ ) जन्मघैरी जीव हों तो—सर्पश्च नकुलश्च = सर्पनकुलम्,  
मूषश्च मार्जारश्च = मूषकमार्जारम् ।

( ग ) एकशेष द्वन्द्व

जब दो या अधिक शब्दों में से द्वन्द्व समास में केवल एक ही  
शेष रह जाए, तब उसको एकशेष द्वन्द्व कहते हैं, जैसे —

माता च पिता च = पितरौ ।

श्वश्रूश्च श्वशुरश्च = श्वशुरौ ।

एकशेष द्वन्द्व में केवल समान रूप वाले शब्द ( जैसे चटका,  
चटका, मयूर, मयूरी, माता, पिता, भ्राता, स्वसा आदि ) अथवा  
समान अर्थ रखने वाले विलुप्त शब्द ही आ सकते हैं । समास का  
बचन समास के अङ्गभूत शब्दों की संख्या के अनुसार होगा । यदि  
समास में पुलिङ्ग शब्द तथा खीलिङ्ग शब्द दोनों मिले हो तो  
समास पुलिङ्ग में रहेगा । उदाहरणार्थ —

१ सरूपाणाम् । विरूपाणामपि समर्थानाम् ।

( घ ) दो समानाधिकरण विशेषणों के समान को 'विशेषणाभयपद कर्मधारय' कहते हैं, जैसे—

रुष्णाश्च श्वेतश्च = रुष्णाश्वेत ( अश्व ) ।

इसी प्रकार दो क प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द जो पस्तु विशेषण ही होते हैं इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं, जैसे—

स्नातश्च अनुलिप्तश्च = स्नातानुलिप्त ।

दो विशेषणों में से एक दूसरे का प्रतिवादी भी हो सकता है, जैसे—

चरञ्च अचरञ्च = चराचर ( जगत् ) । कृतञ्च अकृतञ्च  
कृताकृत ( कर्म ) ।

१२०—जब कर्मधारय समास में प्रथम शब्द सख्यावाची और दूसरा कोई सज्ञा, तो उस समास को 'द्विगु समास' कहते हैं ।

'द्विगु' शब्द में स्वयं प्रथम—द्वि—सख्यावाची है और दूसरा गु ( गो )—सज्ञा है । द्विगु समास तभी होता है जब या उसके अनन्तर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो, जैसे—

पप् + मातृ = परमातृ + अ ( तद्धित प्रत्यय ) = परामातृ  
( पराणा मातृणामपत्य ) ,

सरूप—ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च=ब्राह्मणौ ।

शूद्रो च शूद्रश्च=शूद्रौ । अजश्च अजा च=अजौ । चटका च=चटको ।

गार्गो च गार्ग्यायणौ च=गार्ग्यौ ।

विरूप—भ्राता च स्वसा च=भ्रातरौ । पुत्रश्च दुहिता च=पुत्रौ

श्च श्वश्च श्वशुरश्च=श्चशुरौ ।

१२३—द्वन्द्व समास करते समय नीचे लिखे नियमों का पालन करना चाहिये —

( १ ) इकारान्त अथवा उकारान्त शब्द प्रथम रखना चाहिये जैसे —

हरश्च हरिश्च=हरिहरौ ।

यदि कई इकारान्त व उकारान्त हों तो एक को प्रथम रखना चाहिये, बाकी वचे हुएओं को चाहे जहाँ रख सकते हैं, जैसे—

हरिश्च हंश्च गुहश्च=हरिहरगुरुष ।

( २ ) स्वर से आरम्भ होने वाले और 'अ' से अन्त होने वाले शब्द प्रथम आने चाहिये, जैसे —

इन्द्रश्च अग्निश्च=इन्द्राग्नी ।

ईश्वरश्च प्रवृत्तिश्च=ईश्वरप्रवृत्ती ।

या उसको किसी और शब्द के साथ समास में आना हो, जैसे—

पञ्चगाव धन यस्य स = पञ्चगवधन ।

यहाँ 'पञ्चगव' यह द्विगु समास न बनता यदि उसको 'धन' के साथ फिर समास में न आना होता ।

या द्विगु समास किसी समूह (समाहार) का द्योतक हो । इस दशा में वह तत्पुरुषकलिङ्ग एकवचन में सदा रहेगा, जैसे—

पञ्चाना गवा समाहार = पञ्चगवम् ।

पञ्चाना ग्रामाणा समाहार = पञ्चग्रामम् ।

पञ्चाना पात्राणाम् समाहार = पञ्चपात्रम् ।

त्रयाणा भुवनानां समाहार = त्रिभुवनम्, इत्यादि ।

### १२१—अन्यतत्पुरुष समास

ऊपर तत्पुरुष समास के जो मुख्य दो भेद व्यधिरूप और तमानाधिकरण हैं उनका विचार किया गया है । यहाँ कुछ ऐसे तत्पुरुष समासों का विचार किया जाएगा जिनमें वस्तुतः तत्पुरुष होते हुए भी कुछ हेर फेर रहता है ।



(३) षणों के तथा भाइयों के नाम ज्येष्ठ के क्रम से आने चाहिए, जैसे —

ग्राह्यश्च क्षत्रियश्च = ग्राह्यक्षत्रियो ( क्षत्रियग्राह्यो नहीं )  
 लक्ष्मणश्च = लक्ष्मणगो ( लक्ष्मणगो नहीं ) ।

(४) जिस शब्द में कम अक्षर हों वह पहिल आना चाहिए  
 जैसे =

शिवश्च केशवश्च = शिवकेशवौ ( केशवशिवौ नहीं, क्योंकि  
 शिव में दो अक्षर हैं केशव में तीन ) ।

### बहुव्रीहि समास

१२४—(क) जब समास में आये हुए दोनो ( या अधिक  
 हो ता सब ) शब्द किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप रहते हैं  
 तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं । बहुव्रीहि शब्द का योगिक  
 अर्थ है—बहु व्रीहि ( वान्य ) यस्य अस्ति स बहुव्रीहि ( जिसके  
 पास बहुत चापल हों ) । इसमें दो शब्द हैं—“बहु” और “व्रीहि” ।  
 प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण है और दोनो मिल कर किसी

१ षणानामाणुर्लक्ष्य । आतुर्लक्ष्यस्य ( धात्विक ) ।

२ अनेकमन्यपदार्थ । १२।२।२४। अनेक प्रथमा तमन्यस्य पदस्तार्थं वा

मान वा समस्यते स बहुव्रीहि ।

## ( क ) नञ् तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'न' रहे और दूसरा कोई सत्वा या विशेषण रहे तो उसे यह नाम दिया जाता है। यह 'न' व्यञ्जन के पूर्व 'अ' में और स्वर के पूर्व 'अन्' में बदल जाता है; यथा—

न ब्राह्मण = अभ्राह्मण ( ऐसा मनुष्य जो ब्राह्मण न हो ), न गर्दभ = अगर्दभ ( ऐसा जानवर जो गद्गहा न हो ), न अञ्ज = अनञ्ज ( जो कमल न हो ), न सत्य = असत्य, न चर = अचर, न कृत = अकृत, न आगत = अनागत ।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'न' शब्द भी एक प्रकार से विशेषण का कार्य करता है, इसलिए तत्पुरुष का मुख्य भाग कि समास का प्रथम शब्द विशेषण अथवा विशेषणस्थानीय होना चाहिए विद्यमान है ।

## ( ख ) प्रादि तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'प्र' आदि उपसर्गों ( इनका व्याख्यान 'अव्यय विचार' में आगे देखिए ) में से कोई हो तब उसे प्रादि तत्पुरुष कहते हैं । इन प्र आदि उपसर्गों से विशेष विशेषणों का अर्थ निकलता है । इसीलिए यह एक प्रकार से कर्मधारय समास है ।

उदाहरणार्थ—

प्रगत ( बहुत विद्वान् ) आचार्य = प्राचार्य ,

प्रगत ( धृष्ट ) पितामह = प्रपितामह ;

तीसरे के विशेषण हैं, इसी लिए इस प्रकार के समासों का नाम बहुव्रीहि पड़ा।

(ख) बहुव्रीहि और तत्पुरुष में यह भेद है कि तत्पुरुष में प्रथम शब्द द्वितीय शब्द का विशेषण होता है, जैसे—

पीतम् अम्बर = पीताम्बरम् ( पीला कपड़ा )—कर्मधारय तत्पुरुष ।

बहुव्रीहि में इसके अतिरिक्त यह होता है कि दोनों मिलकर किसी तीसरे शब्द के विशेषण होते हैं, जैसे—

पीताम्बर—पीतम् अम्बर यस्य स ( जिसका कपड़ा पीला हो = श्रीकृष्ण ) ।

इस प्रकार एक ही समास प्रकरण की आवश्यकतानुसार तत्पुरुष या बहुव्रीहि हो सकता है। इसके उदाहरण दो लिए एक मनोरञ्जक व्याख्यायिका है।

एक धार एक याचक फटे फटाए कपड़े पहने किसी राजा के निकट जाकर बोला —

‘अहज्य त्वञ्च राजेन्द्र, लोकनाथापुमापि’ । ( हे राजश्रेष्ठ ! मैं भी लोकनाथ हूँ और आप भी, अर्थात् हम दोनों लोकनाथ हैं ) ।

याचक की यह उक्ति सुनकर सभा में राजकर्मचारी उसकी घृष्टता पर विगड़ कर कहने लगे—देखो, इस पागल को क्या सूझा कि हमारे महाराज की बराबरी करने चला है, निकालो इसका। अन्य तब याचक श्लोक का दूसरा अंश भी बोल उठा—

प्रतिगत ( सामने आया हुआ ) अच ( इन्द्रिय ) = प्रत्यक्ष ,  
 उद्गत ( ऊपर पहुँचा हुआ ) वेला ( किनारा ) = उद्देश ,  
 अतिक्रान्त मर्यादां = अतिक्रान्तमर्याद ( जिसन हद्द पार कर दी हो ),  
 अतिक्रान्त रथ = अतिरथ ( ऐसा घोड़ा जो बहुत बलवान् हो ),  
 अवकृष्ट कोकिलया = अवकोकिला ( कोकिला से लीचा हुआ मुग्ध ),  
 परिग्लानोऽध्ययनाय = पर्यध्ययन ( पढ़ने से थका हुआ ),  
 निर्गतः गृहात् = निर्गृह ( घर से निकला हुआ ) इत्यादि ।

### ( ग ) गति तत्पुरुष समास —

कुछ क्रूर प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के साथ कुछ विरोध शब्दों ( करी आदि ) का समास होता है, तब उस समास को गति तत्पुरुष कहते हैं । करी आदि शब्दों को पाणिनि ने ' गति ' नाम दिया है, इसी से यह समास गति समास कहलाता है । दो एक उदाहरण ये हैं—

अल ( भूषित ) कृत्वा = अलकृत्य ( भूषित करके ) ।  
 संहृत्य ( आदर करके ) । शुक्लीभूय ( सफेद होकर ) ।  
 मीलीकृत्य ( मीला करके ) । पुरस्कृत्य ( आगे करके ) ।

### ( घ ) उपपद तत्पुरुष समास —

जब तत्पुरुष का प्रथम शब्द कोई ऐसी सज्ञा या कोई ऐसा अव्यय हो उसके न रहने से उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप नहीं रह सकता तो है, तब उसे उपपद तत्पुरुष समास कहते हैं । द्वितीय शब्द का कोई रूप क्रिया का न होना चाहिए यत्किं कृदन्त का हो, किन्तु ऐसा हो जो

'बहुव्रीहिरह राजन् पृथीतत्पुरुषो भवान्' ॥ ( हे नृप ! मैं बहुव्रीहि (समास) हूँ और आप पृथीतत्पुरुषः—अर्थात् मेरी भाषा में "लोकनाथ" का अर्थ होगा "लोका प्रजा नाथा पालकात्म्यम्"—जिसकी सभी रक्षा करें और पालन करें और आपकी भाषा में "लोकनाथ" का अर्थ होगा "लोकस्य नाथ"—ससार भर के स्वामी ) । यह सुन कर सब लोग हँस पड़े और याचक को उचित पारितोषिक देकर उसका लोकनाथत्व दूर किया गया ।

बहुव्रीहि समास में प्रधानत्व समास के दोनों शब्दों में से किसी में नहीं रहता, दोनों मिल कर तीसरे का ( जिसके यह विशेषण स्वरूप होते हैं ) ही प्राधान्य सूचित करते हैं ।

( ग ) इस समास के मुख्य दो भेद हैं—

( १ ) एक समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

( २ ) व्यधिकरण बहुव्रीहि ।

समानाधिकरण बहुव्रीहि वह है जिसके दोनों या सभी शब्दों का समान अधिकरण हो (समानाधिकरण और व्यधिकरण का भेद— ११८) अर्थात् वे प्रथमान्त हों, जैसे—पीताम्बर ।

व्यधिकरण बहुव्रीहि वह है जिसके शब्द दोनों प्रथमान्त न हों, जैसे—

चन्द्रशेखर—चन्द्र शेखरे यस्य स = ( शिख ) ।

चक्रपाणौ यस्य स चक्रपाणि = ( विष्णु ) ।

चन्द्रस्य कान्ति इय कान्ति यस्य स = चन्द्रकान्ति ।

प्रथम शब्द के न रहने पर असम्भव हो जाण । प्रथम शब्द को उपपद कहते हैं, इसी से इस समास का नाम उपपद समास पड़ा । उदाहरणार्थ—

कुम्भ करोति इति = कुम्भकार ।

यहाँ समास में 'कुम्भ' और 'कार' दो शब्द हैं । 'कुम्भ' का नाम उपपद है । 'कार' क्रिया का रूप नहीं, कृदन्त का है, किन्तु यदि उपपद न हो तो 'कारः' अपने आप नहीं ठहर सकता । 'कार' उपपद से स्वाधीन का शब्द नहीं है, हम 'कार' का अकेले कहीं प्रयोग नहीं कर सकते, केवल 'कुम्भ' या किसी और उपपद के साथ ही कर सकते हैं, जैसे —

चर्मकार, स्वर्णकार ।

इसी प्रकार—साम गायतीति सामग ।

यहाँ 'साम' उपपद रहने के ही कारण 'ग' शब्द है, 'ग' का अकेले प्रयोग नहीं हो सकता, कोई उपपद अवश्य रहना चाहिए ।

इसी प्रकार—धन ददातीति धनद, कम्बल ददातीति कम्बलद, गा ददातीति गोद आदि ।

इसी प्रकार उन्चै कृत्य, एकधाभूय आदि ।

( च ) अलुक् तत्पुरुष समास

समास में प्रथम शब्द की विभक्ति के प्रत्यय का लोप हो जाता है यह ऊपर बता चुके हैं, जैसे —

कुम्भ + कार = कुम्भकार । चरणयो + सेवक = चरणसेवक

किन्तु कुछ ऐसे समास हैं जिन में विभक्ति के प्रत्यय का लोप नहीं होता, उनको अलुक् समास कहते हैं । अलुक् समास

बहुव्रीहि समास का विग्रह करने के लिए विग्रह में यत् शब्द के किसी रूप का आना आवश्यक है। इस यत् से यह प्रकट किया जाता है कि समास में आए हुए शब्द किसी अन्य शब्द से संबंध रखते हैं।

१०५-(क) समानाधिकरण बहुव्रीहि के छ भेद होते हैं—

द्वितीया समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

तृतीया समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

चतुर्थी समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

पञ्चमी समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

षष्ठी समानाधिकरण बहुव्रीहि—और

तप्तमी समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

यह भेद विग्रह में आए हुए यत् शब्द की विभक्ति से जाने जाते हैं। यदि यत् द्वितीया विभक्ति में हो तो समास द्वितीया स० व० होगा, और इसी प्रकार अन्य भेद होंगे, उदाहरणार्थ—

द्वि० स० व०—प्राप्तमुदक य स प्राप्तोदक (ग्राम)—ऐसा गाँव प्राप्त पानी पहुँच चुका हो ।

गारुडो मानरो य स गारुडमानर (गृह) ।

तृ० म० व०—जितानि इन्द्रियाणि येन स त्रितेन्द्रिय (पुरुष)—

जिताने इन्द्रियों को धरा में कर रक्खा हो,

ऊठ रय येन स ऊठरय (अनङ्गपान्)—ऐसा बैल जिसने रय सीगा हो

दत्त चित्त येन स दत्तचित्त (पुण्य)—ऐसा पुरुष जो दिन दिवस

हो, लगाए हो ।

खिल ऐसे उदाहरण हैं जो साहित्य में पूर्व ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में मिलते हैं, उनके अतिरिक्त किसी समास में धिभक्ति (ग्रन्थ) का तोष न करने का हम लोगों को अधिकार नहीं है। अल्लुक् समास के कुछ उदाहरण ये हैं।

मनसागुप्ता = ( किसी स्त्री का नाम ), जनुपान्त्र = ( जन्मान्ध ), परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, दूरादागत, देवाना प्रिय = ( मूर्ख ), देवप्रिय = देवताओं को प्रिय।

पश्यतोहर = ( देखते २ चुराने वाला, अथात् मुनार या डाकू ),

युधिष्ठिर = ( युद्ध में डटा रहने वाला ),

अन्तेवासी = ( शिष्य ), मगसिजम् = ( कमल ),

खेचर = ( देव, सिद्ध आदि आकाश में चलने वाले ) इत्यादि।

## ( छ ) मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास

ऐसे तत्पुरुष समास जिनमें से कोई ऐसा शब्द गायब हो गया हो जिसे साधारण दशा में रहना चाहिये था, “मध्यमपदलोपी समास” के नाम से बोले जाते हैं। ऐसे ‘शाकपाथिव’ आदि कुछ ही शब्द हैं। इन से अतिरिक्त शब्दों में यह समास नहीं लग सकता। उदाहरणार्थ

शाकप्रिय पार्थिव = शाकपार्थिव। देवपूजक धातव्य = देवपूजक।

इन उदाहरणों में ‘प्रिय’ और ‘पूजक’ शब्द जो मध्य में आते हैं रहने चाहिये थे, किन्तु नहीं रहे।



१० स० व०—उपहत पशु यस्मै स उपहतपशु ( रद्ग )—जिसके लिए पशु ( वस्तु ) लाया गया हो । दत्तधन ( पुरुष ) ।

१० स० व०—उद्धृतम् ओदन यस्या सा उद्धृतौदना ( स्थाली )—ऐसी थाली जिसमें से भात निकाल लिया गया हो ।

निर्गत धन यस्मात् स निर्धन ( पुरुष )

निर्गत यज्ञ यस्मात् स निर्धन ( पुरुष ) ।

१० स० व०—पीताम्बर ( हरि ), महाबाहु, लम्बरुण, चित्रगु ।

१० स० व०—वीरा पुरुषा यस्मिन् स वीरपुरुष ( ग्राम )—ऐसा गाँव जिसमें वीर पुरुष हो ।

( स ) अधिकरण बहुव्रीहि के दोनों शब्द प्रथमा विभक्ति में नहीं रहते, केवल एक रहता है, दूसरा पछी या सप्तमी में रहता है, जैसे —  
चक्रपाणौ यस्य स चक्रपाणि । चन्द्रोत्तर, चन्द्रकान्ति इत्यादि ।

( ग ) नीचे लिखे बहुव्रीहि भी कभी २ पाये जाते हैं —

( १ ) मन् अथवा कोई उपसर्ग किसी सज्ञा के साथ हो तो ऐसा रूप होता है, उदाहरणार्थ—अविद्यमान पुत्र यस्य स अविद्यमानपुत्र ( अथवा अविद्यमानपुत्र ), निर्धन, उत्कन्धर ( अथवा उद्धृतकन्धर ) विजीवित ( अथवा विगतजीवित )

( २ ) सह और तृतीयात् सज्ञा—सह सीता यस्य स, ससीत ( राम ) ।

१२६—बहुव्रीहि बनाते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए ।

## ( ज ) मयूरव्यसकादि तत्पुरुष समास

कुछ ऐसे तत्पुरुष समास हैं जिनमें नियमों का प्रत्यक्ष उल्लंघन  
उनको पाणिनि ने मयूरव्यसकादि नाम दे कर अलग कर दिया है। जैसे—

व्यसक मयूर = मयूरव्यसक । ( चालाक मोर )

यहाँ व्यसक शब्द प्रथम होना चाहिए था और मयूर दूसरा ।

अन्यो राजा = राजान्तरम् । अन्यो ग्राम = ग्रामान्तरम् ।

इसी प्रकार अन्य अन्तर शब्द वाले उदाहरण होते हैं ।

## द्वन्द्व समास

१२२—जब ऐसी दो या अधिक सज्ञाएँ साथ रखी जाती  
जो 'च' शब्द से जोड़ी हुई थीं, तब उस समास को द्वन्द्व समास  
कहते हैं। इस समास में यदि दोनों सज्ञा रहें तो दोनों प्रधानत्व  
रहती हैं, अथवा उनके समूह का प्रधानत्व रहता है। द्वन्द्व समास  
तीन प्रकार का होता है—

( १ ) इतरेतर द्वन्द्व ।

( २ ) समाहार द्वन्द्व ।

( ३ ) एकशेष द्वन्द्व ।

## ( क ) इतरेतर द्वन्द्व

जब समास में आई हुई दोनों सज्ञाएँ अपना प्रधानत्व  
व्यक्तित्व रखती हैं तब उसे इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं, जैसे —

( १ ) समानाधिकरण बहुव्रीहि में यदि प्रथम शब्द पुलिङ्ग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिङ्ग शब्द (रूपवान्—रूपवती, सुन्दर—सुन्दरी आदि) हो और ऊकारान्त न हो और दूसरा शब्द स्त्रीलिङ्ग का हो तो प्रथम शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप हटा कर आदि रूप (पुलिङ्ग) रखता जाता है, जैसे —

रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्य (रूपवतीभार्य नहीं) ।

इस उदाहरण में समास का प्रथम शब्द “रूपवती” था और द्वितीय “भार्या” । प्रथम शब्द “रूपवद्” ( पु ० ) से बना था और ऊकारान्त था, तथा द्वितीय शब्द “भार्या” स्त्रीलिङ्ग में था, इस लिए प्रथम शब्द का पुलिङ्ग रूप प्रा गया । इसी प्रकार—

चित्रा गाव यस्य स चित्रगु (चित्रागु नहीं), जरद्भार्य ।

परन्तु गङ्गा भार्या यस्य स गङ्गाभार्य (गङ्गाभार्य नहीं) । क्योंकि गङ्गा शब्द किसी पुलिङ्ग शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप नहीं है ।

वामेरुभार्य—वामेरु भार्या यस्य स ( क्योंकि यहाँ प्रथम शब्द ऊकारान्त है, प्राकारान्त या ईकारान्त नहीं ) ।

कुछ विशेष स्थलों में ( जैसे यदि प्रथम शब्द किसी का नाम हो पूरी सख्या हो, उसमें अङ्ग का नाम आता हो और वह ईकारान्त हो जाति का नाम हो इत्यादि अथवा यदि द्वितीय शब्द प्रिया या प्रियादिगण में पठित कोई शब्द हो ) । जैसे क्रमानुसार—

दत्ताभार्य ( जिसकी दत्ता नामवाली स्त्री है ),

पञ्चमीभार्य ( जिसकी पाँचवीं स्त्री है ),

सुकेरीभार्य ( जिसकी अच्छे केशों वाली स्त्री है ),

शुद्धाभाय ( जिसकी खी शुद्धा है ), कल्याणी प्रिया यस्य स  
कल्याणी प्रिय ।

( २ ) यदि समास के अन्त में इन् में अन्त होने वाला शब्द  
गणे, और यदि पूरा समास स्त्रीलिङ्ग बनाना हो तो गित्य कप्  
क ) प्रत्यय जोड़ दिया जाता है, जैसे—

बहुव दण्डिन यस्या सा बहुदण्डिका ( नगरी ) ।

किन्तु यदि पुलिङ्ग बनाना हो तो कप् जोड़ना न जोड़ना इच्छा  
र है, जैसे—

बहुदण्डिको ग्राम , बहुदण्डी ग्राम वा ।

( ३ ) जब बहुव्रीहि समास के अन्तिम शब्द में अन्य नियमों के  
नुसार कोई विकार न हुआ हो तो उसमें इच्छानुसार कप् ( क ) जोड़  
क्ते हैं, जैसे—

उदात्तमन यस्य स उदात्तमनस्क अथवा उदात्तमना । इसी प्रकार  
खोरस्क , महाशरक आदि विकल्पसिद्ध रूप हैं ।

किन्तु व्याघ्रस्य पादौ इव पादौ यस्य स व्याघ्रपात् ( यहाँ व्याघ्रपात्क  
ही हुआ, क्योंकि समास का अन्तिम शब्द 'पाद' दूसरे नियम 'से पद्  
। गया और इस प्रकार अन्तिम शब्द में विकार उत्पन्न हो गया ) ।

( ४ ) यदि बहुव्रीहि समास का अन्तिम शब्द ऋकारान्त  
पु० अथवा स्त्री० अथवा नपु० ) हो अथवा स्त्रीलिङ्ग का  
तारान्त या ऊकारान्त हो तो कप् ( क ) प्रत्यय अवश्य लगता है,  
से—

(ख) अकारान्त शब्दों के अनन्तर इनि (इन्) आर ठन् (ठन्) लगते हैं, जैसे —

बराडी (दण्ड + इनि) अगिठक (दण्ड + ठन्) ।

(ग) तारका आदि (तारका, पुष्प मञ्जरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार, धार, कुङ्कुम, कण्टक मुकुल, कुसुम, किमलय, पल्लव, खण्ड, वेग, वि, मुद्रा, पुष्पता, पिपासा, शब्दा, अन्न पुलक, द्रोह, दाह, मुल, दुःख, कण्ठा, भर, व्याधि, चर्मन्, ग्रन्थ, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक, भ्रूण, गर्भ, मुकुट, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुल्लय, पुष्प सीमन्त, वर, रोग, कण्ठा, कञ्जत, तृप्, धौरक, करलोल, फल, कन्तुक, शृङ्गार अङ्गुर वकुल, लङ्क, पर्दम, कन्दल, मूञ्ज, अङ्गार, प्रतिविम्ब प्रत्यय, दीप्ता, गर्भ ये इत्येके के मुख्य शब्द हैं) शब्दों के अनन्तर 'यह निम्नमें हैं—' इस अर्थ में बोध कराने के लिए इतच् (इत्) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

तारका + इतच् = तारकित (तारे हैं निम्नमें) ।

पिपासित (प्यास है जिसमें—प्यासा) ।

पुष्पित, कुमुमित आदि इसी प्रकार बनते हैं ।

ईश्वर कर्ता यस्य स ईश्वरकर्तृक ( ससार ) ।

अन्न धातृ यस्य स अन्नधातृक ( पुरुष ) ।

सुशीला माता यस्य स सुशीलमातृक ( मनुष्य ) ।

रूपवती स्त्री यस्य स रूपवत्स्त्रीक ( मनुष्य ) ।

सुन्दरी षधू यस्य स सुन्दरषधूक ( पुरुष ) ।

( ५ ) यदि अन्तिम शब्द आकारान्त हो तो इच्छानुसार  
आकार को अकार कर सकते हैं, जैसे—

पुष्पमालाक, पुष्पमालक ।

१२७-समासों के कुछ साधारण नियम हैं जो सब समासों  
में लगते हैं । उन में से मुख्य २ यहाँ दिष्ट जाते हैं ।

( क ) समास के किन्हीं दो शब्दों के बीच में कहीं भी सन्धि  
प्राप्त होती हो तो अग्रश्य करनी चाहिए ( ५ में उल्लिखित नियम  
अनुसार ) ।

( ख ) यदि किसी समास का विग्रह ही न हो सके तो उसके  
नित्यसमास कहते हैं, जैसे—इष के साथ किसी शब्द का  
जीमूतस्य इष=जीमूतस्येव, यह नित्य समास है ।

( ग ) यदि समास के अन्त में राजन्, अहन्, या सन्ति

१ अविग्रहो नित्यसमासोऽन्यपदविग्रहो वा ।

२ राजाह सखिभ्यष्टच् ।

## भावाय तथा कर्माय

१३० किन्ती शब्द से भाववाचक सज्ञा बनाने के लिए शब्द में त्व अथवा तल् ( ता ) जोड़ देते हैं। त्व में अन्त होने शब्द सज्ञा नपुंसकलिङ्ग में होते हैं और तल् में अन्त होने स्त्रीलिङ्ग में, जैसे—

गो + त्व = गोत्वम्, गो + तल् = गोता, शिशु + त्व = शिशुत्वम्  
शिशु + तल् = शिशुता, इत्यादि।

( क ) पृथु आदि ( पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, यदु, लाघु, प्रादु, उरु, गुरु, बहुल, पर्यङ्क, दण्ड, चण्ड, थकिञ्चन, बाल, होह, पाक, कन्द, स्वादु, हृत्, दीर्घ, प्रिय, वृष, शृङ्ग, बिम्ब, कुम्भ, अणु ) शब्दों में अन्तर भाव का अर्थ सूचित करने के लिए इमनिच् ( इमन् ) प्रत्यय विकल्प से लगाते हैं। जिस शब्द में यह प्रत्यय लगाते हैं वह यदि व्यञ्जन आरम्भ हो और उसके अन्तर अकार ( मृदु, पृथु आदि ) आवे तो अकार के स्थान में र् होजाता है। इमनिच् प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्दों में समीपुलिङ्ग में होते हैं, जैसे—

पृथु + इमनिच् = प्रथिमन् ( महिमन् के अनुसार रूप चलेंगे ), पृथुता, अथिमन्, महिमन्, पथिमन्, तथिमन्, लथिमन्, बथिमन् आदि।

१ तस्य भावस्त्वनलौ । २ । १ । ११६ ।

२ पृथ्यात्मिन् इमनिच्वा । ४ । १ । १२२ । ३ श्रुतो हलादन्तर्गते

४ । २ । १६१ ।

शब्द आर्वे तो इनका रूप राज, अह और सख हो जाता है, जैसे—

महान् राजा = महाराज, सिंगुराज,

उत्तमम् अह = उत्तमाह ( अन्त्रा दिन ),

कृष्णस्य सखा = कृष्णसखा ।

कहीं कहीं अहन् शब्द का अह हो जाता है, जैसे—सषाड् = ( सारे दिन ) । सायाह = सायकाल ।

( ग ) में उदाहृत नियम नञ् तत्पुरुष में नहीं लगता, जैसे—  
न राजा = अराजा, न सखा = असखा ।

( २ ) महन् शब्द यदि कर्मधारय अथवा बहुव्रीहि समास का प्रथम शब्द हो तो वह 'महा' हो जाता है, जैसे—

महाराज, महादेव ।

किन्तु महत्सेवा = महता सेवा ।

( व ) अर्क्, पुर, अप, धुर शब्द जब समास के अन्तिम शब्द होते हैं तो अकारान्त हो जाते हैं, जैसे—

अर्ध अर्क् = अर्धर्च,

विष्णो प्र = विष्णुपुरम्,

विमला आप यस्य तत् विमलाप सर,

राज्यस्य धू = राज्यधुरा ( किन्तु अक्ष की धुरा का अभिप्राय ही तो नहीं, जैसे—अक्षधू । अक्ष = गान्नी ) ।

१ आन्महत समास अधिकृत जातीये । १ । ३ । ४६ ॥

२ अक्षपुरन्धू पयामानये । २ । ४ । १४ ॥



( ख ) वर्णवाची शब्दों ( नील, शुक्ल आदि ) के अनन्तर तथा दृढ आदि  
दृढ, वृद्ध, परिदृढ, मृश, कृश, चक्र, शुक्र, चुक्र, आग्र, कृष्ट, लवण, ताग्र,  
त, उष्ण, जड, यधिर, पयिष्ठत मधुर मूख, मूक, स्थिर ) के अनन्तर  
निच् अथवा व्यञ् ( य ) भाव के अर्थ में लगाते हैं जैसे—

शुक्रस्य भाव = शुक्रिमा, शौक्यम् ( अथवा शुक्रत्व, शुक्रता ) ।

ती प्रकार—

माधुर्यम् मधुरिमा, लज्जम्, द्रढिमा, दृढत्व, दृढता आदि ।

व्यञ् में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं ।

( ग ) गुणवाची शब्दों के अनन्तर तथा ग्राह्य आदि ' ग्राह्य,  
आर, धूर्त, आराध्य, विराध्य, अपराध्य, उपराध्य, एकभाव, द्विभाव,  
त्रिभाव, अन्यभाव, सवादिन्, सप्रेशिन्, सभापिन्, बहुभापिन्, शीपघातिन्,  
पेक्षातिन्, समस्थ, विपमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल अपज,  
नेपुण्य, पिशुन, कुनहज, बालिश, अलम्, दुष्पुरुष, कापुरुष, राजन्, गण  
पति, अधिपति, दायाद, विपम विपात, निपात—ये इस गण के मुख्य  
शब्द हैं ) श दो के अनन्तर भाग्य सूचित करने के लिए व्यप् ( य )  
प्रत्यय लगता है, जैसे—

ग्राह्यस्य भाव = ग्राह्ययम् । इसी प्रकार—

धीयम्, धीर्यम्, आपराध्यम्, ऐक्यायम्, सामर्थ्यम्, कौरव्यम्,

१ वणदृढादिभ्य व्यञ् । ५ । १ । १२३ ।

२ गुणवचनग्राह्यादिभ्य कर्मणि च । ५ । १ । १२४ ।

( १ ) सह और समान शब्द जो समास के प्रथम शब्द हैं तब उनके स्थान पर बहुधा स हो जाता है जैसे—

द्रोगेन सह = सद्रोण ,

समान ब्रह्मचारी = सब्रह्मचारी ।

## अष्टम सोपान

### तद्धित विचार

१२८-सज्ञा, स्पर्धनाम, विशेषण आदि में जिन प्रत्ययों को जोड़ कर कुत्र और अर्थ भी निकाला जाता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं, जैसे—

दिते अपत्य = दैत्य ( दिति + य ) ।

इसमें य ( तद्धित प्रत्यय ) जोड़ कर दिति के लड़के का वाच्य कराया गया है ।

कपायेण रक्त = कापायम् ( क्लृप् ) — ' कपाय रा में रेंगा हुआ ' ।

यहाँ कपाय शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगा कर ' कपाय से रेंगे हुए का अर्थ निकाला गया ।

कुशाम्बेन निर्वृत्ता = कौशाम्बी ( एक नगरी का नाम ) ।

यहाँ ' कुशाम्ब ' शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगा कर ' ॥५॥ की वनार्द्ध दुई का अर्थ निकाला । इसी प्रकार और भी

चापल्यम्, नैपुण्यम्, पैशुन्यम्, कौतुहल्यम्, बालिश्यम्, भालस्यम्, रात्र्यम्, प्राधिपत्यम्, दायाद्यम्, जाठयम्, भालिन्यम्, मौढ्यम् आदि ।

मोट—कर्म का अर्थ बोध कराने के लिए भी इन शब्दों के अन्त प्रत्यय लगाते हैं जैसे—ब्राह्मणस्य कर्म = ब्राह्मण्यम्, बालिदास्य कर्म = बालिश्यम्, काव्यम् ।

( ष ) <sup>१</sup>इ, उ, ऋ अथवा ल में अन्त होने वाले शब्दों के अन्त ( यदि पूर्व वर्ण में लघु अक्षर हो जैसे शुचि, मुनि आदि—पाण्डु नहीं ) भाव अथवा कर्म का अर्थ दिवाने के लिए अन् ( ष ) प्रत्यय जोड़ा है, जैसे—

शुचेर्भाव कर्म वा = शौचम्, मुनेर्भाव कर्म वा = मौनम् ।

( ष ) <sup>२</sup>यदि किसी के तुल्य क्रिया करने का अर्थ हो तो जिसके समान क्रिया की जाती है उसके अनन्तर घटि ( वत् ) प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे—ब्राह्मणेन तुल्यमधीते = ब्राह्मणवत् अधीते ।

( ष ) <sup>३</sup>यदि किसी में अथवा किसी के तुल्य कोई वस्तु हो तब भी घटि प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—

इन्द्रप्रस्थे इव प्रयागे दुर्ग = इन्द्रप्रस्थवत् प्रयागे दुर्ग ( जैसा कि इन्द्रप्रस्थ में है वैसा ही प्रयाग में है ) ।

१ इगन्ताच्च लघुपूर्वात् । २ । १ । १३ । ॥

२ तेन तुल्य क्रिया घटति । २ । १ । ११२ ॥

३ तत्र तस्येव । ३ । १ । ११६ ॥

कितने ही अर्थों का बोध कराने के लिए तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

‘तद्धित’ शब्द का अर्थ है—‘तेभ्य प्रयोगेभ्य हिता इति दहिता’—ऐसे प्रत्यय जो उन उन प्रयोगों के काम में आ सकें।  
कन २ प्रयोगों में तद्धित प्रत्यय मुख्यरूप में आते हैं यह नीचे देखा जायगा।

१२९—तद्धित प्रत्यय लगाते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए। महर्षि पारिनि ने इन प्रत्ययों के नामों में ऐसे अक्षर रख दिए हैं जिनसे कुछ और बातों का भी बोध होता है, जैसे—यदि किसी प्रत्यय में झू अथवा ण हो तो उस शब्द के (जिसमें यह प्रत्यय जुड़ेगा) प्रथम स्वर की वृद्धि होगी, इत्यादि। ऐसे अक्षर कभी प्रत्यय के आदि में और कभी अन्त में रहते हैं और केवल वृद्धि, गुण आदि की सूचना देने के लिए रखे जाते हैं।

(१) तद्धित प्रत्यय में यदि झू अथवा ण होने तो जिस शब्द ऐसा प्रत्यय जोड़ा जायगा, उस शब्द में जो भी प्रथम स्वर जायेगा उसको (६) में का वृद्धिरूप ग्रहण करना होगा।

जैसे—दिति + ण्य (य) = द् + इ + ति + य = द् + ऐ + त्य = दैत्य  
इत्यादि। यदि ऐसा प्रत्यय हो जिसके अन्त में फू होवे तब भी यही

चैत्रस्य इव मेघस्य गाव = चैत्रवर्न्नीस्य गाव ( जैसी गाँव चैत्र की वैसी ही मेघ की है ) ।

( ज ) यदि किसी के समान किसी की मूर्ति अथवा चित्र हो अथवा किसी के स्थान पर जोड़ रख लिया जाय तो उस शब्द के अनन्तर कन् (क) प्रत्यय लगाकर इस अर्थ का बोध कराते हैं, जैसे—

अश्व इव प्रतिकृति = अश्वक ( अश्व के समान मूर्ति अथवा चित्र प्रतिकृति ) ।

पुत्र ( पुत्र के स्थान पर किसी धृत् अथवा पक्षी को जब पुत्र कहें ) ।

## ममूहार्थ

१३३—किसी वस्तु के समूह का अर्थ बतलाने के लिए उस वस्तु के अनन्तर अण् ( अ ) प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—  
 राकाना समूह = राकम् ।  
 काकाना समूह = काकम् ।  
 घृकाना समूह = वार्कम् ( भेड़ियों का समूह ) ।  
 मायूरम्, कापोतम्, मैत्रम्, गार्भिकम् ।

१ इवे प्रतिकृति । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ । ३४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ । ८७ । ८८ । ८९ । ९० । ९१ । ९२ । ९३ । ९४ । ९५ । ९६ । ९७ । ९८ । ९९ । १०० ।

२ तस्य समूह । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ । ३४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ । ८७ । ८८ । ८९ । ९० । ९१ । ९२ । ९३ । ९४ । ९५ । ९६ । ९७ । ९८ । ९९ । १०० ।

विधि होगी, जैसे घर्षा + ठक् ( इक ) = घृ + अ + पां + इक = घर्षा + पां + इक = घार्षिक ।

नोट—दैत्य में दूसरी 'इ' का ओर घर्षा में 'आ' का कैमे लोप हो गया इसके लिए नीचे के नियम देखिए ।

(२) स्वर अथवा य् में आरम्भ होने वाले प्रत्ययों के पूर्व, शब्दों के अन्तिम स्वर में घिकार उत्पन्न होते हैं—अ, आ, इ, ई का लोप ही हो जाता है, उ और ऊ के स्थान में गुण रूप (ओ) आ जाता है और ओ तथा औ के साथ साधारण सन्धि के नियम लगते हैं, जैसे—

अकारान्त कृष्ण + अण् = कार्ष्ण ( कृष्ण के अ का लोप )  
 आकारान्त घर्षा + ठक् (इक) = घार्षिक (घर्षा के आ का लोप)  
 इकारान्त गणपति + अण् = गाणपति ( गणपति की इ का लोप )  
 ईकारान्त गर्भिणी + अण् = गर्भिणम् ( गर्भिणी की ई का लोप )  
 उकारान्त शिशु + अण् = शेशव ( शिशु के उ के स्थान में गुण रूप ओ ),

ऊकारान्त धधृ + अण् = वाधवम् ( धधृ के ऊ के स्थान में गुण रूप औ ),

ओकारान्त गो + यत् + टप् = गो + अय् + गय् + या = गव्या,  
 औकारान्त नौ + ठक् = नौ + आव् + इक = नाविक ।

(३) शब्दों के अन्तिम न् का ऐसे प्रत्ययों के सामने जो किसी व्यंजन से आरम्भ होते हैं बहुधा लोप हो जाता है, जैसे—राजन् + कुञ् ( अक ) राज् + अक = राजकम् । यदि प्रत्यय स्वर से अथवा

( क ) ग्राम<sup>१</sup>, जन, बन्धु, गज, सहाय इन शब्दों के अनन्तर समूह के अर्थ के लिए तल् (ता) लगता है —

ग्रामता ( ग्रामों का समूह ), जनता, बन्धुता, गजता, सहायता ।

### सम्बन्धार्थ व विकारार्थ

१३४—“यह इसका है,” इस अर्थ को बताने के लिए जिसका सम्बन्ध बताना हो उसके अनन्तर अण् लगाते हैं, जैसे—

उपगोरिदम् ( उपगु + अण् ) = औपगयम् ।

देवस्य अयम् = दैव ।

ग्रीष्म + अण् = ग्रैष्मम् नैशम् आदि—

इसका लिङ्ग सम्बद्ध वस्तु के लिङ्ग के अनुसार बदलता है ।

( क ) सम्बन्ध अर्थ दिखाने के लिए हल और सीर शब्द के अनन्तर ठक् ( इफ ) लगता है, जैसे—हालिकम् सैरिकम् ।

( छ ) जिस वस्तु से बनी हुई ( विकारस्वरूप ) कोई दूसरी वस्तु दिखानी हो तो उसके अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

१ ग्रामजनबन्धुम्यस्ताल् । ४ । २ । ४३ गजसहायाम्या चि  
वत्तयम् । ता० ।

२ तायेदम् । ४ । ३ । १२० ।

३ हालसीराट्क् । ४ । ३ । १२४ ।

४ नस्य विकार । ४ । ३ । १३४ ।

से आरम्भ होते हो तो न के साथ पूर्ववर्ती स्वर का भी कभी भी लोप हो जाता है, जैसे—आत्मन्+(इय)=आत्म्+इय=आत्मोय ।

(४) प्रत्यय के अन्त में आया हुआ हल् अक्षर केवल वृद्धि, गुण यदि किसी विधि की सूचना देने को होता है, शब्द के साथ नहीं होता। जैसे—अण् का ण् केवल वृद्धि की सूचना के लिए है, केवल जोड़ा जाएगा ।

(५) प्रत्यय में आण हुण ठ के स्थान में इक हो जाता है, जैसे—  
ठक्=इक ।

(६) प्रत्यय के यु वु के स्थान में कम से अन और अक हो जाते हैं। जैसे—ल्युट्=यु ( अन ), वुम्=अक ।

(७) प्रत्यय के आदि में आण हुण फ ढ ख छ घ के स्थान में कम से आयन्, पय्, ईन, ईय्, इय् हो जाते हैं, अर्थात्—  
फ=आयन् ।

ढ=पय्

ख=ईन

छ=ईय् ।

घ=इय् ।



भस्मनो विकार = मास्मन ( भस्म मे बना हुआ ) ।

मार्तिक ( मिट्टी से बना हुआ, मिट्टी का विकार ) ।

( ग ) प्राणिवाचक, ओषधिवाचक तथा वृक्षवाचक शब्दों के अनन्तर ही प्रायः 'अवयव' का भी अर्थ यत्नलाता है, विकार तो घटाता है, जैसे—

मयूरस्य विकार अवयवो वा = मायूर ।

मर्कटस्य विकारोऽवयवो वा = मार्कट ।

मूर्गाणां विकारोऽवयवो वा = मौर्व काण्डम्, भस्म वा ।

पिप्पलस्य विकार अवयवो वा = पैपल ।

( घ ) उ, ऊ में अन्त होने वाले शब्द के अनन्तर अवयव का अर्थ दिखाने के लिए अञ् ( अ ) प्रत्यय होता है, जैसे—

देवदारु + अञ् = दण्डारवम्, भाद्रणारवम् ।

( च ) विकार अथवा अवयव का अर्थ बनाने के लिए चित्ररूप से मयद् प्रत्यय भी आ सकता है, किन्तु खाने पहनने की वस्तुओं के अनन्तर नहीं, जैसे—

अरमन विकारो अवयवो वा = चारमनम्, अरममयम् वा ।

भस्ममयम्, सुवर्णमय, सुवर्णमयी इत्यादि ।

किन्तु मौर्व सूप । मूर्ग की दाल ) का मुद्गमय सूप नहीं होगा ।

१ अवयवे च प्राण्योषधिपुष्पेभ्य । ४ । ३ । १३५ ।

२ ओरञ् । ४ । ३ । १३६ ।

३ मयद्वैतयोभापायामभस्याच्छान्तयो । ४ । ३ । १३७ ।

## अपत्यार्थ

१३०—अपत्य शब्द का अर्थ है—सन्तान, 'पुत्र अपत्य पुत्री'। अपत्याधिकार में ऐसे प्रत्ययों का विचार होगा जिनके सद्भाष्यो में जोड़ने से किसी पुरुष या स्त्री की सन्तान का बोध होता है। इन प्रत्ययों में गोत्र शब्द का व्यवहार पौत्र आदि अपत्य के अर्थ में आया है। नीचे केवल मुख्य मुख्य नियम दिये जाते हैं।

(क) अपत्य का अर्थ बताने के लिए अकारान्त प्रातिपदिक के अनन्तर इन् प्रत्यय लगता है, जैसे—दशरथ+इन्=दाशरथ्य (दशरथ का लड़का)। दत्तस्य अपत्य=दात्ति (दत्त+इन्) इत्यादि।

(ख) ऐसे प्रातिपदिक जिनमें स्त्री प्रत्यय लगा हो उनसे अपत्य का अर्थ बताने के लिए ढक् (ण्य्) लगाना चाहिए, जैसे—विनता+ढक्=वैनतेय (विनता का पुत्र)। भगिनी+ढक्=भागिनेय (भाजा) इत्यादि। ऐसे प्रातिपदिक जिनमें केवल स्वर हो और जो इकार में अन्त होते हैं, ढक् प्रत्यय लगा कर अपत्यार्थ सूचित करते हैं, जैसे—अत्रि+ढक्=आत्रेय।

१ तस्यापत्यम् । ४ । १ । ६२ ॥ २ अपत्य पौत्रप्रभृतिगोत्रम् । ४ । १ । १६२ ॥ ३ अत इन् । ४ । १ । ६५ ॥ ४ स्त्रीभ्यो ढक् । द्वपच । ४ । १ । १२०, १२१ । इतरचानिज । ४ । १ । १२२ ।

## परिमाणार्थ तथा सख्यार्थ

१३५—जो प्रत्यय परिमाण ( कितना आदि ) बताने के लिये लगाए जाते हैं उन्हें परिमाणार्थ प्रत्यय कहते हैं ।

( क ) यत्, तत् पतत् के अनन्तर घतुप्, किम्, इदम् के अनन्तर घ और घ ( इय ) लगता है, जैसे—इयान्, कियान् ।

इनका विस्तृत रूप विरोध विचार में दिखाया जा चुका है ।

( ख ) मात्रच् प्रत्यय लगाकर प्रमाण, परिमाण, सख्या आदि का सशय हटाकर निश्चय स्थापित किया जाता है, जैसे—

शम प्रमाणम् = शममात्रम् ( निश्चय ही शम प्रमाण है ) ।

सेरमात्रम् ( सेर ही भर ) ।

पद्ममात्रम् ( पाँच ही ) ।

( ग ) पुरुष और हस्तिन् के अनन्तर अथ् प्रत्यय लगाकर प्रमाण बतया जाता है, जैसे—

पौरुषम् ( जलमन्या मरिति )—इस नदी में आदमी भर ( आदमी के बचने भर ) पानी है । हस्तिनम् ( जलम् ) ।

( घ ) किम् शब्द के अनन्तर कति ( अति ) लगाकर सख्या का शय परिमाण का भी बोध कराते हैं, कति—कितने ।

१ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे ऋतुप् । किमिदम्या वो घ । २ । ३६—४०

२ प्रमाणपरिमाणाभ्यां सख्यायाश्चापि मशये । मात्रज्जक्तव्य । घा०

३ पुरुषहस्तिभ्यामण् च । २ । २ । ३८ ।

४ किम् सख्यापरिमाणे कति च । ५ । २ । ४१ ।

( ग ) अश्वपति आदि ( अश्वपति, शतपति, धनपति, गणपति, ऋषिपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धन्वपति, सभापति, नायपति, सेनपति ) प्रातिपदिकों में अण् प्रत्यय लगाकर अपत्याय सूचित किया जाता है, जैसे—गणपति + अण् = गणपतम् इत्यादि ।

( घ ) राजन् और स्वशुर शब्दों के अनन्तर अपत्यार्थ में यत् ( य ) प्रत्यय लगता है । राजन् + यत् = राजन्य, स्वशुर + यत् = स्वशुय (साला)

### मत्वर्थीय

१३१—हिन्दी में जो अर्थ 'वान्', 'घाला' आदि प्रत्ययों से सूचित होता है ( जैसे गाड़ीवान्, इस्केवाला आदि ) उसी अर्थ का बोध कराने वाले प्रत्ययों को मत्वर्थीय ( मतुप् प्रत्यय के अर्थ घाले ) कहते हैं । उनमें से मुख्य दो चार का ही यहाँ विचार किया जायगा ।

( क ) किसी वस्तु का होना किसी दूसरी वस्तु में सूचित करने के लिये, जिम् वस्तु का होना सूचित करना हो उसके अनन्तर मतुप् ( मत् ) प्रत्यय लगता है, जैसे —

१ अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ ।

२ राजश्वशुराद्यत् । ४ । १ । १३० ।

३ तदभ्यास्यस्मिन्निति मतुप् । २ । २ । ६४ । भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगे-  
तेशायने । सम्यन्धेऽस्तिविवक्षाया भवन्ति मतुगादय ॥ वार्तिक ॥

॥ व्या० प्र०—१८

( च ) मत्स्या शब्द के अनन्तर तयप् लगाकर मत्स्यासमूह का बोध  
राते हैं, द्वितयम्, त्रितयम् आदि ।

द्वि और त्रि के आन्तर इसी अर्थ में अयच् प्रत्यय भी लगता है—  
यम्, त्रयम् ।

### हितार्थ

१३६—जिसके हित की कोई वस्तु हो उसके अनन्तर ह्य ( ह्य )  
प्रत्यय लगता है, जैसे—

घातेभ्य हित दुग्ध = घासीयम् दुग्धम् ( बड़हों के लिए दूध ) ।

इसी अर्थ में शरीर के अवयववाची शब्दों के अनन्तर तथा उकारात्  
शब्दों के अनन्तर, और गो आदि ( गो, हविस्, अक्षर, विप, धर्हिस्,  
एका, युग, मेधा, नाभि, श्वन्—शुन् वा शुन् हो जाता है—कृप, दर,  
र, असुर, वेद, बीज—ये इस गण के मुख्य शब्द हैं ) के अनन्तर यत्  
प्रत्यय लगता है, जैसे —

दन्तेभ्य हित ( ओपधि ) = दत्त्वा, ( दन्त + यत् ) । इसी प्रकार  
कृपा, गोभ्य हित = गम्यम्, शरवे हित = शरयम् ( शरु + यत् ),  
शुन्यम्, असुयम्, वेद्यम् भीज्यम् आदि ।

१ सत्स्याया अवयवे तयप् । १।२।४२। द्वित्रिभ्या तयस्यायजा । १।२।४३।

२ तस्मै हितम् । १।१।१।

३ शरीरावयवाच्च । १।१।६।

४ उगवादिभ्यो यत् । १।१।२।

गाव अस्य सन्ति इति = गोमान् ( गो + मतुप् ) ।

जब किसी वस्तु के वाहुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अर्पिता अथवा सम्बन्ध का बोध कराना हो तो विशेष करके मत्वर्थी प्रत्यय लगाते हैं, जैसे —

गोमान् ( बहुत गायो वाला ) ।

ककुदावर्तिनी कन्या ( कुबन्नी लडकी ) ।

रूपवान् ( अन्त्रे रूप वाला ) ।

क्षीरी वृक्ष ( जिसमें नित्य दूध रहता हो ) ।

उदरिणी कन्या ( बड़े पेट वाली लडकी ) ।

दण्डी ( दण्ड के साथ रहने वाला साधु ) ।

मत्तुप् प्रत्यय विशेषकर गुणवाची शब्दों ( रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि ) के उपरान्त लगता है । गुणवान्, रसवान् इत्यादि ।

नोट—यदि मत्तुप् प्रत्यय के पूर्व ऐसे शब्द हों जो म् अथवा न्, अथवा पाँचों वर्गों के प्रथम चार वर्गों में अन्त होते हों अथवा जिन उपधा ( अन्तिम अक्षर के पूर्ववाला अक्षर उपधा कहलाता है ) म् अथवा न् हो तो मत्तुप् के म् के स्थान में व् हो जाता है, जैसे कि ऊपर उदाहरण, और विद्यावान्, लक्ष्मीवान्, यशस्वान्, विद्युद्दान्, तदिद्दान्, इत्यादि कुछ शब्दों के अनन्तर ( यव आदि में ) यह नियम नहीं भी लगता है जैसे यवमान् ।

## क्रियाविशेषणार्थ

१३७—कुछ तद्धित प्रत्यय ऐसे हैं, जिनके जोड़ने से वह प्रयोजन निर होता है जो हिन्दा में दिशावाची, कालवाची आदि क्रियाविशेषणों होता है ।

( क ) पञ्चमी विभक्ति के अथ में सज्ञा तथा सर्वनाम, विशेषण अनन्तर, तथा परि और अभि प्रत्ययों के अनन्तर तसिल् ( तस ) लगा है, इस प्रत्यय के पूर्व तथा नीचे लिखे प्रत्ययों के पूर्व कुछ सर्वनामा के रूप में हेर फेर हो जाता है जैसे—

रत्त ( त्वम् + तसिल् ), मत्त, युष्मत्त, अस्मत्त, अत्त अत्त, तत्त, मध्यत्त, परत्त कुत्त, सर्वत्त, इत्त, अमुत्त ' उभयत्त, परित, अभित आदि ।

( ख ) सप्तमी का अर्थ देने के लिए त्रल् ( त्र ' लगता है—कुत्र, यत्र, तत्र, यत्र, वहुत्र सर्वत्र एकत्र ।

ग ) कत्र, जव आदि अथ प्रकट करने के लिए सर्व, एक, अन्य, किम्, यद्, तद् शब्दों के अनन्तर 'दा' प्रत्यय लगता है—

सर्वदा, एकदा अन्यदा, कदा यदा, तदा ।

इसी अर्थ में 'दानीम्' प्रत्यय भी लगता है, कदानीम्, यदानीम्, तदानीम्, इदानीम् आदि ।

१ पञ्चम्यास्तमित । ५ । ६ । ७ । पर्यभिभ्या च । ५ । ६ । ७ ।  
सयोभयायाभ्यामेव । वा० ।

२ सप्तम्याखल् । ५ । ६ । १० ।

३ सर्वैकान्यक्रियत्तद् काले दा । ५ । ६ । ११ । दानीं च । ५ । ६ । १२ ।

( घ ) ऐस जैसे आदि शब्दों के द्वारा सूचित प्रसार अर्थ को बताने के लिए याल् ( यम् ) या प्रत्यय लगाते हैं—अयम्, इत्थम् यथा तथा ।

( च ) आग, पीछे आदि शब्दों का अर्थ बताने के लिए पुर आदि देशागामी शब्दों के अनन्तर प्रथमान्त, पञ्चमी तथा सप्तमी के अर्थ में प्रस्तानि ( अस्तात् ) प्रत्यय लगाता है,

पुर + अस्तानि = पुरस्तात्, अधस्तात्, अवस्तात् अवरस्तात्, उपरिष्ठात् ।  
इसी प्रकार एनप् लगाकर प्रथमा और सप्तमी का अर्थ बताने को दक्षिण उत्तरण, अधरेण, पूर्वेषु, परिधमेन, तथा आति लगाकर पश्चात्, उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात् शब्द बनाते हैं ।

( छ ) 'दो बार' 'तीन बार' आदि की तरह 'बार' शब्द का अर्थ बताने के लिए पञ्चम् और इसके आगे के सख्यावाची शब्दों के अनन्तर कृत्वसुच् ( कृत्वम् ) प्रत्यय लगाते हैं,

१ प्रसारवचने याल् । ५ । ३ । २३ ।

२ दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्ताति । ५ ।

३ । २७ । ० नबन्धनतरस्यामदूरेऽपञ्चम्या । ५ । ३ । ३५ । पश्चात् ।

उत्तराधरदक्षिणाति । ५ । ३ । ३६-३४ ।

३ सख्याया त्रियाभ्या वृत्तिगणने कृत्वसुच् । ५ । ४ । १७ । द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् । एकस्य सकृत् ५ । ४ । १८-१३ ॥ विभाषा बहोर्धाऽङ्किप्रकृष्टफल । ५ । ४ । २० ।



( ग ) यदि किसी वस्तु, स्थान अथवा मनुष्य आदि से कोई वस्तु ले आये और यह दिखाना हो कि यह अमुक स्थान, अमुक वस्तु, अथवा मनुष्य आदि है तो स्थानादिवाचक शब्द के अनन्तर बहुधा थप् प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

सुगन्धादागत सौगन्ध ।

—आमदनी के स्थान ( दूकान, कारखाना ) आदि के अनन्तर ठक् ( एक ) होता है, जैसे—

शुक्क्यालाया आगत शौक्कशालिक ।

जिनसे विद्या अथवा जन्म ( योनि ) का सम्बन्ध हो उन में, यदि कारात्त शब्द न हों, तो युज् ( अक ) होता है, जैसे—

उपाध्यायानागता विद्या—अौपाध्यायिका

पितामहादागत धन पैतामहकम्, अन्यथा आतृकम् पेटृकम् ।

( ग ) यदि कोई मनुष्य किसी वस्तु से जुगा मेले कुछ खो दे, कुछ ले, तैरे, चले तो उस वस्तु के अनन्तर ठक् प्रत्यय लगाकर उस मनुष्य का बोध होता है, जैसे—

१ तत आगत । ४।३।७४।

२ अगायस्थानेभ्य । ४।३।७५।

३ विद्यायोनिःसम्बन्धेभ्यो युज् । ४।३।७७। अनष्टम् । ४।३।७८।

४ तेन दीन्यनिःखनतिजयतिजिनम् । ४।४।२। हरति । चर्गति । ४।४।२।

पञ्चसु भुक्ते ( पाँच बार खाता है )

इसी प्रकार—पट्स्व, सप्तस्व आदि ।

इस अर्थ में एक बार के लिए 'सकृत्' शब्द है और द्वि, त्रि, चतु

के अनन्तर सुच् ( स् ) लगता है—

द्वि —दो बार, त्रि, चतु ।

बहु के अनन्तर वृत्तसुच् और धा दोनों प्रत्यय लगते हैं—

बहुवृत्त, बहुधा—बहुत बार ।

### शेषिक

१३८-<sup>१</sup>मे अथ जिनका बोध अपत्यार्थ, चातुर्यिक, रत्ताथ्य प्रत्ययो मे नहीं होता वे तद्धित अर्थ पाणिनि व्याकरण में 'शेष' शब्द अतलाये गये हैं । शेष तद्धित अर्थों के लिए बहुधा अण् जोड़ा जाता है उदाहरणार्थ —

चक्षुषा गृह्यते ( रूप ) = चाक्षुष ( चक्षुप् + अण् ) ।

श्रवणेन श्रूयते ( शब्द ) = श्रावण ( श्रवण् + अण् ) ।

अश्वेरुह्यते ( रथ ) = आश्व ।

चतुर्भिरुह्यते ( शकटम् ) = चातुरम् ।

चतुर्दश्या दृश्यते ( रत्न ) = चानुर्दशम् ।

( क ) ग्राम शब्द के अनन्तर शेषिक प्रत्यय यत् और खल् ( ईत् ) होते हैं —ग्राम्य, ग्रामीण ।

अचैर्दीव्यति = आक्षिप ( अक्ष + ठक् ) — ऐसा मनुष्य जो  
( पैसे ) में जुधा खेलता है ।

अभ्या म्वनति = आभ्रिक — फावड़े से खोदने वाला ।

अचैर्जयति = आक्षिप — पाँसों से जीतने वाला ।

उदुपेन तरति = औदुपिक — डोंगी से तैरने वाला ।

हस्तिना चरति = हान्निक — हाथी के साथ चलने वाला ।

( च ) अस्ति नास्ति, विष्ट इनके अनन्तर मति के अर्थ में, 'प्र  
वाची शब्दों के अनन्तर, 'यह ग्रहरण इस के पास है' इस अर्थ में,  
यात के करने का शील ( स्वभाव ) हो उसके अनन्तर, और जिस काम या  
नियुक्त किया गया हो उसके अनन्तर मनुष्य का बोध कराने के लिए प्र  
प्रत्यय लगता है, जैसे

अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य स = आस्तिक ( अस्ति + ठक् ),

नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य स = नास्तिकः ।

विष्टमिति मतिर्यस्य स = दैष्टिक ( भाग्यवादी ) ।

अस्ति ग्रहरण यस्य स = आसिक ( असि + ठक् ) ।

अपूपमक्षय शीलमस्य = आपूपिक ( अपूप + ठक् ) — जिसकी पुष्टि  
खाने की आदत हो ।

आकरे नियुक्त = आकरिक ( आकर + ठक् ) = प्रज्ञानशी ।

१ अस्तिनास्तिविष्ट मति ४ । ४ । ६० । ग्रहरणम् । ४ । ४ । ६० ।

२ । ४ । ४ । ६१ । तत्र नियुक्तः । ४ । ४ । ६६ ।

घु प्राच्, अपाच्, उदच् प्रतीच् शब्दों के अनन्तर यत् होता है —  
दियम् प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम् प्रतीच्यम् ।

प्रमा इह, फ, नि, तमि प्रत्ययान्त शब्द तथा प्रल् प्रत्ययान्त शब्द  
अनन्तर त्यप् ( ल्य ) आता है — प्रमात्य, इहत्य, फस्य नित्य ततस्य,  
तस्य कुतस्य, यतस्य प्रादि, कुशस्य तत्रस्य, अत्रस्य, यशस्य आदि ।

( ल्य ) जिस शब्द के अरों में पहला स्वर वृद्धि वाता ( या मे प्रौ )  
उन शब्दों को तथा त्यद् आदि ( त्यद्, तद् यद्, एतद् इत्म् यदस्,  
क, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम् ) शब्दों को पाणिनि ने ' वृद्ध ' नाम  
दिया है, इन वृद्धों के अनन्तर शेषिक छ ( इय ) प्रत्यय लगता है जैसे—

शाला + छ = शालीय, माला + छ = मालीय, तद् + छ = तदीय,  
यनीय, एतदीय युष्मदाय, अस्मनीय, भवदीय आदि ।

( ग ) युष्मद् और अस्मद् शब्दों के अनन्तर इसी अर्थ में छ के

१ युप्रागपागुदकप्रतीचो यत् । ४ । २ । १०१ । अमेहस्वतसिप्रेम्य पृव ।  
० । त्यन्नेधुंय इति वक्तव्यम् । वा० ।

२ वृद्धियस्याचामादिस्तत्पृढम् । त्यदादीनि च । १ । १ । ७१-७४ ।

डाच्छ । ४ । २ । ११४ ।

३ युष्मदस्मदोरन्यतरस्या वृद्ध । तस्मिन्नपि च युष्मावास्माकौ

४ । ३ । १-२ ।

( ६ ) वश में आया हुआ ' के अर्थ में वश के अनन्तर, अनुवृत्त के अर्थ में धम, पथ, अर्थ और न्याय के अनन्तर, प्रिय के अर्थ में हृद् (हृदय) के अनन्तर, तथा यदि किसी वस्तु के लिए अच्छा और योग्य कोई हो तो वस्तु के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे—

वशागत = वश्य (वश + यत्), धर्मादापेत = धर्म्यम् (धम + यत्) — धर्मानुवृत्त), पथ्यम्, अर्थ्यम्, न्याय्यम्, हृदयस्य प्रिय = हृद्यजन) — हृद् + यत् — (प्रिय), शरणे साधु = शरण्य (शरण + यम्) — शरण लेने के लिए अच्छा), कर्मणि साधु = कर्मण्य — ( काम के लिए अच्छा ) ।

( ७ ) जिस वस्तु के जो योग्य होता है उस मनुष्य का बोध कराने के लिए उस वस्तु के अनन्तर ठञ् आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे—

प्रस्थमर्हति असौ पाथक = प्रास्थिक ( प्रस्थ भर अन्न के योग्य ) — स्थ + ठञ्,

द्रौणिक — द्रोण + ठञ् ;

श्वेतच्छत्रमर्हति = श्वेतच्छत्रिक — श्वेतच्छत्र + ठक् ;

इसी अर्थ में दण्ड आदि ( दण्ड, मुसल, मधुपर्क, वशा, अर्थ, मेघ, मेषा, सुवर्ण, उदक, वध, युग गुहा, भाग, इभ, भद्र ) शब्दों के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे —

१ वशा गत । धमपथ्यर्थन्यायादनपेते । हृदयस्य प्रिय । तत्र साधु ।

१।४।८६, ४२, ४५ ६८ ।

२ तद्धति १५।१ ६३। दण्डादिभ्य १५।१।६६।

अतिरिक्त अण् और खञ् भी विकल्प से हो सकते हैं, किन्तु इस दश में युष्मद् और अस्मद् के स्थान में युष्माक और अस्माक तथा एकवचन में तवक और ममक, खञ् और अण् प्रत्यय लगाने के पूर्व आदेश हो जाते हैं—

युष्मद्—युष्माक ( + अण् ) = यौष्माक, ( + खञ् ) = यौष्माकीन् ( तुम्हारा ) । तवक ( + अण् ) = तावक, ( + खञ् ) = तावकीन् ( तेरा ) । युष्मद् ( + छ् ) = युष्मदीय ।

अस्मद्—अस्माक ( + अण् ) = आस्माक, ( + खञ् ) = आस्माकीन् ( हमारा ) । ममक ( + अण् ) = मामक, ( + खञ् ) = मामकीन् ( मेरा ) । अस्मद् ( + छ् ) = अस्मदीय ।

नोट—'विशेषण विचार' में इनका उल्लेख आ चुका है ।

( घ ) कालवाची शब्दों के अनन्तर शपिक ठञ् प्रत्यय होता है—

मास + ठञ् ( इक् ) = मासिक, सावत्सरिक, सायंप्रातिक, पौन पुनिक आदि ।

परन्तु सन्धिबेला शब्द, सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् तथा ऋतुवाची शब्द ( ग्रीष्म आदि ) और नक्षत्रवाची शब्दों के अनन्तर अण् होता है—

सान्धिबेत्वम्, सान्ध्यम्, आमावास्यम्, त्रयोदशम्, चतुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रतिपदम्, ग्रीष्मम् ( वार्षिकम्—वर्षा + ठक्, प्रावृष्यम्—प्रावृप् + पृष्य ), गारुडम्, हेमन्तम्, शिशिरम्, वासन्तम्, पौषम् आदि ।

१ कालाट्टञ् । ३ । ३ । ११ ।

२ सन्धिबेलाद्यतुनक्षत्रेभ्योऽण् । ४ । ३ । १६ ।

दण्ड्य, सुसल्य, मधुपर्क्य, अर्घ्य, मेध्य, मेध्य, वध्य, युग्म, गुह्य, भग्य आदि ।

( झ ) प्रयोजन के अर्थ में ठञ् प्रत्यय लगता है, जैसे—

इन्द्रमह प्रयोजनमस्य पदार्थस्य = ऐन्द्रमाहिक ( पदार्थ ) के उरसव के लिए । प्रयोजन का अर्थ फल अथवा कारण दोनों हैं ।

( ट ) जिम् रँग से रँगी हुई वस्तु हो उस रङ्गवाची शब्द के अण् प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

कपाय + अण् = कापाय वस्त्रम्,

मञ्जिष्ठा + अण् = माञ्जिष्ठम् ।

निन्तु लाक्षा, रोचन, शकल, कर्दम के अनन्तर ठक् (लाक्षिक रोचनिक शाकलिक कार्दमिक) , नीली के अनन्तर अन् (नीली + अन् = नील) पीत के अनन्तर कन् ( पीतकम् ) , तथा हरिद्रा और महारजन के अनन्तर अण् ( हरिद्रम्, महारजनम् ) इसी अर्थ में लगता है ।

( ड ) नक्षत्र से युक्त समयवाची शब्द बनाने के लिए नक्षत्रवाची शब्द में अण् जोड़ते हैं, जैसे—

१ प्रयोजाम् । १।१।१०६

२ तेन रक्त रागात् ४।२।१। लाक्षारोचनाट्ठक् । ४।२।२। शकलकर्दमानां सुपमत्थानम् (वा०) । नील्या अन् (वा०) । पीताशकन् (वा०) । हरिद्रा महारजनाभ्यामण् (वा०) ।

३ नक्षत्रेण युक्त फल । ४।२।३॥

( च ) साय, चिर, प्राहे, प्रगे शब्दों के अनन्तर तथा अव्ययों के अनन्तर शेषिक ट् ट्पुल ( अन ) लगते हैं और शब्द और प्रत्यय के बीच व भी ऊपर से आ जाता है —

साय+त्+ट्पुल ( अन ) = सायत्तनम्, चिरन्तनम्, प्राहेत्तनम्, प्रगेत्तनम्, दोषात्तनम्, दिषात्तनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम्, इत्यादि ।

( इ ) दो के बीच में अतिशय दिखाने के लिण तरप् और यमुन् प्रत्यय लगते हैं और दो से अधिक के बीच में दिखाने के लिण तमप् और इष्टम् ।

जु से लघीयस्, जुतर ( टा के लिण ) और लघिष्ठ और जुतम दो से अधिक के लिण । इनका विस्तारपूर्वक वर्णन पिगे-या विचार (१०३) में आ चुका है ।

( ज ) किम् के अनन्तर, एत् प्रत्ययान्त ( प्राहे, प्रगे आदि ) शब्दों के अनन्तर अव्ययों के अनन्तर तथा तिङन्त के अनन्तर तमप् + आमु = तमाम् ) लगाया जाता है—

किन्तमाम्, प्राहेतमाम्, उच्चस्तमाम्—( खूब ऊँचा), पचतितमाम्—( पूरा अच्छी तरह पकाता है ) । इसी प्रकार—नीचैस्तमाम्, गच्छतितमाम्, दतितमाम् आदि ।

१ सायचिरप्राहेप्रगेऽव्ययेभ्यष्टुट्पुलौ तुट् च । १।३।२३।

२ अतिशयने तमबिष्टनौ । तिङरच २।३।२४-२६।

तरतमपौ च । १।३।२२।

द्विषचनविभज्योपपदे तरबीयमुनौ । १।३।२७।

३ किमेत्य ययधादास्वद्रव्य-प्रकर्षे । १।३।३१।



चित्रया युक्त मासः=चैत्र ,

पुण्येण युक्ता रात्रि पौषी रात्रि इत्यादि ।

( ड ) जिस वस्तु में खाने पीने की वस्तु तय्यार की जाए तो यह बोध कराने के लिए कि अमुक वस्तु में यह वस्तु तय्यार हुई है, तो उस वस्तु अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

आप्रे सस्ज्जता यवा भ्राष्ट्रा (माइ में भूने हुए जी) ।

पपसि सस्ज्जत भक्त = पायसम् ( दूध में रने चावल ) आदि ।

किन्तु दधि शब्द के अनन्तर ठक लगता है ।

दधि सस्ज्जतम् = दाधिकम् ( दही में यनी चीज़ ) ।

किसी वस्तु (मिर्च, घी आदि) में सस्कार की हुई वस्तु के अनन्तर ठक् लगता है, जैसे—

तैलेन सस्ज्जत = तैलिकम् ( तेल में यनी वस्तु ), घातिक्कम् ( घी से यनी ), मारीक्किकम् ( मिर्च में छींकी ) ।

( ढ ) जिस खेल में कोई प्रहरण प्रयोग में लाया जाए तो उस खेल का बोध कराने के लिए, प्रहरणवाची शब्द के अनन्तर य ( अ ) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे —

दण्ड प्रहरणमस्या म्हीढायां सा दाण्डा ( डडेवाजी ),

मुष्टि प्रहरणमस्या म्हीढायां सा मौष्ठा ( मुक्केवाजी ),

१ सस्ज्जत भक्ता । १४।२।१६। दण्डण्डक् । १४।२।१८ सस्ज्जतम् । १४।४।३।

२ तदस्या प्रहरणमिति म्हीढायां य । १४।२।२७।

( भ ) कुछ कमी दिवाने के लिए कल्प ( कल्प ) देश्य, देशीय ( देशीय ) प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे —

विद्वत्प्रत्यय, विद्वद्देश्य, विद्वद्देशीय — कुछ कम विद्वान् पुरुष ।  
पञ्चवर्षकल्प, पञ्चवर्षदेश्य, पञ्चवर्षदेशीय — कुछ कम पाँच बारस का  
यज्ञतिरूपम् — जरा कम यज्ञ करता है ।

( ट ) अनुकम्पा का बोध कराने के लिए कल् ( क ) प्रत्यय लगे  
हैं, जैसे —

पुत्रक ( बेचारा लड़का ), मित्रक ( चेचास भिरारी ) आदि ।

( ठ ) जब कोई पद कुछ से कुछ हो जाए, इतनी बदल जा  
काली न हो तो काली हो जाए, मोठी न हो तो मोठी हो जाए इ  
सां चि प्रत्यय लगा कर इस अर्थ का बोध कराते हैं । यह प्रत्यय  
कृ धातु, भू धातु और अस् धातु के योग में आता है । चि का व  
जाता है, किन्तु पूर्व पत्र का अकार प्रथवा प्राकार ईकार में बदल  
और यदि अन्य स्वर पूर्व में आये तो वह दीर्घ हो जाता है, जैसे —

अकृण्वन् कृण्वन् क्रियते ( कृण्वन् + क्रियते + चि ) = कृण्वन् + इ + चि  
कृण्वन्क्रियते ।

१ ईषदसमासौ कल्पन्दैव्यदेशीयर । १।३।१७।

२ अनुकम्पायाम् । २।३।७६।

३ कृष्णनियोगे सम्पद्यकर्तारि चि । २।४।२०। अभूवत्  
वक्तव्यम् । वा० । अस्य च्यौ । ७।४।३२। स्वी च । ७।४।३३।

कोई चीज़ पढ़नेवाले या जाननेवाले का बोध कराने के लिए अ  
अ ) लगता है, जैसे —

व्याकरणमधीते वेद वा = वेद्याकरण ( व्याकरण + अ । )

( त ) “इसमें वह वस्तु है” “उसमें यह वनी है”, “इस में उसका  
निवास है”, “यह उससे दूर नहीं है”—ये सब अर्थ दिखाने के लिए  
प्रत्यय जोड़ते हैं, जैसे:—

उदुम्वरा। मन्यस्मिन् देशे इति धौदुम्वर देश ,

कुशाग्रेन निर्वृत्ता = कौशाग्री ( नगरी ),

शिषीनां निवासो देश = शेष देश ,

विदिशया अदूरभव ( नगरम् ) = वैदिशम् ।

इन चार अर्थों के बोधक प्रत्ययों को चातुरर्थिक तद्धित प्रत्यय कहते हैं ।

यदि जनपद का अर्थ जाना हो तो चातुरर्थिक प्रत्ययों का लोप हो  
जाता है ।

पञ्चालानां निवासो जनपद = पञ्चाला, कुरव, वङ्गा, फाँवङ्गा  
आदि ।

जनपदवाची शब्द सदा बहुवचन में रहते हैं ।

१ तदधीते तद्वेद । ४।२।११।

२ तदस्मिन्नस्तीति देशे तज्ज्ञाग्नि । नेन निर्वृत्तम् । तस्य निवास । अदूर-  
वश्च । ४।२।६७-७० ।

३ जनपदे लुप् । ४।२।८१।

अग्न्या गन्ता भवति गन्तोभवति (जो गन्ता नहीं है वह गन्ता होता है) ।

अगन्ता गन्ता स्यात् = गन्तास्यात् (जो गन्ता नहीं है वह गन्ता हो

।) । शुचीभवति, पट्टकरोति इत्यादि ।

( ड ) जब किसी वस्तु का दूसरी वस्तु में ही परिणत हो जाना माना हो तो माति ( सात् ) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे —

इन्धनम् अग्नि भवति = इन्धनम् अग्निसात् भवति = ( ईंधन आग हो जाता है ) ।

अग्नि भस्मसात् भवति — आग भस्म हो जाती है ।

## प्रकीर्णक

१३९—उपर उल्लिखित अर्थों के अतिरिक्त और भी कितने ही के लिए तद्धित प्रत्यय जाड़े जाते हैं । प्रधान गद्याय अथ नीचे दिए हैं ।

( क ) यदि किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की सत्ता हो स्यात् वह वहाँ मान हो तो जिस वस्तु में सत्ता हो उसके अनन्तर अण् प्रत्यय जोड़ा है, जैसे—

सुगन्धे भव = सौगन्ध ( सुत् + अण् )—सुगन्ध में वर्तमान है ।

१ विनाया साति फास्त्र्ये । १ । १ । १२ ।

२ तत्र भव । ४ । ३ । १३ ।

इ, ई, उ, ऊ में अन्त होन वाले शब्दों में चातुरधिक मतुप् प्रत्यय लगता है, जैसे—इष्टमती ।

## नवम सोपान

### क्रिया विचार

१४०—संस्कृत भाषा के प्रायः सभी शब्द धातुओं से बनते हैं, न्या सज्ञा, क्या विशेषण, न्या क्रिया, क्या अव्यय आदि । कुछ शब्द ऐसे हैं जो कि ऊपर से धातु से बने नहीं जान पड़ते, किन्तु वैयाकरण उनको भी धातुओं से निर्मित सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । व्याकरण की दृष्टि से धातु शब्द का अर्थ है 'श-नयानि', अर्थात् जिससे शब्दों की उत्पत्ति हो । 'धातुपाठ' म कुटा १८८० धातुओं की गणना है, इन्हीं से प्रत्यय विशेष जोड़ जोड़ कर संस्कृत भाषा के शब्द बनते हैं ।

धातुओं में कृदन्त प्रत्यय जोड़ कर सज्ञा, विशेषण आदि बनते हैं । इनका विचार आगे ग्यारहवें सोपान में किया जायगा । धातुओं से कुछ (तिङ्) प्रत्यय जोड़ कर क्रियाएँ बनाई जाती हैं । इन सोपान में क्रिया की दृष्टि से ही विचार किया गया है ।

(क) धातुएँ दस विभागों में विभक्त की गई हैं । इनको गण कहते हैं । उनके नाम ये हैं—भ्यादि, अदादि, लुहोत्यादि, दिधादि,

इसी अर्थ में शरीर के अवयवों में तथा ( शिश्, वां, पू, त रहस्, उन्वा, साक्षिन्, आदि, अन्त, मेध, यूध, न्याय, वश, कश्, जघन), इन शब्दों में यत् ( य ) जोड़ा जाता है—

दन्त्यम्, मुख्य नासिक्य, दिश्य, पुग्य, वर्ग्य (पुरुष), पन्थ ( राहस्य ( मन्त्रम् ), उग्यम्, साक्ष्यम्, आद्य ( पुरुष ) आद्य आदि, मेध्य, यूध्य, न्याय्य, वश्य काय्य, मुख्य ( सेना आदि के आह्वय के अर्थ ) जघन्य ( नीच ) । इनका लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होगा ।

इसी अर्थ में कुछ ध्वन्ययीभाव समासों के अनन्तर 'न्य' ( न ) लगता है, जैसे परिमुख्य भव = पारिमुख्यम् ।

( २ ) यदि किसी स्थान में किसी मनुष्य का निवास ( अथवा पूर्वजो का ) हो और यह बतलाना हो कि यह असुक्त स्थान निवासी है तो स्थानवाचक शब्द से अण् प्रत्यय लगता है, जैसे—

मथुरायां निवास अभिजनो वाऽस्य = माथुर भाटनागर ।

यदि किसी देश को जनविशेष के निवास अथवा और किसी मनुष्य का बतलाना हो तो जावाची शब्द के अनन्तर अण् लगता है, जैसे—

शिषीणा विषयो देश = शैव देश ( शिषि लोगों के रहने का देश )

१ दिगादिभ्यो यत् शरीरावयवाच्च । ४ । ३ । २४ २२ ।

२ शब्दध्वन्ययीभावाच्च । ४ । ३ ।

३ सोऽस्य निवास ४ । ३ ।

४ विषयो देश । ४ । २ ।

स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, मयादि और चुरादि । इनका क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम तथा दशम गण भी कहते हैं । गण का अर्थ है “समूह” । धातुओं के उस समूह को जिसके आदि में भू धातु है भ्वादिगण कहते हैं, इसी प्रकार अदादि भी हैं । जिन धातुओं के रूप एक प्रकार से चलते हैं वे एक गण में रक़्ती गई हैं । प्रत्येक गण में रूप चलाने के लिए न्या विशेषता लानी होती है यह आगे प्रत्येक गण के विचार के समय उल्लेख किया जाएगा ।

(ख) रूप चलाने की सुगमता के लिए धातुओं का विभाग सेट्, वेट्, अनिट्, इन तीन भागों में भी किया जाता है । सेट् का अर्थ है इट् सहित, अर्थात् जिनके रूपों में धातु और प्रत्यय के बीच में एक “इ” आ जाती है । यह “इ” कुछ ही प्रत्ययों के पूर्व आती । सब के पूर्व नहीं । वेट् ( वा + इट् ) विभाग में वे धातुएँ हैं जिनमें उपरान्त इ विकल्प में आती है और अनिट् विभाग में वे हैं जिनमें इट् नहीं लाई जाती ।

(ग) कुछ धातुएँ सकर्मक होती हैं, और कुछ अकर्मक । सकर्मक धातुओं के रूपों के साथ किसी कर्म की आकांक्षा रहती । अकर्मक धातुओं के रूपों के साथ नहीं ।

१ भ्वाद्यदादी जुहोत्यादि दिवादि स्वादिरेव च ।

तुदादिश्च रुधादिश्च तनादिक्रिचुरादय ॥

( ग ) यदि किसी वस्तु, स्थान अथवा मनुष्य आदि से कोई वस्तु वे और यह दिखाना हो कि यह अमुक स्थान, अमुक वस्तु, अथवा मनुष्य आई है तो स्थानादिवाचक शब्द के अनन्तर बहुधा अण् प्रत्यय लगाते हैं जैसे—

सुग्नादागत सौगन् ।

आमदनी के स्थान ( दुकान, कारखाना ) आदि के अनन्तर ठक् ( ठक ) होता है, जैसे—

शुल्कशालाया आगत शुल्कशालिक ।

जिनमें विद्या अथवा जन्म ( योनि ) का सम्बन्ध हो उन से, यदि कारान्त शब्द न हों, तो युज् ( अक ) होता है, जैसे—

उपाध्यायादागता विद्या—उपाध्यायिका

पितामहान्तगत धन पैतामहकम्, अन्यथा आतृकम्, पेतृकम् ।

( ग ) यदि कोई मनुष्य किसी वस्तु से जुधा मेलो कुछ सो दे, कुछ ले, तैरे, चले तो उस वस्तु के अनन्तर ठक् प्रत्यय लगाकर उस मनुष्य का बोध होता है, जैसे—

१ तत आगत । ४।३।७४।

२ ठगायस्थानेभ्य । ४।३।७५।

३ विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो युज् । ४।३।७७। अतएव । ४।३।७८।

४ तेन दीन्यतिजनतिजयतिजितम् । ४।४।२। तरति । चरति । ४।४।२।



(घ) मस्कृन् भाषा में दो पद होते हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद का सीधा अर्थ है “वह पद जो दूसरे के लिए हो” और आत्मनेपद का अर्थ है “वह पद जो अपने लिए हो”। संभवतः ऐसी क्रियाएँ जिनका फल दूसरे के लिए हो परस्मैपद में होनी चाहिये और ऐसी जिनका फल अपने लिए हो आत्मनेपद में होनी चाहिये, जैसे—म घपति (वह घाता है) यहाँ ‘घपति’ परस्मैपद की क्रिया है और इससे यह तात्पर्य निकलता है कि घाने की क्रिया का जो फल होगा वह दूसरे के लिए होगा, घाने वाले के लिए नहीं, यदि स घपते (वह घाता है) कहा जाय जहाँ ‘घपते’ आत्मनेपद की क्रिया है तो इसका अर्थ होगा कि घाने की क्रिया का फल घाने वाले को मिलेगा। परन्तु क्रिया के रूपों को इस दृष्टि से प्रयोग करने का नियम केवल व्याकरणों में ही दिखाया गया है, मस्कृन् के प्रत्यकार प्रायः सभी इस नियम का उल्लंघन करते आते हैं। धातुएँ पदों के हिसाब से भी विभक्त हैं, कुछ परस्मैपद में ही होती हैं, कुछ आत्मनेपद में ही और कुछ दोनों में। इसमें परस्मैपदी धातु, आत्मनेपदी धातु और उभयपदी धातु ये तीन विभाग धातुओं के होते हैं। कभी कभी विशेष दशा में कोई एक पद की धातु दूसरे पद की हो जाती है—इसका विचार आगे किया जायगा।

१४१—क्रिया बनाने के लिए धातुओं के रूप तीन धातुओं में होते हैं—कर्तृधान्य, कर्मधान्य और भावधान्य। इनको कभी कभी कर्त्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग भी कहते हैं। हिन्दी में भी इन तीनों प्रयोगों की प्रथा है, जैसे—म खाना खाता हूँ (अह

इसी अर्थ में शरीर के अवयवों में तथा ( दिश, वाग, पा, रहस, उच्चा, साक्षिन्, आदि, अन्त, मेघ, यूथ न्याय, वश, काज, सुजघन), इन शब्दों में यत् ( य ) जोड़ा जाता है—

दन्त्यम्, मुत्त्य, नासिक्य, दिश्य, पुग्य, वर्ग्य ( पुरुष ), पक्ष्य ( पक्षी ), रहस्य ( मन्त्रम् ), उख्यम्, साक्ष्यम्, आद्य ( पुरुष ) आद्य आदि, अन्त मेघ्य, यूथ्य, न्याय्य, वश्य, काज्य, मुत्त्य ( सेना आदि के अङ्ग के अर्थ में जघन्य ( नीच ) । इनका लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होगा ।

इसी अर्थ में कुछ अध्ययीभाव समासों के अनन्तर 'व्य' ( य ) लगता है जैसे परिमुख भव = पारिमुख्यम् ।

( २ ) यदि किसी स्थान में किसी मनुष्य का निवास ( भव अथवा पूर्वजों का ) हो और यह बतलाना हो कि यह प्रमुख स्थान निवासी है तो स्थानवाचक शब्द से अण् प्रत्यय लगता है, जैसे—

मथुराया निवाम अभिजनो वाऽस्य = माथुर भादनागर ।

यदि किसी देश के जनविशेष के निवास अथवा और किसी सम्बन्ध में बतलाना हो तो जावाची शब्द के अनन्तर अण् लगाते हैं, जैसे—

शिबीना विषयो देश = शैब देश ( शिबि लोगों के रहने का देश )

१ दिगादिभ्यो यत् शरीरावयवाच्च । ४ । ३ । २४ २५ ।

२ अध्ययीभावाच्च । ४ । ३ । २६ ।

३ योऽस्य निवाम ४ । ३ । २६ । अभिजनश्च । ४ । ३ । २७ ।

४ विषयो देशे । ४ । २ । २२ । तस्य निवास । ४ । २ । २६ ।

( ४, ५, ६ ) तीन भूतकाल—संस्कृत में भूतकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्षभूत और सामान्यभूत हैं। इनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर है। अनद्यतनभूत का अर्थ है ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात् इस काल के रूप ऐसी दशा में प्रयोग में लाए जाने चाहिए जब क्रिया आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो, जैसे—‘मैं आज पढ़ने गया’, यहाँ ‘गया’ शब्द का अनुवाद संस्कृत में अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी और से होगा। परोक्षभूत का अर्थ है ऐसा अतीतकाल जो आँखों के सामने न हुआ हो। यदि कोई क्रिया अपनी आँखों के सामने हुई हो तो उस दशा में परोक्षभूत का प्रयोग न होगा, जैसे—‘मैं पाठशाला गया’, यहाँ जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इस लिए यहाँ “गया” का अनुवाद परोक्षभूत के रूप में न करके किसी और के रूप से करना होगा। तीसरा भूतकाल अर्थात् सामान्यभूत मत्र कहीं प्रयोग में लाया जा सकता है, चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो अथवा वरसों पहले।

नोट—संस्कृत में एक साधारण भूतकाल वर्तमान काल की क्रिया

१ इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में होता ही नहीं, क्योंकि स्वयं की हुई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती। परन्तु पागलपन की अवस्था में किया हुआ काम वस्तुतः परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है, क्योंकि पागल मनुष्य की क्रियाएँ समझ नहीं बही जाती।

के अनन्तर 'स्म' शब्द जोड़ कर बनाया जाता है। यह प्रायः हिस्से कहानियों में वर्णन के काम में लाया जाता है, जैसे —

कश्चिद्राजा प्रतिवसन्ति स्म ।

(७, ८) दोनो भविष्यकाल—भविष्यकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो काल हैं—अनद्यतनभविष्य और सामान्य भविष्य। इन में से पहले का प्रयोग ऐसी दशा में नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही होने को हो। दूसरे का सब कहीं प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्लिङ् का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है, जैसे—तुमे मो वर्ष तक जिघ्रो—त्व जीव्या शरदा गतम्। कभी कभी आशीर्वाद् अथवा आकांक्षा प्रकट करने में आशा का अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे—त्व जीव शरदा गतम्, जीवेम शरदा गतम् इत्यादि।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो, जैसे—यदि यह आता तो मैं उसके साथ जाता (यदि स आगमिष्यत्तर्हि अह नून तेन सह अगमिष्यम्) इस क्रियातिपत्ति के अर्थ में कभी २ भविष्य भी प्रयोग में आता है। यथा—यदि वह आएगा तो मैं उसके साथ जाऊँगा (यदि स आगमिष्यति तर्हि अह तेन सह गमिष्यामि)। इसी प्रकार कभी वर्तमान और कभी आशा के रूप भी काम में लाए जाते हैं।

परस्मैपद

	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु०	सीत्	स्ताम्	सु
म० पु०	सी	स्तम्	स्त
उ० पु०	सम्	स्य	स्म

आत्मनेपद

	एकवचन	द्वि वचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्त	साताम्	सत
म० पु०	स्या	साथाम्	ध्वम्
उ० पु०	सि	स्वहि	स्महि

पञ्चम प्रकार के प्रत्यय ये हैं —

परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	इष्टाम्	इषु
म० पु०	ई	इष्टम्	इष्ट
उ० पु०	इषम्	इष्य	इष्म

आत्मनेपद

प्र० पु०	इष्ट	इषाताम्	इषत
म० पु०	इष्टा	इषाथाम्	इषध्वम्
उ० पु०	इषि	इष्यहि	इष्महि

छठी प्रकार के रूप केवल परस्मैपद में होते हैं और उसके

( ४, ५, ६ ) तीन भूतकाल—संस्कृत में भूतकाल की क्रिया बाध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्षभूत और सामान्यभूत हैं। इनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर है। अनद्यतनभूत का अर्थ है ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात् भूतकाल के रूप ऐसी दशा में प्रयोग में लाए जाने चाहिए जब आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो। जैसे—‘म आज पढ़ने गया’, यहाँ ‘गया’ शब्द का अनुवाद संस्कृत अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी आर से होगा। परोक्षभूत का अर्थ है ऐसा अतीतकाल जो आँखों के सामने न आता हो। यदि कोई क्रिया अपनी आँखों के सामने हुई है तो उस समय परोक्षभूत का प्रयोग न होगा, जैसे—‘मे पाठशाला गया’, यहाँ जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इस लिए यहाँ “गया” का अनुवाद परोक्षभूत के रूप में न करके किसी आर के रूप से करना होगा। तीसरा भूतकाल अर्थात् सामान्यभूत सब कहीं प्रयोग में लाया जा सकता है, चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो या नहीं।

नोट—संस्कृत में एक साधारण भूतकाल वर्तमान काल की क्रिया

१ इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में होता ही नहीं, क्योंकि य की हुई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती। परन्तु पागलपन की अवस्था में क्रिया हुआ काम वस्तुतः परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है, क्योंकि पागल मनुष्य की क्रियाएँ समझ नहीं कही जाती।

प्रत्यय पाँचवीं प्रकार के ही हैं केवल उनके पूर्व सू और जोड़ दिया जाता है, सीत् आदि ।

सातवीं प्रकार के प्रत्यय ये हैं —

### परस्मैपद

प्र० पु०	सत्	सताम्	सन्
म० पु०	स	सतम्	सत
उ० पु०	सम्	साथ	साम

### आत्मनेपद

प्र० पु०	सत	साताम्	सन्त
म० पु०	सथा	साथाम्	सध्वम्
उ० पु०	सि	साधहि	सामहि

सात प्रकार के सामान्यभूत के रूप कौन और किस धातु के होते हैं, यह प्रवेशिका व्याकरण में बताना कठिन है । गण विशेषों की मुख्य २ धातुओं के जो रूप होते हैं वे आगे दिखा दिये गये हैं ।

### ( ज ) अनद्यतनभविष्य ( लुट् )

#### परस्मैपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तार
म० पु०	तासि	तास्थ	तास्थ
उ० पु०	तास्मि	तास्व	तास्म

के अनंतर 'स्म' शब्द जोड़ कर बनाया जाता है। यह प्रायः किसी कहानियों में घटान के काम में लाया जाता है, जैसे —

करिचद्राजा प्रतिवमन्ति स्म ।

(७, ८) दोनों भविष्यकाल—भविष्यकाल की क्रिया का वाचक बनाने के लिए दो काल हैं—अनद्यतनभविष्य और सामान्य-भविष्य। इन में से पहले का प्रयोग ऐसी दशा में नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही होने को हो। दूसरे का सब कहीं प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्लिङ्ग का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है, जैसे—तुम सौ वर्ष तक जिओ—त्व जीव्या शतम्। कभी कभी आशीर्वाद अथवा आकांक्षा प्रकट करने को आज्ञा का अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे—त्व जीव शतम्, जीवेम शतम् इत्यादि।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो, जैसे—यदि वह आता तो मैं उसके साथ जाता (यदि स आगमिष्यत्तर्हि अहं नूनं तेन सह अगमिष्यम्) इस क्रियातिपत्ति के अर्थ में कभी २ भविष्य भी प्रयोग में आता है। यथा—यदि वह आएगा तो मैं उनके साथ जाऊँगा (यदि स आगमिष्यति तर्हि अहं तेन सह गमिष्यामि)। इसी प्रकार कभी वर्तमान और कभी आज्ञा के रूप भी काम में लाए जाते हैं।

स० व्या० प्र०—२०



आत्मनेपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तार
म० पु०	तासे	तासाथे	ताथ्वे
उ० पु०	ताहे	तास्वहे	तास्महे

धातुओं में ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं। इनमें प्रथम पुरुष के रूप कर्तृधाचक ऋकारान्त दात् आदि ( ५० ग ) के रूप हैं और मध्यम तथा उत्तम पुरुष में प्रथमा एकवचन में अस् ( होता ) के वर्तमान काल के रूप जोड़ देने में निकल सकते हैं।

( भ ) सामान्य भविष्य ( लृट् )

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्यति	स्यत	स्यति
म० पु०	स्यसि	स्यथ	स्यथ
उ० पु०	स्यामि	स्याध	स्याम

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म० पु०	स्यसे	स्येथे	स्यथ्वे
उ० पु०	स्ये	स्याधे	स्यामहे

( ४, ५, ६ ) तीन भूतकाल—संस्कृत में भूतकाल की क्रिया बोध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्षभूत और सामान्यभूत हैं। इनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर है। अनद्यतन का अर्थ है ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात् काल के रूप में ऐसी दशा में प्रयोग में लाए जाने चाहिए जहाँ आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो जैसे—‘म आज पढ़ने गया’, यहाँ ‘गया’ शब्द का अनुवाद संस्कृत अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी और में होगा। परोक्षभूत का अर्थ है ऐसा अतीतकाल जो आँखों के सामने न आया हो। यदि कोई क्रिया अपनी आँखों के सामने हुई है तो उस में परोक्षभूत का प्रयोग न होगा, जैसे—‘म पाठशाला गया’, जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इस लिए यहाँ “गया” का अनुवाद परोक्षभूत के रूप से न करके किसी और के रूप से लेना होगा। तीसरा भूतकाल अर्थात् सामान्यभूत सब कहीं प्रयोग में लाया जा सकता है, चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो या बरसा पहले।

नोट—संस्कृत में एक साधारण भूतकाल वर्तमान काल की क्रिया

१ इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में होता ही नहीं, क्योंकि य की हुई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती। परन्तु पागलपन की अवस्था में क्रिया हुआ काम वस्तुतः परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है, क्योंकि पागल मनुष्य की क्रियाएँ समझ नहीं कही जाती।

## ( ढ ) आशीर्लिङ्

## परस्मैपद

प्र० पु०	यात्	यास्ताम्	यास्तु
म० पु०	या	यास्तम्	यास्त
उ० पु०	यासम्	यास्थ	यास्म

## आत्मनेपद

प्र० पु०	सीष्ठ	सीयान्ताम्	सीरन्
म० पु०	सीष्ठा	सीयास्याम्	सीध्यम्
उ० पु०	सीय	सीर्षहि	सीमहि

## ( ठ ) क्रियातिपत्ति ( लृङ् )

## परस्मैपद

प्र० पु०	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
म० पु०	स्य	स्यतम्	स्यत
उ० पु०	स्यम्	स्याव	स्याम

## आत्मनेपद

प्र० पु०	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
म० पु०	स्यथा	स्येथाम्	स्यध्यम्
उ० पु०	स्ये	स्याधहि	स्यामहि

नोटः—इस प्रकार ऊपर दसों लकारों के प्रत्यय दिए गए हैं । इनमें अनपठनभूत, सामान्यभूत और क्रियातिपत्ति में धातु के पूर्व अ—अ

के अनन्तर 'स्म' शब्द जोड़ कर बनाया जाता है। यह प्राथ विस्से कहानियों में वर्णन के काम में लाया जाता है, जैसे —

करिचद्राजा प्रतिवसनि स्म ।

(७, ८) दोनो भविष्यकाल—भविष्यकाल की क्रिया का बाध कराने के लिए दो काल हैं—अनद्यतनभविष्य और सामान्य भविष्य। इन में से पहले का प्रयोग ऐसी दशा में नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही होने की हो। दूसरे का सब कहीं प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्लिङ् का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है, जैसे—तुम सौ वर्ष तक जिञ्चो—त्य जीव्या शरदा शतम्। कभी कभी आशी वाद अथवा आकाक्षा प्रकट करने की आज्ञा का अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे—त्य जीव शरदा शतम्, जीवेम शरदा शतम् इत्यादि।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो, जैसे—यदि यह आता तो मैं उसके साथ जाता (यदि स आगमिष्यत्तर्हि अह नून तेन सह अगमिष्यम्) इस क्रियातिपत्ति के अर्थ में कभी २ भविष्य भी प्रयोग में आता है। यथा—यदि यह आएगा तो मैं उसके साथ जाऊँगा (यदि स आगमिष्यति तर्हि अह तेन सह गमिष्यामि)। इसी प्रकार कभी वर्तमान और कभी आज्ञा के रूप भी काम में लाए जाते हैं।

आता है और परोक्षभूत में धातु खल (अभ्यस्त) कर दी जाती है। अभ्यास करने के नियम ये हैं —

धातु के प्रथम स्वर को दो बार लाते हैं ( जैसे उल् का अभ्यस्त रूप उ उल् ) ; यदि प्रथम स्वर के पूर्व में कोई व्यजन हो तो उस व्यजन सहित उस स्वर को लाते हैं ( जैसे पत् से पपत् ) । यदि आरम्भ में सयुक्ताक्षर हो तो सयुक्ताक्षर के प्रथम व्यजन के साथ स्वर आता है ( जैसे प्रन्त् से पप्रन्त् ) , किन्तु यदि सयुक्ताक्षर के आदि में श्, प्, स् में से कोई हो तो दूसरा अर्थात् श्, प्, स् के बाद धाला ही व्यजन साथ धाले स्वर के साथ आता है ( जैसे स्पर्ध् से पस्पर्ध् ) । अभ्यास में आने वाला अक्षर यदि पञ्चवर्गीय का द्वितीय अथवा चतुर्थ हो तो क्रम से उसके स्थान पर प्रथम अथवा तृतीय आ जाते हैं ( जैसे द्विट् से चिन्विट्, भुज् से दुभुज् ) । कर्गीय अक्षर का अभ्यास करना हो तो उसके जोड़ का चर्गीय अक्षर जाना चाहिए ( जैसे-कम् से चकम्, गन् = कलन = चलन् ) । इसी प्रकार ह् के स्थान पर ज् ( जैसे-हु मे जुहु ) । अभ्यास में दीर्घ स्वर का ह्रस्व ( जैसे दा से ददा, नी से निनी ), न् का अ ( जैसे छ से चछ ), ए अथवा ऐ का इ ( जैसे सेष् से सिपेष् ), आर ओ अथवा औ का उ ( जैसे गोप् से जुगोप्, ढौक् से डुढौक् ) हो जाता है ।

नोट २—इस लकारों में से वर्तमान, आज्ञा, विधि और अनप्यताभूत इनको सार्वधातुक कहते हैं और शेष च को आर्धधातुक । सार्वधातुक लकारों के प्रत्यय जुड़ने के पूर्व धातुओं में प्रत्येक गण में अलग अलग क

इन दस लकारों के प्रत्यय परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों दिए जाते हैं। जो धातुएँ परस्मैपदी हैं उनमें परस्मैपद के प्रत्यय, जो आत्मनेपदी हैं उनमें आत्मनेपद के प्रत्यय तथा जो अभ्यपदी हैं उनमें परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों के प्रत्यय जुड़ते हैं। प्रत्येक लकार में तीन पुरुष और तीन वचन होते हैं। (देखिए नियम ४०)। हिन्दी में बहुधा क्रिया कर्तृवाच्य में कर्ता के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—राम जाता है, गौरी जाती है, राम गया, गौरी आई, राम जायगा, गौरी जायगी) तथा कर्मवाच्य में कर्म के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—मुझसे किताब नहीं पढ़ी जाती, मुझ से अखबार नहीं पढ़ा जाता आदि) बदलती है परन्तु संस्कृत में क्रिया लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलती (राम गच्छति या गौरी गच्छति, रामोऽगच्छत् या गौरो अगच्छत्, रामो गमिष्यति या गौरी गमिष्यति, मया पुस्तिका न पठ्यते या मया समाचारपत्र न पठ्यते आदि)।

१४२—लकारों के प्रत्यय इस प्रकार हैं—

( क ) वर्तमान काल ( लट् )

परस्मैपद

एक वचन

द्वि वचन

बहु वचन

प्र० पु० ति

तस्

अन्ति

म० पु० सि

थस्

थ

उ० पु० मि

वस्

मस्

कार कर दिया जाता है—कभी २ धातु के रूप में कुछ परिवर्तन हो जाता ( जैसे—गम् धातु का गच्छ हो जाता है, प्रच्छ् का पृच्छ् ) । आर्धधातुओं यह विकार नहीं किया जाता ( जैसे—गम् से सामान्यभूत में अगमत् आदि, प्रच्छ् से अप्राचीत् आदि ) ।

इस सोपान में केवल कतृवाच्य के रूप दिये जा रहे हैं ।  
अन्य वाच्यों का विचार अगले सोपान में किया जायगा ।

### भ्वादिगण

१४३—भ्वादिगण की प्रथम धातु भू है, इस लिए इस गण का यह नाम पड़ा । दसो गणों में यह प्रमुख है । धातुपाठ में इसकी ०३५ धातुएँ गिनाई गई हैं, इस हिसाब से जितनी और धातुएँ गणों की धातुएँ मिलाकर हैं उन से कहीं अधिक इस एक गण में हैं । सज्ञाओं में जो महत्व अकारान्त शब्दों का है वही क्रिया भ्वादिगण का है ।

इस गण की धातुओं के अनन्तर ( प्रत्यय लगाने के पूर्व ) भूप् ( अ ) जोड़ दिया जाता है तथा धातु की उपधा का ह्रस्व स्वर अथवा धातु का अन्तिम स्वर गुणसन्धि ( ८ ) को प्राप्त होता है, जैसे—भू धातु में वर्तमान के प्रत्यय जोड़ने हों तो भू+भूप् ( अ ) + ति = भू+ऊ+अ+ति = भू+ओ ( गुण ) + अ+ति = भू+अव्+अ+ति = भवति, रूप प्रथम पुरुष के एक वचन में आयेगा । इसी प्रकार जि+गप्+ति = जि+अ+ति = जू+इ+अ

आत्मनेपद

एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु० ते	इते	अन्ते
म० पु० से	इथे	ध्वे
उ० पु० ॥	धहे	महे

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं:—

प्र० पु० ते	आते	अते
म० पु० से	आथे	ध्वे
उ० पु० ए	धहे	महे

( ख ) आज्ञा ( लोट् )

एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु० तु	ताम्	अन्तु
म० पु० तु या तात्	तम्	त
उ० पु० आनि	आव	आम

आत्मनेपद

प्र० पु० ताम्	इताम्	अन्ताम्
म० पु० स्व	इधाम्	ध्वम्
उ० पु० ऐ	आधहै	आमहै

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में ऊपर लिखे ही प्रत्यय लगते हैं केवल म० पु० एक



+ति=जू+ए+अ+ति=जू+अय्+अ + ति=जयति, इसी प्रकार नयति आदि । उपधाभूत ह्रस्वस्वर का गुण, जमे—वुध्+शप्+ति=व्+उ+ध्+अ+ति=व्+ओ+ध+अ+ति=बोधति । जिन धातुओं की उपधा में अथवा अन्त में अ होगा उन में गुणसन्धि करने से भी अ ही रहता है, यह नियम = से स्पष्ट ही है ।

### १४४—परस्मैपदी भू—होना

#### वर्तमान—लट्

	एचवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भवति	भवत	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथ	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवाथ	भवाम

#### आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

#### विधि—लिट्

प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयु
म० पु०	भवे	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

वचन में 'दि' जोड़ा जाता है। इन गणों में आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं —

प्र० पु०	ताम्	आताम्	अताम्
म० पु०	स्य	आयाम्	अयम्
उ० पु०	से	आसहे	आसहे

### ( ग ) विभिन्दि

#### परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	ईताम्	ईयु
म० पु०	ई	ईगम्	ईत
उ० पु०	ईयम्	ईय	ईन

#### आत्मनेपद

प्र० पु०	इत्	इयाताम्	इरन्
म० पु०	इग	इयायाम्	इयम्
उ० पु०	इय	इयहि	इमहि

नोट—दूसरे, तीसरे, चौथे, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में ये प्रत्यय लगते हैं —

प्र० पु०	यात्	याताम्	युन्
म० पु०	याम्	यानम्	यात
उ० पु०	याम्	याय	याम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभव*	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	यभूव	यभूवतु	यभूवु
म० पु०	यभूयिथ	यभूवथु	यभूव
उ० पु०	यभूव	यभूविव	यभूयिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म० पु०	अभू	अभूतम्	अभूत
उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	भविता	भवितारौ	भवितार
म० पु०	भवितासि	भवितास्य	भवितास्य
उ० पु०	भवितास्मि	भवितास्व	भवितास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यत	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथ	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्याव	भविष्याम

( घ ) अनद्यतनभूत ( लङ् )

परस्मैपद

प्र० पु०	त्	ताम्	अन्
म० पु०	स	तम्	त
उ० पु०	अम्	घ	म

आत्मनेपद

प्र० पु०	त	इताम्	अन्त
म० पु०	थास्	इथाम्	धम्
उ० पु०	इ	घहि	महि

नोट - दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं —

प्र० पु०	त	आताम्	अत
म० पु०	थास्	आथाम्	धम्
उ० पु०	इ	घहि	महि

( च ) परोक्षभूत ( लिट् )

परस्मैपद

प्र० पु०	अ	अतुस्	उस्
म० पु०	घ	अथुस्	अ
उ० पु०	अ	घ	म

## आशीर्लिङ् -

प्र० पु०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासु
म० पु०	भूया	भूयास्तम्	भूयास्त
उ० पु०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

## क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु०	अभविष्य	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

१४५—भ्वादिगण की अन्य धातुओं के रूप—

## परस्मैपदी, गम्—जाना

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छति	गच्छत	गच्छन्ति
मध्यम पुरुष	गच्छसि	गच्छथ	गच्छथ
उत्तम पुरुष	गच्छामि	गच्छाव	गच्छाम
स्रोट्	प्र० पु०	एकवचन	गच्छतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	गच्छेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अगच्छत्

## परोक्षभूत—लिट्

प्रथम पुरुष	जगाम	जग्मतु	जग्मु
-------------	------	--------	-------

## , आत्मनेपद

प्र० पु०	ए	आते	इरे
म० पु०	से	आये	ध्वे
उ० पु०	ए	घहे	महे

नोट—परोक्ष भूत के एक प्रकार के रूप इन प्रत्ययों को जोड़ कर बनते हैं। दूसरे प्रकार के रूप धातु में कृ, भू अथवा अस् के रूप जोड़ कर बनते हैं, इस वशा में धातु और इन रूपों के बीच में—आम्—जोड़ दिया जाता है। जिस पद की धातु होती है उसी पद के रूप जोड़े जाते हैं जैसे—ईड् धातु से ईडान्चक्रे, ईडाम्बभूष, ईडामास आदि।

## ( छ ) सामान्यभूत ( लुङ् )

सामान्यभूत के रूप संस्कृत में सात प्रकार के होते हैं, कुछ किसी गण की धातुओं में लगते हैं कुछ किसी में। इन सात प्रकार के प्रत्ययों में भी कुछ भेद होता है। उदाहरणार्थ प्रथम प्रकार के सामान्यभूत के ओर अनद्यतनभूत के प्रत्ययों में केवल प्र० पु० के बहुवचन में अन् के स्थान में उस् हो जाता है। दूसरी प्रकार के सामान्यभूत के प्रत्यय ठीक अनद्यतनभूत के हैं केवल अ धातु और प्रत्ययों के बीच में जोड़ लिया जाता है। तीसरी प्रकार के भी प्रत्यय अनद्यतनभूत के हैं, केवल प्रत्यय जोड़ने के पूर्व धातु को डबल ( अभ्यस्त ) करके अ जोड़ते हैं।

सामान्य भूत के चौथी प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

मध्यम पुरुष	जगमिथ, जगन्य	जग्मथु	जग्म
उत्तम पुरुष	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

## सामान्यभूत—लुट्

प्रथम पुरुष	अगमत्	अगमताम्	अगमन् ✓
मध्यम पुरुष	अगम	अगमतम्	अगमत
उत्तम पुरुष	अगमस्	अगमाव	अगमाम

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्रथम पुरुष	गन्ता	गन्तारौ	गन्तार
मध्यम पुरुष	गन्तासि	गन्तास्थ	गन्तास्थ
उत्तम पुरुष	गन्तास्मि	गन्तास्व	गन्तास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्रथम पुरुष	गमिष्यति	गमिष्यत	गमिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथ	गमिष्यथ
उत्तम पुरुष	गमिष्यामि	गमिष्याव	गमिष्याम

## आशीर्लिङ्

प्रथम पुरुष	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासु
मध्यम पुरुष	गम्या	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उत्तम पुरुष	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृट्

प्रथम पुरुष	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
मध्यम पुरुष	अगमिष्य	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उत्तम पुरुष	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

परस्मैपदी—गे—गाना

लट्

प्र० पु०	गायति	गायत्	गायन्ति
म० पु०	गायसि	गायथ	गायथ
व० पु०	गायामि	गायात्	गायाम
लोट्	प्र० पु०	एकयच्	गायतु
विधि	प्र० पु०	एकयचन	गायेत्
लृट्	प्र० पु०	एकयचन	अगायत्

लिट्

प्र० पु०	जगौ	जगत्	जगु
म० पु०	जगिथ, जगाथ	जगत्	जग
व० पु०	जगौ	जगिव	जगिम

लृट्

प्र० पु०	अगासीत्	अगासिष्टम्	अगासिषु
म० पु०	अगासी	अगासिष्टम्	अगासिष्ट
व० पु०	अगासिषम्	अगासिष्व	अगासिष्म

लृट्

प्र० पु०	गाता	गातारी	गातार
----------	------	--------	-------

१ ग्लै ( ग०, चीख देना ), ध्यै ( प०, ध्यान करना ), ग्लै ( प०, झुकाव ) के रूप गै की तरह होते हैं ।

१० व्या० प्र०—२१



## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतार
म० पु०	नेतासि	नेतास्य	नेतास्य
उ० पु०	नेतास्मि	नेतास्व	नेतास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यति	नेष्यत	नेष्यन्ति
म० पु०	नेष्यमि	नेष्यथ	नेष्यथ
उ० पु०	नेष्यामि	नेष्याव	नेष्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नीयात्	नीयास्ताम्	नीयास्तु
म० पु०	नीया	नीयास्तम्	नीयास्त
उ० पु०	नीयास्तम्	नीयास्व	नीयास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यन्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
म० पु०	अनेष्य	अनेष्यतम्	अनेष्यत
उ० पु०	अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

## आत्मनेपद्

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	नयते	नयेते	नयन्ते
म० पु०	नयसे	नयेथे	नयध्वे
उ० पु०	नये	नयावहे	नयामहे

मध्यम पुरुष	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथु	जग्म
उत्तम पुरुष	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्रथम पुरुष	अगमत्	अगमताम्	अगमन् ✓
मध्यम पुरुष	अगम	अगमतम्	अगमत
उत्तम पुरुष	अगमम्	अगमाव	अगमास

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्रथम पुरुष	गन्ता	गन्तारौ	गन्तार
मध्यम पुरुष	गन्तासि	गन्तास्थ	गन्तास्य
उत्तम पुरुष	गन्तास्मि	गन्तास्व	गन्तास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्रथम पुरुष	गमिष्यति	गमिष्यत	गमिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथ	गमिष्यथ
उत्तम पुरुष	गमिष्यामि	गमिष्याव	गमिष्याम

## आशीर्जिट्

प्रथम पुरुष	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासु
मध्यम पुरुष	गम्या	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उत्तम पुरुष	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्रथम पुरुष	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
मध्यम पुरुष	अगमिष्य	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उत्तम पुरुष	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत्
लट्	प्र० पु०	एकवचन	अनयत

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिष्य, -र्य
उ० पु०	निन्ये	निन्यिषहे	निन्यिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अनेष्ट	अनेपानाम्	अनेपत
म० पु०	अनेष्टा	अनेपाथाम्	अनेष्वम्
उ० पु०	अनेपि	अनेप्सहि	अनेप्सहि

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतार
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्यथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
----------	---------	--------------	---------

लिट्

प्र० पु०	जिगाय	जिग्यतु	जिग्यु
म० पु०	जिगयिष्य जिगोथ	जिग्यथु	जिग्य
उ० पु०	जिगाय, जिगय	जिग्यिष्व	जिग्यिष्व

लुङ्

प्र० पु०	अजैपीत्	अजैष्टाम्	अजैषु
म० पु०	अजैषी	अजैष्टम्	अजैष्ट
उ० पु०	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्व

लृट्

प्र० पु०	जेता	जेतारौ	जेतार
म० पु०	जेतासि	जेतास्य	जेतास्य
उ० पु०	जेतास्मि	जेतास्व	जेतास्म

लृट्

प्र० पु०	जेप्यति	जेप्यत	जेप्यन्ति
म० पु०	जेप्यसि	जेप्यथ	जेप्यथ
उ० पु०	जेप्यामि	जेप्याव	जेप्याम

आशी०

प्र० पु०	जीयान्	जीयास्ताम्	जीयासु
म० पु०	जीया	जीयास्तम्	जीयास्त
उ० पु०	जीयासम्	जीयास्व	जीयास्म

म० पु०	नेषीष्टा	नेषीयास्याम्	नेषीष्यम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीयहि	नेषीमहि

क्रियातिपत्ति—लट्

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथा	अनेष्येथाम्	अनेष्यन्तम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्याथहि	अनेष्यामहि

परस्मैपदौ

पठ्—पठना

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	पठति	पठ्या	पठन्ति
म० पु०	पठसि	पठथ	पठय
उ० पु०	पठामि	पठथ	पठाम
लोट्	प्र० पु०		पठ्युः, पठ्याग

धितिलिङ्

प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म० पु०	पठे	पठताम्	पठेय
उ० पु०	पठेयम्	पठेय	पठेय

अनङ्गानभूत—लट्

प्र० पु०	अपठ्या	अपठ्यान्	अपठ्या
म० पु०	अपठ	अपठ्याम्	अपठ
उ० पु०	अपठ्यम्	अपठ्या	अपठ्या

म० पु०	गातासि	गातास्थ	गातास्थ
उ० पु०	गातास्मि	गातास्व	गातास्म,

लट्

प्र० पु०	गास्यति	गास्यत	गास्यन्ति
म० पु०	गास्यसि	गास्यथ	गास्यथ
उ० पु०	गास्यामि	गास्याव	गास्याम

आगोर्लिङ्

प्र० पु०	गेयात्	गेयास्ताम्	गेयासु
म० पु०	गेया	गेयास्तम्	गेयान्त
उ० पु०	गेयासम्	गेयास्व	गेयास्म

लङ्—अगास्यत् ।

परस्मैपदी

जि—जीतना

लट्

प्र० पु०	जयति	जयत	जयन्ति
म० पु०	जयसि	जयथ	जयथ
उ० पु०	जयामि	जयाव	जयाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	जयतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	जयेत्
लट्	प्र० पु०	एकवचन	अजयत्

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	पपाठ	पेठतु	पेठु
म० पु०	पेठिय	पेठथु	पेठ
उ० पु०	पपाठ, पपठ	पेठिब	पेठिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषु
म० पु०	अपाठी	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
उ० पु०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	पठिता	पठितारो	पठितार.
म० पु०	पठितासि	पठितास्थ	पठितास्थ
उ० पु०	पठितास्मि	पठितास्व	पठितास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	पठिष्यति	पठिष्यत	पठिष्यन्ति
म० पु०	पठिष्यसि	पठिष्यथ	पठिष्यथ
उ० पु०	पठिष्यामि	पठिष्याव	पठिष्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासु
म० पु०	पठ्या	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त
उ० पु०	पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म

निङ्

प्र० पु०	जिगाय	निङ्गु	जिगु
म० पु०	जिगदिथ, निगेथ	निङ्ग्यु	जिग्य
व० पु०	जिगाव, जिगव	निङ्गिव	जिङ्गिन

लुट्

प्र० पु०	अनैरीत्	अनैशन्	अनैरु
म० पु०	अनैरी	अनैरम्	अनैरु
व० पु०	अनैरम्	अनैष्व	अनैष्म

लुट्

प्र० पु०	जेता	जेतारौ	जेतार
म० पु०	जेतामि	जेतास्य	जेतास्य
व० पु०	जेतास्मि	जेतास्व	जेताम्

लट्

प्र० पु०	जेदति	जेदय	जेदन्ति
म० पु०	जेदसि	जेदय	जेदय
व० पु०	जेदामि	जेदाव	जेदाम

आर्गी०

प्र० पु०	जायात्	जायान्ताम्	जायामु
म० पु०	जाया	जायासम्	जायाम्
व० पु०	जायामम	जायान्व	जायाम्





## लङ्

प्र० पु०	अजेप्यत्	अजेप्यताम्	अजेप्यन्
म० पु०	अजेप्य	अजेप्यतम्	अजेप्यत
उ० पु०	अजेप्यम्	अजेप्याव	अजेप्याम

## परस्मैपदी

## दृग्—देखना

## धर्तमान—लट्

प्र० पु०	पश्यति	पश्यत	पश्यन्ति
म० पु०	पश्यति	पश्यथ	पश्यथ
उ० पु०	पश्यामि	पश्याव	पश्याम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पश्यतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	पश्येत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अपश्यत्

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददर्श	ददर्शतु	ददृशु
म० पु०	ददर्शिय, दद्रष्ट	ददर्शयु	ददृश
उ० पु०	ददर्श	ददर्शिय	ददर्शिम

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	{ अदर्शत् अद्राक्षत्	{ अदर्शताम् अद्राष्टाम्	{ अदर्शन् अद्राक्षु
----------	-------------------------	----------------------------	------------------------

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	लब्धा	लब्धारौ	लब्धार
म० पु०	लब्धासे	लब्धासाथे	लब्धाध्वे
उ० पु०	लब्धाहे	लब्धास्वहे	लब्धास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

## आशीर्तिङ्

प्र० पु०	लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्
म० पु०	लप्सीष्टा	लप्सीयास्थाम्	लप्सीध्वम्
उ० पु०	लप्सीय	लप्सीवहि	लप्सीमहि

## क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
म० पु०	अलप्स्यथा	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
उ० पु०	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

## आत्मनेपदी

## वृत्—होना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वर्तते	वर्तते	वर्तन्ते
म० पु०	वर्तसे	वर्तथे	वर्तध्वे
उ० पु०	वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे

म० पु०	{ अदर्श अद्राशी	{ अन्शतम् अद्राष्टम्	{ अदर्शत अद्राष्ट
उ० पु०	{ अन्शम् अद्राष्टम्	{ अन्शाव अद्राष्टव	{ अदर्शाम अद्राष्टाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	दृष्टा	दृष्टारौ	दृष्टार
म० पु०	दृष्टासि	दृष्टास्य	दृष्टास्य
उ० पु०	दृष्टासिम्	दृष्टास्व	दृष्टास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दृक्ष्यति	दृक्ष्यत	दृक्ष्यन्ति
म० पु०	दृक्ष्यसि	दृक्ष्यस्य	दृक्ष्यस्य
उ० पु०	दृक्ष्यामि	दृक्ष्याव	दृक्ष्याम

आशीर्लिङ

प्र० पु०	दृष्यात्	दृष्यान्ताम्	दृष्यान्तु
म० पु०	दृष्या	दृष्यास्तम्	दृष्यास्त
उ० पु०	दृष्यासम्	दृष्यास्व	दृष्यास्म

क्रियातिपत्ति—लङ्

प्र० पु०	अदृक्ष्यत्	अदृक्ष्यन्ताम्	अदृक्ष्यन्तु
म० पु०	अदृक्ष्य	अदृक्ष्यतम्	अदृक्ष्यत
उ० पु०	अदृक्ष्यम्	अदृक्ष्याव	अदृक्ष्याम

लोड	प्र० पु०	एकवचन	वर्तताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	वर्तत
लड्	प्र० पु०	एकवचना	अवर्तत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वर्तते	वर्तताते	वर्ततिरे
म० पु०	वर्ततिषे	वर्तताथे	वर्ततिष्ये
उ० पु०	वर्तते	वर्ततिवहे	वर्ततिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	{ अवर्तिष्य अवृत्त	{ अवर्तिषाताम् अवृत्ताम्	{ अवर्तिष्यत अवृत्तन्
म० पु०	{ अवर्तिष्या अवृत्त	{ अवर्तिषायाम् अवृत्ततम्	{ अवर्तिष्यन्-वृषम् अवृत्तत
उ० पु०	{ अवर्तिषि अवृत्तम्	{ अवर्तिष्यहि अवृत्ताथ	{ अवर्तिष्यमहि अवृत्ताम
लुङ्	प्र० पु०	एकवचन	वर्तिता

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	वर्तिष्यते	वर्तिष्येते	वर्तिष्यन्ते
म० पु०	वर्तिष्यसे	वर्तिष्येथे	वर्तिष्यथ्वे
उ० पु०	वर्तिष्ये	वर्तिष्यावहे	वर्तिष्यामहे

अथवा

प्र० पु०	वर्त्यन्ति	वर्त्यन्त	वर्त्यन्ति
म० पु०	वर्त्यसि	वर्त्यथ	वर्त्यथ

१ लुङ्, लृट् तथा लृङ् में यह परस्मैपदी भी हो जाती है ।  
स० व्या० प्र०—२०

उभयपदी धृ—वरना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	धरति	धरत	धरन्ति
म० पु०	धरसि	धरथ	धरथ
उ० पु०	धरामि	धराव	धराम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	धरतु
घिघि	प्र० पु०	एकवचन	धरेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अधरत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधार	दधतु	दधु
म० पु०	दधथं	दधथु	दध
उ० पु०	दधार, दधर	दधव	दधम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधार्षीत्	अधार्षाम्	अधार्षु
म० पु०	अधार्षी	अधार्षम्	अधार्षे
उ० पु०	अधार्षम्	अधार्ष्वं	अधार्षम

१ तृ ( उ०, पार करना ), भृ ( उ०, भरण पोषण करना ), मृ ( प०, चलना, ), स्मृ ( प०, स्मरण करना ), हृ ( उ०, हरण करना ) के रूप ए के समान होते हैं ।

उ० पु०

वर्त्स्यामि

वर्त्स्याव

वर्त्स्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०

वर्तिपीष्ट

वर्तिपीयास्ताम्

वर्तिपीरन्

म० पु०

वर्तिपीष्ठा

वर्तिपीयास्थाम्

वर्तिपीष्वम्

उ० पु०

वर्तिपीय

वर्तिपीवहि

वर्तिपीमहि

क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०

अवर्तिष्यत्

अवर्तिष्येताम्

अवर्तिष्यन्त

म० पु०

अवर्तिष्यथा

अवर्तिष्येशाम्

अवर्तिष्यभ्य

उ० पु०

अवर्तिष्ये

अवर्तिष्यावहि

अवर्तिष्याम

अथवा

प्र० पु०

अवर्त्स्यत्

अवर्त्स्यताम्

अवर्त्स्यन्

म० पु०

अवर्त्स्य

अवर्त्स्यताम्

अवर्त्स्यन्त

उ० पु०

अवर्त्स्यम्

अवर्त्स्याव

अवर्त्स्याम

उभयपदी

श्चि—सहारा लेना

परस्मैपठ

वर्तमान—लट्

प्र० पु०

अयति

अयत

अयन्ति

म० पु०

अयसि

अयथ

अयथ

उ० पु०

अयामि

अयाव

अयाम

लोट्

प्र० पु०

एकवचन

अयन्तु

विधि

प्र० पु०

एकवचन

अयेत्

अनद्यतनभविष्य—लृट्

नेता	नेतारौ	नेतार
नेतामि	नेतास्य	नेतास्य
नेतास्मि	नेतास्य	नेतास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

नेष्यति	नेष्यत	नेष्यन्ति
नेष्यसि	नेष्यथ	नेष्यथ
नेष्यामि	नेष्याथ	नेष्याम

आजोर्तिट्

नीयात्	नीयास्ताम्	नीयामु
नीया	नीयास्तम्	नीयास्त
नीयामम्	नीयास्य	नीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृट्

अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
अनेष्य	अनेष्यतम्	अनेष्यत
अनेष्यम्	अनेष्याथ	अनेष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

नयते	नयेते	नयन्ते
नयसे	नयेथे	नयध्वे
नये	नयावहे	नयामहे



इ प्र० पु० एकवचन अक्षयत्

परोक्षभूत—लिट्

१० पु०	शिश्नाय	शिश्नियतु	शिश्नियु
१० पु०	शिश्नविध	शिश्नियधु	शिश्निय
१० पु०	शिश्नाय, शिश्नय	शिश्नियिब	शिश्नियिम

सामान्यभूत - लुट्

१० पु०	अशिश्नियत्	अशिश्नियताम्	अशिश्नियन्
१० पु०	अशिश्निय	अशिश्नियतम्	अशिश्नियत
१० पु०	अशिश्नियम्	अशिश्नियाव	अशिश्नियाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

१० पु०	अयिता	अयितारौ	अयितार
१० पु०	अयितासि	अयितास्य	अयितास्य
१० पु०	अयितामि	अयितास्व	अयितास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

१० पु०	अयिष्यति	अयिष्यत	अयिष्यन्ति
१० पु०	अयिष्यसि	अयिष्यथ	अयिष्यथ
१० पु०	अयिष्यामि	अयिष्याव	अयिष्याम

आशीर्लिट्

१० पु०	धीयात्	धीयान्ताम्	धीयासु
१० पु०	धीया	धीयान्तम्	धीयान्त
१० पु०	धीयासम्	धीयास्व	धीयास्म

लुट्—धर्ता	धर्तारौ	धर्तार । धर्तासे	धर्तासाथे ।
लट्—			धरिष्यते
आज्ञी०—			धयीष्ट

उभयपदी नी ( नय् )—ले जाना ।

परस्मैपद

घर्तमान—लट्

प्र० पु०	नयति	नयत्	नयति
म० पु०	नयसि	नयथ,	नयथ
उ० पु०	नयामि	नयाव	नयाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयतु, नयतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत्
लट्	प्र० पु०	एकवचन	अनयत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निनाय	निन्यतु	निन्यु
म० पु०	निनयिथ, निनेथ	निन्यथु	निन्य
उ० पु०	निनाय, निनय	निन्यिथ	निन्यिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषु
म० पु०	अनैषी	अनैष्टम्	अनैष्ट
उ० पु०	अनैषम्	अनैष्ट	अनैष्टम्

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अश्रयिष्यत्	अश्रयिष्यताम्	अश्रयिष्यन्
म० पु०	अश्रयिष्य	अश्रयिष्यतम्	अश्रयिष्यन्
उ० पु०	अश्रयिष्यम्	अश्रयिष्यात्	अश्रयिष्यात्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	अयते	अयेते	अयन्ते
म० पु०	अयसे	अयेये	अयसे -
उ० पु०	अये	अयावहे	अयामहे
लोट	प्र० पु०	एकउचन	अयताम्
लिट्	प्र० पु०	एकउचन	अयेत
लङ	प्र० पु०	एकउचन	अयत

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शिधिये	शिधियाते	शिधियिरे
म० पु०	शिधियिषे	शिधियाथे	शिधियिषे, -
उ० पु०	शिधिये	शिधियिउहे	शिधियिने

## मामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अशिधियन्	अशिधियेताम्	अशिधियन्
म० पु०	अशिधियथा	अशिधियेथाम्	अशिधियन्
उ० पु०	अशिधिये	अशिधियाउहि	अशिधियामहि

## अनयननभयिष्य—लृट्

० पु०	अयिता	अयितारौ	अयितार
० पु०	अयितासे	अयितासावे	अयिताध्वे
० पु०	अयिताहे	अयितास्वहे	अयितास्महे

## सामान्यभयिष्य—लृट्

० पु०	अयिष्यते	अयिष्येते	अयिष्यन्ते
० पु०	अयिष्यसे	अयिष्येथे	अयिष्यध्वे
० पु०	अयिष्ये	अयिष्यावहे	अयिष्यामहे
० पु०	प्र० पु०	एकवचन	अयिषीष्ट
० पु०	प्र० पु०	एकवचन	अयिष्यत

## परस्मैपदी

## श्रु - सुनना

## वर्तमान—लट्

० पु०	शृणोति	शृणुत	शृण्वति
० पु०	शृणोषि	शृणुथ	शृणुध्व
० पु०	शृणोमि	शृणुव , शृण्व	शृणुम , शृण्वम

## आज्ञा—लोट्

० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
० पु०	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
० पु०	शृण्वानि	शृण्वाम	शृण्वाम

१ (उ०) — जानना । बोधति, बोधते । लिट् — बुबोध बुबुधे । लुट् —  
अबुधत् अबुधताम् अबुधन् । अबोधीत् अबोधिष्याम् अबोधिषु ।  
अबोधिष्ये अबोधिष्याताम् अबोधिष्यत । लुट् — बोधिता । लृट् —  
बोधिष्यति, बोधिष्यते । आशी० — बुध्यात्, बोधिषीष्ट ।

१ (उ०) — सेवा करना । भजति भजते । लिट् — बभाज भेजतु भेजु ।  
भेजिय बभक्य भेजधु भेज । बभाज बभज भेजिव भेजिम । भेजे  
भेजाते भेजिरे । भेजिये भेजाये भेजिये । भेजे भेजिवहे भेजिमहे ।  
लुट् — अभाजीत् अभाक्ताम् अभाजु । अभाजी अभाक्तम्  
अभाक्त । अभाजम् अभाजव अभाजम । अभक्त अभक्ताताम्  
अभक्त । अभक्था अभक्थायाम् । अभक्ष्यम् । अभक्षि अभक्षहि  
अभक्ष्महि । लृट् — भक्ता । लृट् — भक्ष्यति भक्ष्यते । आशी० —  
भक्ष्यात् भक्षीष्ट ।

भाप् (आ०) — धोखना । भापते भापेते भापन्ते । लिट् — बभापे बभापाते  
बभापिरे । बभापिये बभापाये बभापिष्ये । बभापे बभापिवहे  
बभापिमहे । लुट् — अभापिष्ट बभापिष्याताम् अभापिष्यत ।  
अभापिष्ये अभापिष्याताम् अभापिष्यम् । अभापिषि अभापिष्वहि  
अभापिष्महि । लृट् — भापिता । लृट् — भापिष्यते । आशी० —  
भापिषीष्ट ।

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ यह आत्मनेपद होती है और बुधते  
रूप चलता है ।

## विधिलिट्

प्र० पु०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयु
म० पु०	शृणुया	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० पु०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

## अनघनभूत—लट्

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृणवन्
म० पु०	अशृणो	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणुम	अशृणु, अशृणव	अशृणुम, अशृण

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शुश्राव	शुश्रुवत्	शुश्रुवु
म० पु०	शुश्रोथ	शुश्रुवथु	शुश्रुव
उ० पु०	शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अश्रौषीत्	अश्रौष्यात्	अश्रौषु
म० पु०	अश्रौषी	अश्रौष्य	अश्रौष्य
उ० पु०	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्य
लुट् —	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतार
लट् —	श्रोष्यति	श्रोष्यत	श्रोष्यन्ति
आशी०—	श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासु
लङ् —	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्

मिच् (आ०)—भीख माँगना । मिचते । लिट्—विभिच्रे विभिचामे  
विभिचिरे । विभिचिषे विभिचामे विभिचिध्वे । विभि  
विभिचिवहे विभिचिमहे । लुट्—अभिचिष्ट अभिचिषाताम्  
अभिचिषत । लुट् मिचिता । लृट्—मिचिष्यते । आशी०—  
मिचिषीष्ट ।

भूप् (प०)—सजाना । भूपति । लिट्—बुभूष बुभूषत उभूष । लृट्—  
अभूषीत् अभूषिष्यात् अभूषिषु । लुट्—भूषिता । लृट्—  
भूषिष्यति । आशी०—भूष्यात् भूष्यास्ताम् भूष्यासु ।

भृ (उ०)—भरना या पालना पोसना । भरति भरते । लिट्—वभ्रातु  
वभ्रु । वभ्रयं वभ्रथु वभ्र । वभ्रात वभ्रात वभ्रात वभ्रात  
वभ्रे वभ्राते वभ्रिरे । वभ्रये वभ्राथे वभ्र्ये । वभ्रे वभ्रवहे वभ्रमहे  
लुट्—अभ्रापत् अभ्राप्यात् अभ्रापु । अभ्राप्य अभ्राप्यात् अभ्राप्य  
अभ्राप्य अभ्राप्य अभ्राप्य । अभ्रात अभ्रापाताम् अभ्रापत  
अभ्राया अभ्रापाथाम् अभ्रावम् । अभ्रापि अभ्राप्यहि अभ्राप्यहि  
लुट्—भ्राता । लृट्—भ्राप्यति भ्राप्यते । आशी०—भ्रापात्  
भ्रापीष्ट ।

१ यह धातु चुरादिगणी भी है। वहाँ यह उभयपदी है । भूपयति, भूप  
यते रूप होते हैं ।

२ यह धातु जुहोत्यादिगणी भी है, वहाँ इसके रूप विभर्ति, विभ्रत  
विभ्रति, इत्यादि होते हैं ।

परस्मैपदी

स्था—ठहरना

घर्तमान—लट्

प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठत	तिष्ठन्ति
म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथ	तिष्ठथ
उ० पु०	तिष्ठामि	तिष्ठाव	तिष्ठाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठतु, तिष्ठतात्
विप्रि	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठेत्
लट्	प्र० पु०	एकवचन	अतिष्ठत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तस्थौ	तस्थु	तस्थु
म० पु०	तस्थिय, तम्यथ	तस्थथु	तस्थ
उ० पु०	तस्थौ	तस्थिन	तस्थिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थु
म० पु०	अस्था	अस्थातम्	अस्थात
उ० पु०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

अनद्यतनमधिप्य—लुट्

प्र० पु०	स्थाता	स्थातारौ	स्थातार
म० पु०	स्थातासि	स्थातास्य	स्थाताम्ह
उ० पु०	स्थातास्मि	स्थातास्व	स्थातास्म



(घा०) — गिरना । अशते । लिट्—अशते । लुट्—अश्रतात्  
अश्रगताम् अश्रशन् तथा अश्रशिष्ट अश्रशिपाताम् अश्रशिपत ।

लुट्—अशिता । लृट्—अशिष्यते । आशी०—अशिषीष्ट ।

(१) यह दिवादिगणी भी है । वहाँ यह परस्मैपदी होती है (अश्रयति)

(२) म्वादिगण में लुट् लकार में इसके रूप परस्मैपद तथा  
मनेपद दोनों में चलते हैं ।

(प०) — भ्रमण करना । भ्रमति । लिट्—यभ्राम भ्रमेतु भ्रेसु ।

भ्रेमिष भ्रेमथु भ्रेम । यभ्राम—यभ्रम भ्रेमिष भ्रेमिम तथा यभ्राम  
यभ्रमेतु यभ्रेसु । यभ्रमिष यभ्रमेतु यभ्रम । यभ्राम यभ्रम  
यभ्रमिष यभ्रमिम । लुट्—अभ्रमीत् । लृट्—अभ्रमिता । लृट्—  
अभ्रमिष्यति । आशी०—अभ्रम्यात् ।

(घा०) — गिरना । अशते । लिट्—अशत । लुट्—अश्रत अश्र  
शिष्ट । लृट्—अशिता । लृट्—अशिष्यते । आशी०—अशिषीष्ट ।

(प०) — मथना । मथति । लिट्—ममाथ । लुट्—अमथीत् । लृट्—  
मथिता । लृट्—मथिष्यति । आशी०—मथ्यात् ।

(प०) — मन्यना । मन्यति । लिट्—ममन्य । लुट्—अमन्धीत् ।  
लृट्—मन्थिता । लृट्—मन्थिष्यति । आशी०—मन्थ्यात् ।

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ पर लट्, लोट्, लिट्, लृट् तथा  
में भेद पड़ जाता है ।

२ यह म्वादिगणी भी है । वहाँ मन्थीति, मन्थीति, मन्थन्ति इत्यादि  
होते हैं ।

## सामान्यभविष्य - लृट्

प्र० पु०	स्थास्यति	स्थास्यत	स्थास्यन्ति
म० पु०	स्थास्यसि	स्थास्यथ	स्थास्यथ
उ० पु०	स्थास्यामि	स्थास्याव	स्थास्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासु
म० पु०	स्थेया	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त
उ० पु०	स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयास्व

## क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
म० पु०	अस्थास्य	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
उ० पु०	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

१४६—भ्वादिगण की मुख्य धातुओं की सूची और रूपों का

विगदर्शन—

क्रन्द् (प०)—रोना । क्रन्दति । लिट्—चक्रन्द चक्रन्दतु चक्रन्दु ।  
चक्रन्दिथ । लृट्—अक्रन्दीत् अक्रन्दिष्टाम् अक्रन्दिषु । अत्रन्दी  
अक्रन्दिष्टम् अक्रन्दिष्ट । अक्रन्दिषम् अक्रन्दिष्व अक्रन्दिष्म ।  
लुट्—क्रन्दिता । लृट्—क्रन्दिष्यति । आशी०—क्रन्धात् ।  
लृट्—अक्रन्दिष्यत् ।

क्रीड् (प०)—खेलना । क्रीडति । लोट्—क्रीडतु । विधि—क्रीडेत् ।  
लृट्—अक्रीडत् अक्रीडताम् अक्रीडन् । लिट्—चिक्रीड चिक्री

मुद् ( आ० ) — प्रसन्न होना । मोदवे । लिट्—मुमुदे । लुङ्—

लुट्—मोदिता । लृट्—मोन्ष्यते । आशी०—मोदिषी० ।

यज्—( उ० )—यज्ञ करना, देवता की पूजा करना, सग करना या

यजति, यजते ।

लट्—इयाज

ईजतु

ईशु

{ इयजिथ  
इयष्ट

ईजथु

ईज

{ इयाज  
इयज

इजिष

इजिम

ईजे

ईजाते

ईजिरे

इजिषे

ईजाथे

ईजिध्वे

ईजे

ईजिवहे

इजिमहे

लुङ्—परस्मैपद

अयाचीत्

अयाष्टाम्

अयाशु

अयाची

अयाष्टम्

अयाष्ट

अयाचम्

अयाच

अयाचम

लुङ्—आत्मनेपद

अयष्ट

अयचाताम्

अयशत

लुट्—यष्टा यष्टारौ यष्टार । लृट्—यच्यति यच्यते । आशी०—

इज्यात्, यचीष्ट ।

यत् ( आ० )—प्रयत्न करना । यतते । लिट्—येते येताते येतिरे । यति

हृत् । चिक्रीडु । चिक्रीडिय चिक्रीड्यु चिक्रीष्ट । चिक्रीष्ट  
चिक्रीडिव चिक्रीडिम । लृट्—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्टम् अक्रीडिषु ।  
अक्रीडो अक्रीडिष्टम् अक्रीडिष्ट । अक्रीडिषम् अक्रीडिष्य  
अक्रीडिष्यम् । लृट्—क्रीडिता । लृट्—क्रीडिष्यति । आशी०—  
क्रीड्यात् । लृट्—अक्रीडिष्यत् ।

कृश् ( ५० )—चिरलाना, रोना । लृट्—क्रोशति । लोट्—क्रोशतु । विधि—  
क्रोशेत् । लृट्—अक्रोशत् । लिट्—चुक्रोश, चुक्रुशत्, चुक्रुशु ।  
चुक्रुशिथ चुक्रुशथु चुक्रुश । चुक्रोश चुक्रुशिव चुक्रुशिम ।  
लृट्—अक्रुशत् अक्रुशताम् अक्रुशन् । अक्रुश अक्रुशतम् अक्रुशत ।  
अक्रुशम् अक्रुशाव अक्रुशाम । लृट्—क्रोष्य । लृट्—क्रोष्यति ।  
आशी०—क्रुश्यात् । लृट्—अक्रोष्यत् ।

कृश् ( ५० )—कृमति । लिट्—चकृम चकृमतु चकृमु । चकृमिथ  
चकृमथु चकृम । चकृम चकृम चकृमिव चकृमिम । लृट्—  
अकृमत् अकृमताम् अकृमन् । लृट्—कृमिता । लृट्—कृमि  
ष्यति । आशी०—कृम्यात् ।

कृश् ( आ० )—चमा फटना । चमते चमेते चमन्ते ।

लिट्—चममे	चममाते	चममिरे
{ चममिपे	चममाथे	{ चममिन्वे
{ चमसे		{ चमप्जे

१ यह दिवादि गण में भी है । वहाँ इसका रूप ह्यायति इत्यादि  
होता है । २ यह भी दिवादि में होती है, चाग्यति इत्यादि ।

येताथे येतिञ्चे। येते येतिग्हे येतिमहे। लुट्—अयतिष्ठ अयतिशा-  
ताम् अयतिपत। अयतिष्ठा अयतिपायाम् अयतिध्वम्। अय-  
तिपि अयतिध्वहि अयतिध्वमहि। लुट्—यतिता। लृट्—यति-  
प्यते। आशी०—यतिपोष्ट।

( ३० )—मौगना। याचति याचते। लिट्—ययाच ययाचतु ययाचु।  
ययाचिय ययाचथु ययाच। ययाच ययाचिव ययाचिम। ययाचे  
ययाचाते ययाचिरे। ययाचिपे ययाचाथे ययाचिञ्चे। ययाचे  
ययाचिवहे ययाचिमहे। लुट्—अयाचीत् अयाचिष्ट। लृट्—  
याचिता। लृट्—याचिष्यति याचिष्यते। आशी०—याच्यात्,  
याचिपीष्ट।

( आ० )—शुरू करना, आलिङ्गन करना, अभिलाषा करना, जल्दबाजी  
म काम करना। रभते। लिट्—रेभे रेभाते रेभिरे। रेभिपे  
रेभाथे रेभिञ्चे। रेभे रेभिवहे रेभिमहे। लुट्—अरब्ध अरप्णा-  
ताम् अरप्सत। अरब्धा अरप्णाथाम् अरब्ध्वम्। अरप्सि अर-  
प्सहि अरप्समहि। लुट्—रब्धा रब्धारी रब्धार। लृट्—रप्स्यते।  
आशी०—रप्सीष्ट। लृट्—अरप्स्यत।

( आ० )—छेजना, हर्षित होना। रमते रमेते रमन्ते। लिट्—रेमे  
रेमाते रेमिरे। लुट्—अरस्त अरसाताम् अरसत। अरस्या  
अरसाथाम् अरस्वम्। अरसि अरस्वहि अरसमहि। लुट्—रन्ता  
रन्तारौ। लृट्—रस्यते। लृट्—अरस्यत।

( ५० )—उगना, बढ़ना, उठना। रोहति रोहत रोहन्ति। लिट्—ररोह  
ररोहतु ररोह्यु। ररोहिय ररोहथु ररोह। ररोह ररोहिव ररोहिम।

चक्षमे

{ चक्षमिउहे  
चक्षयवहे{ चक्षमिमहे  
चक्षरमहे

कम्प् ( आ० )—कॉपना । लट्—कम्पते कम्पेते कम्पन्ते । लोट्—कम्पताम् कम्पेताम् कम्पन्ताम् । कम्पस्य । विधि—कम्पेत् कम्पेयाताम् कम्पेरन् । लङ्—अकम्पत अकम्पेताम् अकम्पन्त । अकम्पया अकम्पेथाम् अकम्पध्वम् । अकम्पे अकम्पावहि अकम्पामहि । लिट्—चकम्पे चकम्पाते चकम्पिरे । चकम्पिरे चकम्पाथे चकम्पिष्वे । चकम्पे चकम्पिवहे चकम्पिमहे । लुङ्—अकम्पिष्ट अकम्पिपाताम् अकम्पिपत । अकम्पिष्ठा अकम्पिपाथाम् अकम्पिध्वम् । अकम्पिषि अकम्पिष्यहि अकम्पिष्यमहि । लुट्—कम्पिता कम्पितासे कम्पितार । कम्पितासे कम्पितासाथे कम्पिताध्वे । कम्पितासे कम्पितास्थे कम्पितास्महे । लृट्—कम्पिष्यते कम्पिष्येते कम्पिष्यन्ते कम्पिष्यसे कम्पिष्येथे कम्पिष्यध्वे । कम्पिष्ये कम्पिष्यावहि कम्पिष्यामहे । आशी०—कम्पिषीष्ट कम्पिषीयान्ताम् कम्पिषीरन् । लृङ्—अकम्पिष्यत अकम्पिष्येताम् अकम्पिष्यन्त ।

काङ्क्ष् ( प० )—इच्छा करना । लैट्—काङ्क्षति । लोट्—काङ्क्षतु विधि—काङ्क्षेत् । लङ्—अकाङ्क्षत् । लिट्—चकाङ्क्ष चकाङ्क्षतु चकाङ्क्षु । चकाङ्क्षिथ चकाङ्क्षथु चकाङ्क्षि चकाङ्क्षिव चकाङ्क्षिम । लुङ्—अकाङ्क्षी अकाङ्क्षिष्याम् अकाङ्क्षिषु । अकाङ्क्षी अकाङ्क्षिष्य अकाङ्क्षिष्ट । अकाङ्क्षिषम् अकाङ्क्षिष्व अकाङ्क्षिष्यम् । लुट्—काङ्क्षिता । लृट्—काङ्क्षिष्यति । आशी०—काङ्क्ष्यात् । लृङ्—अकाङ्क्षिष्यत् ।

लुङ्—अरुचत् अरुचताम् अरुचन् । अरुच अरुचतम् अरुचम् अरुचान् अरुचाम् ।

वद् ( प० )—कहना । वदति ।

लिट्

प्र० पु०	उवाच	उदत्तु	उटु
म० पु०	उवदिथ	उदथु	उद
उ० पु०	उवाच उवाच	उदिव	उदिम

लुङ्

प्र० पु०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवाति
म० पु०	अवादी	अवादिष्टम्	अवादि
उ० पु०	अवादिपम्	अवादिष्य	अवादिष

लुट्—वदिता । लृट्—वदिष्यति । आशी०—उद्यात् ।

वन्द् ( आ० )—नमस्कार करना या स्तुति करना । वन्दते वन्देते वन्दन्ते ।  
लिट्—ववन्दे ववन्दते ववन्दिरे । लृट्—अवन्दिष्ट अवन्दिष्यते ।  
अवन्दिपत । लृट्—वन्दिता । लृट्—वदिष्यते । आशी०—  
वन्दिपीठ ।

वप् ( उ० )—घोना, छितराना, कपड़ा उतारना, घाल घनाना ।  
वपति वपते ।

लिट्—परस्मैपद

प्र० पु०	उवाप	उपतु	उपु
म० पु०	उवपिथ उवप्य	उपथु	उप

कार् ( आ० )—चमकना । लट्—काशते काशते काशन्ते । लिट्—चकाशे  
चकाशाते चकाशिरे । चकाशिपे चकाशाथे चकाशिध्वे । चकाशे  
चकाशिवहे चकाशिमहे । लुङ्—अकाशिष्ट अकाशिपात्ताम्  
अकाशिपत् । अकाशिष्ठा अकाशिपाधाम् अकाशिध्वम् ।  
अकाशिपि अकाशिप्सहि अकाशिप्सहि । लुट्—काशिता ।  
लृट्—काशिप्यते । आशी०—काशिपीष्ट । लृङ्—अकाशिप्यत् ।

चर् ( उ० )—चलना । लट्—चनति, चनते । लिट्—चखान चनतु  
चणु । चखनिथ चनथु चहन । चखान चपन चनिव  
चनिम । चप्ने चपनाते चखिरे चखिपे चपनाथे चनिध्वे ।  
चप्ने चखिवहे चखिमहे । लुङ्—अचनीत् अखनिष्टाम्  
अवनिषु , अचनीत् अचनिष्टाम् अचनिषु । अचनिष्ट  
अवनिपात्ताम् अखनिपत् । लुट्—चनिता । लृट्—चनिप्यति  
खनिप्यते । आशी०—चन्यात् चनायात् , चनिपीष्ट ।

जलै ( ण० )—जीण होना । ग्लायति ग्लायन् ग्लायन्ति । लिट्—जग्लौ  
जग्लतु जग्लु । जग्लिथ जग्लाथ जग्लथु जग्ल । जग्लौ जग्लिव  
जग्लिम । लुङ्—अग्लासीत् । लुट्—ग्लाता । लृट्—ग्लास्यति ।  
आशी०—ग्लायात् ग्लेयात् ।

चल् ( ण० )—चलना । चलति चलत चलन्ति । लिट्—चचाल चेलतु  
चेलु । चेलिथ चेलथु चेल । चचाल चचल चेलिथ चेलिम ।  
लुङ्—अचालीत् । लुट्—चलिता । लृट्—चलिप्यति ।  
आशी०—चल्यात् । लृङ्—अचलिप्यत् ।



( ५० )—बरसना । वर्षति वर्षत वर्षन्ति । लिट्—ववर्ष ववर्षतु ववर्षु । लुट्—वर्षीत् । लुट्—वर्षिता । लृट्—वर्षिष्यति । आशी०—वृष्यात् ।

( ५० )—घलना । घनति । लिट्—वघ्नज वघ्नजतु । लुट्—वघ्ना जीत् वघ्नाणिष्टाम् । लुट्—वघ्निता । लृट्—वघ्निष्यति । आशी०—वघ्न्यात् ।

( ५० )—स्तुति करना या चोट पहुँचाना । जमति । लिट्—शशस शशसतु शशसु । लुट्—अशसीत् अशसिष्टाम् अशसिषु । लुट्—शसिता । लृट्—शसिष्यति । आशी०—शस्यात् शस्यास्ता शस्यासु ।

( आ० )—शङ्का करना । शङ्कते शङ्कते शङ्कन्ते । लिट्—शशङ्के शशङ्कते शशङ्किरे । लुट्—अशङ्कित अशङ्किषाताम् अशङ्किषत । लुट्—शङ्किता । लृट्—शङ्किष्यते । आशी०—शङ्किषीष्ट ।

( आ० )—मीसना । शिचते । लिट्—शिशिचे । लुट्—अशिचिष्ट अशिचिषाताम् अशिचिषत । लुट्—शिचिता । लृट्—शिचिष्यते । आशी०—शिचिषीष्ट ।

( ५० )—शोर करना, पड़ताना । शोचति शोचत शोचन्ति । लिट्—शुशोच शुशुचतु शुशुचु । शुशोचिष्य । लुट्—अशोचीत् अशोचिष्टाम् अशोचिषु । लुट्—शोचिता । लृट्—शोचिष्यति । आशी०—शुच्यात् ।

( आ० )—शोभित होना, प्रसन्न होना । शोभते शोभते शोभन्ते । लिट्—शुशुभे शुशुभाते शुशुभिरे । लुट्—अशोभिष्ट अशो

ज्वल् ( प० )—जलना । ज्वलति । लिट्—जज्जाल जज्वलतु जज्वल  
जज्वलित्य जज्वलथु जज्वल । जज्जाल जज्वल जज्वलित्  
जज्वलिम । लुट्—अज्जालीत् अज्जालिष्टाम् अज्जालिषु  
लुट्—ज्वलिता । लृट्—ज्वलिष्यति । आशी०—ज्वल्यात् ।

डी<sup>१</sup> ( आ० )—उदना । डयते डयेते डयन्ते । लिट्—दिड्ये दिड्यात्  
दिड्यिरे । लुट्—अडयिष्ट अडयिषाताम् अडयिषत । लुट्—  
डयिता । लृट्—डयिष्यते । आशी०—डयिषीष्ट ।

त्यज् ( प० )—छोड़ना । त्यजति त्यजत त्यजन्ति । लिट्—तत्याज तत्यजतु  
तत्यजु । तत्यजित्य तत्यज्य तत्यजथु तत्यज । तत्याज तत्यज  
तत्यजिव तत्यजिम । लुट्—अत्याजीत् अत्याष्टाम् अत्याष्टु  
अत्याजी अत्याष्टम् अत्याष्ट । अत्याक्षम् अत्याक्ष्य अत्याक्षम्  
लुट्—त्यक्ता त्यकारौ । लृट्—त्यक्ष्यति त्यक्ष्यत त्यक्ष्यन्ति  
आशी०—त्यज्यात् ।

दह् ( प० )—जलाना । दहति दहत दहन्ति । लिट्—ददाह देहतु देहु  
देहिय ददग्ध देहथु देह । ददाह-ददह देहिव देहिम । लुट्—  
अधाजीत् अदाग्धाम् अघाष्टु । अघाजी अदाग्धम् अदाग्ध  
अघाक्षम् अघाक्ष्य अघाक्षम् । लुट्—दग्धा दग्धारौ दग्धा  
लृट्—धक्ष्यति धक्ष्यत धक्ष्यन्ति । आशी०—दह्यात् ।

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ पर इसके रूप डीयते डीयेते डीयन्ते चलते हैं ।

लुट्

प्र० पु०	अवात्सीव	अवात्ताम्
म० पु०	अवात्सी	अवात्तम्
उ० पु०	अवात्सम्	अवात्स्व

लुट्

प्र० पु०	वस्ता	वस्तारौ
----------	-------	---------

लृट्

प्र० पु०	वास्यति	वास्यत
म० पु०	वास्यसि	वास्यथ
उ० पु०	वास्यामि	वास्याव

यान्छ् (प०) — इच्छा करना । यान्छति यान्छत यान्छन्ति ।

यवान्छ यवान्छतु यवान्छु । यवान्छथ । लुट् — यवान्छ

लुट् यान्छिता । लृट् — यान्छिष्यति । आशी० — यान्छिष्य

वृध् (धा०) — वृद्धना । वृधते वृधते वृधन्ते । लिट् — वृधे

वृधिरे । वृधिरे वृधाये वृधिष्ये । वृधे वृधिष्ये वृधिष्य

लुट् — अवधिष्ट अवधिषाताम् अवधिषत । वृधत् वृधन्

वृधन् । लृट् — वृधिष्यते । वृधे वृधिष्यते वृधे वृधिष्यते

आशी०

वृधिषीष्ट	वृधिषीयास्ताम्	वृधिषीरन्
वृधिषीष्ठा	वृधिषीयास्थाम्	वृधिषीष्वन्
वृधिषीथ	वृधिषीवहि	वृधिषीवहि

१ यह लृट्, लुट् तथा लृट् में परस्मैपदी भी हो जाती है ।

४० )—जानना । बोधति, बोधते । लिट्—बुबोध बुबुधे । लुट्—  
अबुधत् अबुधताम् अबुधन् । अबोधोत् अबोधिष्याम् अबोधिषु ।  
अबोधिष्ये अबोधिष्यात् अबोधिष्यते । लुट्—बोधिता । लृट्—  
बोधिष्यति, बोधिष्यते । आशी०—बुध्यात्, बोधिषीष्ट ।

४० )—सेवा करना । भजति भजते । लिट्—बभाज बभजु भेजु ।  
भेजिथ बभक्थ भेजथु भेज । बभाज बभज भेजिथ भेजिथ । भेजे  
भेजाते भेजिरे । भेजिषे भेजाथे भेजिष्वे । भेजे भेजिवहे भेजिमहे ।  
लुट्—अभाजीत् अभाक्तम् अभाजु । अभाजी अभाक्तम्  
अभाक्त । अभाजम् अभाज्य अभाज्यम् । अभक्त अभक्ताम्  
अभक्त । अभक्था अभक्थाम् । अभक्त्म् । अभक्ति अभक्त्वहि  
अभक्त्वहि । लुट्—भक्ता । लृट्—भक्ष्यति भक्ष्यते । आशी०—  
भज्यात् भजीष्ट ।

आ० )—बोलना । भापते भापेते भापन्ते । लिट्—बभापे बभापाते  
बभापिरे । बभापिषे बभापाथे बभापिष्वे । बभापे बभापिवहे  
बभापिमहे । लुट्—अभापिष्ये अभापिष्यात् अभापिष्यते ।  
अभापिष्ये अभापिष्यात् अभापिष्यते । लुट्—भापिता । लृट्—भापिष्यते । आशी०—  
भापिषीष्ट ।

१ यह दिवादिगङ्गा भी है । वहाँ  
बलता है

बुध्यते

( ५० )—वरसना । वरपति वरत वरन्ति । लिट्—वरप वरपु । लुट्—वरपीत् । लृट्—वरिप्यति । आशी०—वृष्यात् ।

( ५० )—वज्रना । वज्रति । लिट्—वज्राज वज्रन्तु । लुट्—वज्रा जीत् वज्राजिष्टाम् । लुट्—वज्रिता । लृट्—वज्रिप्यति । आशी०—वज्यात् ।

( ५० )—स्तुति करना या चोद पहुँचाना । शसति । लिट्—शशस शशसतु शशसु । लुट्—अशसीत् अशसिष्टाम् अशसिषु । लृट्—शमिता । लृट्—शसिप्यति । आशी०—शस्यात् शस्या स्तान् शस्यासु ।

( आ० )—शङ्का करना । शङ्कते शङ्कते शङ्कन्ते । लिट्—शशङ्के शशङ्काने शशङ्किरे । लुट्—अशङ्किष्ट अशङ्किषाताम् अशङ्किषत । लृट्—शङ्किता । लृट्—शङ्किप्यते । आशी०—शङ्किषीष्ट ।

( आ० )—सीपना । शिषते । लिट्—शिशिषे । लृट्—अशिषिष्ट अशिषिषाताम् अशिषिषत । लृट्—शिषिता । लृट्—शिषिप्यते । आशी०—शिषिषीष्ट ।

( ५० )—शोक करना, पछताना । शोचति शोचत शोचन्ति । लिट्—शुशोच शुशोचतु शुशुचु । लृट्—अशोचिषु अशोचिष्टाम् अशोचिषु । लृट्—शोचिता । लृट्—शोचिप्यति । आशी०—शुच्यात् ।

( आ० )—शोभित होना, प्रसन्न होना । शोभते शोभते शोभन्ते । लिट्—शुशुभे शुशुभाते शुशुभिरे । लृट्—अशोभिष्ट अशो

म० पु०	अपक्ष्वा	अपक्ष्वाथाम्	अपक्ष्वम्
उ० पु०	अपक्षि	अपक्ष्वहि	अपक्ष्वहि

लुट्—पक्ता पक्तारौ पक्तार । लृट्—पक्ष्यति, पक्ष्यते । आशी०—पक्ष्यात्  
पक्षीष्ट । लृट्—अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत ।

पत् ( प० )—गिरना । पतति । लिट्—पपात पेततु पेतु ।

### लुङ्

प्र० पु०	अपप्तात्	अपप्तताम्	अपप्तन्
म० पु०	अपप्त	अपप्ततम्	अपप्त
उ० पु०	अपप्तम्	अपप्ताथ	अपप्ताम

लृट्—पतिता । लृट्—पतिप्यति ।

फल् ( प० )—फलना । फलति । लिट्—पफाल फेलतु फेलु । फेलिथ ।  
लृट्—अफालीत् अफालिष्टाम् । लृट्—फलिता । लृट्—  
फलप्यति ।

फुलल् ( प० )—फूलना । फुल्लति । लिट्—पुफुल्ल पुफुल्लतु पुफुल्लु ।  
लृट्—अफुल्लीत् अफुलिष्टाम् । लृट्—फुलिता । लृट्—  
फुलिप्यति ।

वाध् ( आ० )—पीडा देना । वाधते । लिट्—ववाधे ववाधाते ववाधिरे ।  
लृट्—अवाधिष्ट अवाधिपाताम् अवाधिपत । लृट्—वाधिता ।  
लृट्—वाधिप्यते ।

भिषाताम् असोभिषत । लुट्—शोनिता । लृट्—रोहि  
आशी०—शोभिषीष्ट ।

मह ( घा० )—महना । राहते । लिट्—सेहे सेहाते मेहिरे ।

लुट्

प्र० पु०	असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषा
म० पु०	असहिष्ठा	असहिषायाम्	असहिषर
उ० पु०	असहिषि	असहिष्यहि	असहिष्यी

लुट्

प्र० पु०	सोडा	सोडारी	सोडा
म० पु०	सोडामे	सोडामाथे	सोडाभ
उ० पु०	सोडाहे	सोडास्वहे	सोडागमे

अभया

प्र० पु०	महिता	महितारी	महिता
म० पु०	महितामे	महितामाथे	महिताभ
उ० पु०	महिताहे	महितास्वहे	महितान

लृट्—महिष्यते । आशी०—महिषीष्ट ।

मृ ( प० )—मरता । मरति मरत मरन्ति । लिट्—ममार ममृ ममृष्ये ।  
ममृष्ये ममृष्यते । ममृष्ये ममृष्यते । ममृष्ये ममृष्यते ।  
अमरत् अमरताम् अमरन्तथा अमरन्तथा अमरन्तथा अमरन्तथा  
लृट्—ममृष्ये । लृट्—ममृष्यते । आशी०—ममृष्ये ।

मेप् ( घा० )—मेप्ता मपता । मेप्ते मेप्ते मेप्ते । लिट्—मिप्ते मिप्ते

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अज्ञ, अज्ञात्	अज्ञातम्	अदन्तु
म० पु०	अद्वि, अज्ञात्	अज्ञम्	अज्ञ
उ० पु०	अद्वानि	अद्वान्	अद्वाम

## विधि—लिट्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्यु
म० पु०	अद्या	अद्यात्तम्	अद्यात्
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

## अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	आदा	आताम्	आदन् आदु-
म० पु०	आद	आत्तम्	आत्
उ० पु०	आदम	आद्व	आद्व

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जघास	जघतु	जघु
म० पु०	जघसिथ	जघथु	जघ
उ० पु०	जघाम, जघस	जघसिथ अथया	जघमिम
प्र० पु०	आद	आदु	आदु
म० पु०	आदिय	आदथु	आद
उ० पु०	आन्	आदिय	आन्मि

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अवसन्	अवसताम्	अवसन्
----------	-------	---------	-------



## परोक्षभूत—लिट्

० पु०	इयाय	ईयतु	इयु
१० पु०	इययिथ, इयेथ	ईयथु	इय
१० पु०	इयाय, इयय	ईयिव	इयिम

## सामान्यभूत—लुट्

० पु०	अगात्	अगात्ताम्	अगु
१० पु०	अगा	अगात्ताम्	अगात
१० पु०	अगाम्	अगाय	अगाम

## अनेद्यतनभविष्य—लुट्

० पु०	एता	एतारौ	एतार
१० पु०	एतासि	एतास्य	एतास्थ
३० पु०	एतासि	एतास्व	एतास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

० पु०	एष्यति	एष्यत	एष्यन्ति
१० पु०	एष्यसि	एष्यथ	एष्यथ
३० पु०	एष्यामि	एष्याव	एष्याम

## आशीर्लिङ्

० पु०	इयात्	इयास्ताम्	इयासु
१० पु०	इया	इयास्ताम्	इयान्त
३० पु०	इयास्तम्	इयास्व	इयाम्म

ह्लाद् ( आ० )—खुश होना या शब्द करना । ह्लादते । लिट्—जहा  
जह्लादाते जह्लादिरे । लुट्—अह्लादिष्ट । लुट्—ह्लादिवा  
लट्—ह्लादिष्यते । आशो०—ह्लादिषीष्ट

## ( २ ) अदादिगण

१४७—इस गण के आदि में अद्—खाना धातु है, इसलिये इसका नाम अदादि है । धातुपाठ में इस गण की ७२ धातुएँ पंक्ति हैं । इस गण की धातुओं के उपरान्त ही प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं । धातु और प्रत्यय के बीच में अदादिगण के अप् ( अ ) की तरह कुछ नहीं लाया जाता । उदाहरणार्थ अद् + मि = अस्मि, अद् + ति = अस्ति, स्ना + ति = स्नाति ।

परस्मैपदी आकारान्त धातुओं के अनन्तर अनद्यतन भूत के प्रथम पुंल्लिङ्ग बहुवचन के अन् प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से उस आता है ; जैसे—आदन् अथवा आदु ।

### परस्मैपदी

अद्—खाना ।

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अस्ति	अस्त	अदन्ति
म० पु०	अस्मि	अथ	अस्य
उ० पु०	अस्मि	अद्	अस्य

## क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०	ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्
म० पु०	ऐष्य	ऐष्यतम्	ऐष्यत
उ० पु०	ऐष्यम्	ऐष्याव	ऐष्याम

## उभयपदी

## द्रु—वोलना

## परस्मैपद

## घर्तमान—लट्

प्र० पु०	{ प्रवीति आह	{ द्रुत् आहत्	द्रुवन्ति आहु
म० पु०	{ प्रवीपि आस्थ	{ द्रुथ आहथु	द्रुय
उ० पु०	द्रुवीमि	द्रुव	द्रुम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	द्रुवीतु द्रुतात्	द्रुताम्	द्रुवन्तु
म० पु०	द्रुहि, द्रुतात्	द्रुतम्	द्रुत
उ० पु०	द्रुवाणि	द्रुवाव	द्रुवाम

## विधि—लिट्

प्र० पु०	द्रुयात्	द्रुयाताम्	द्रुयु
म० पु०	द्रुया	द्रुयातम्	द्रुयात
उ० पु०	द्रुयाम्	द्रुयाव	द्रुयाम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अत् अत्तात्	अत्ताम्	अदत्
म० पु०	अदि अत्तात्	अत्तम्	अत्त
उ० पु०	अदानि	अत्तात्	अदाम

## विधि—लिट्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्यु
म० पु०	अद्या	अद्यातम्	अद्यात्
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

## अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	आदन्	आत्ताम्	आदन् आदु-
म० पु०	आद	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	आदम	आद	आद्य

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जघात्	जघतु	जघु
म० पु०	जघसिथ	जघथु	जघ
उ० पु०	जघात्, जघस	जघसिव	जघमिम
		अयथा	
प्र० पु०	आद	आदतु	आदु
म० पु०	आदिय	आदयु	आद
उ० पु०	आत्	आदिय	आदिन

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अघमन्	अघमन्ताम्	अघमन्
----------	-------	-----------	-------



म० पु०	अघस	अघसतम्	अघसव
उ० पु०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तार१
म० पु०	अत्तासि	अत्तास्थ	अत्तास्थ
उ० पु०	अत्तास्मि	अत्तास्व	अत्तास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० प्र०	आस्यति	आस्यत	आस्यन्ति
म० पु०	आस्यसि	आस्यथ	आस्यथ
उ० पु०	आस्यामि	आस्याव	आस्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासु
म० पु०	अद्या	अद्यास्तम्	अद्यास्त
उ० पु०	अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	आस्यत्	आस्यताम्	आस्यन्
म० पु०	आस्य	आस्यतम्	आस्यत
उ० पु०	आस्यम्	आस्याव	आस्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासु
म० पु०	उच्या	उच्यास्तम्	उच्यास
उ० पु०	उच्यासम्	उच्यास्व	उच्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लट्

प्र० पु०	अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्
म० पु०	अवक्ष्य	अवक्ष्यत	अवक्ष्यत
उ० पु०	अवक्ष्यम्	अवक्ष्याव	अवक्ष्याम

## आत्मनेपद्

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	मूत्ते	मूवाते	मूवते
म० पु०	मूप्ते	मूवाथे	मूप्ते
उ० पु०	मूवते	मूवहे	मूमहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	मूताम्	मूवाताम्	मूवताम्
म० पु०	मूष्व	मूवाथाम्	मूष्वम्
उ० पु०	मूवै	मूवावहे	मूवामहे

## विप्रि—लिङ्

प्र० पु०	मुवीत	मुवीयाताम्	मुवीन्
म० पु०	मुवीथा	मुवीयाथाम्	मुवीष्यम्
उ० पु०	मुवीय	मुवीरहि	मुवीमहि

१४९-अदादिगण की अन्य धातुओं के रूप ।

परस्मपदा

अस—होना

वर्तमान—जट्

प्र० पु०	अस्मि	ह्य	सति
म० पु०	असि	स्य	स्य
व० पु०	अस्मि	स्व	स्म

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अस्तु	माव्	सन्तु
म० पु०	एधि, स्तात्	स्तम्	स्ता
व० पु०	अस्तानि	असाव	असाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्यु
म० पु०	स्या	स्यातम्	स्यात
व० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसी	आस्तम्	आस्त
व० पु०	आसम्	आस्व	आस

जोप लकारों में अस् धातु के रूप वे ही हैं जो अदादिगणी भू धातु के हैं ।





आत्मनेपदी

आस्—वैठना

घर्तमान—लट्

प्र० पु०	आस्ते	आसाते	आसते
म० पु०	आस्से	आसाथे	आप्थे
उ० पु०	आसे	आस्वहे	आस्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
म० पु०	आस्व	आसाथाम्	आप्वम्
उ० पु०	आसै	आसावहै	आमामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
म० पु०	आसीथा	आसीयाथाम्	आसीप्वम्
उ० पु०	आसीय	आमीवहि	आसीमहि

अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	आस्त	आसाताम्	आसत
म० पु०	आस्या	आसाथाम्	आप्वम्
उ० पु०	आसि	आस्वहि	आस्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	आसाञ्चक्रे	आसाञ्चकाते	आसाञ्चकिरे
म० पु०	आमाञ्चकृषे	आमाञ्चकाये	आमाञ्चकृष्वे
उ० पु०	आसाञ्चके	आसाञ्चकृवहे	आसाञ्चकृमहे

## आर्शीलिङ्

प्र० पु०	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
म० पु०	वक्षीष्ठा	वक्षीयास्थाम्	वक्षीध्वम्
उ० पु०	वक्षीय	वक्षीऽहि	वक्षीमहि

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यत
म० पु०	अवक्ष्यथा	अवक्ष्येथाम्	अवक्ष्यन्तम्
उ० पु०	अवक्ष्ये	अवक्ष्यावहि	अवक्ष्यामहि

## परस्मैपदी, श—जाना

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	याति	यात	यान्ति
म० पु०	यासि	याथ	याथ
उ० पु०	यामि	याव	याम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	यातु, यातात्	याताम्	यान्तु
म० पु०	याहि, यात। ३	यातम्	यान
उ० पु०	यानि	याव	याम

## ।विधि—लिङ्

प्र० पु०	यायात्	यायाताम्	यायु
म० पु०	याया	यायातम्	यायात
उ० पु०	यायाम्	यायाव	यायाम

आसाम्भूत तथा आसामास इत्यादि भौ होते हैं ।

सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	आसिष्ट	आसिषाताम्	आसिषत
म० पु०	आसिष्ठा	आमिषाधाम्	आसिष्वम्
उ० पु०	आसिषि	आसिषिहि	आसिष्वहि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	आमिता	आसितारी	आसितार , इत्यादि ।
----------	-------	---------	-----------------------

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	आमिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते, इत्यादि ।
----------	----------	-----------	--------------------------

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	आसिषीष्ट	आसिषीषाम्	आसिषीरन् , इत्यादि ।
----------	----------	-----------	-------------------------

क्रियातिपत्ति—लङ्

प्र० पु०	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त, इत्यादि ।
----------	---------	-------------	-------------------------

आत्मनेपदी

( अधि + ) इट्—अध्ययन करना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
म० पु०	अधीषे	अधीषाथे	अधीषे
उ० पु०	अधीये	अधीषहे	अधीमहे

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अयात्	अयाताम्	अयु
म० पु०	अया	अयातम्	अयात
उ० पु०	अयाम्	अयात्र	अयाम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ययौ	ययतु	ययु
म० पु०	ययिथ, ययाथ	ययथु	यय
उ० पु०	ययौ	ययित्र	ययिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषु
म० पु०	अयासी	अयासिष्टम्	अयामिष्ट
उ० पु०	अयासिपम्	अयामिष्य	अयासिष्म

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	याता	यातारी	यातार
म० पु०	यातासि	यातास्य	यातास्य
उ० पु०	यातासि	याताम्ब	यातास्मः

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	यास्यति	यास्यत	यास्यति
म० पु०	यास्यमि	यास्यथ	यास्यथ
उ० पु०	यास्यामि	यास्यात्र	यास्याम

## आजीर्णित्

प्र० पु०	यायात्	यायास्ताम्	यायातु
----------	--------	------------	--------

५५१३५६

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयतान्
म० पु०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीष्वम्
उ० पु०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

## विधि—लिङ्

प्र० पु०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीत
म० पु०	अधीयीथा	अधीयीयाथाम्	अधीयीष्व
उ० पु०	अधीयाय	अधीयीवहि	अधीयीमा

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
म० पु०	अध्यैथा	अध्यैयाथाम्	अध्यैष्वम्
उ० पु०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
म० पु०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिष्वे
उ० पु०	अधिजगे	अधिजगित्रहे	अधिजगिमहे

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अध्यगीष्ट	अध्यगीपाताम्	अध्यगीपत
म० पु०	अध्यगीष्ठा	अध्यगीपाथाम्	अध्यगीट्पम्
उ० पु०	अध्यगीपि	अध्यगीप्वहि	अध्यगीप्महि

म० पु०	याया	यायास्तम्	यायास्त
उ० पु०	यायासम्	यायास्व	यायास्म

## क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
म० पु०	अयास्य	अयास्यतम्	अयास्यत
उ० पु०	अयास्यम्	अयास्याव	अयास्याम

ख्या ( कहना ), पा ( पालना ), भा ( चमकना ), मा ( नाचना ),  
रा ( देना ), ला ( देना या लेना ), वा ( बहना ) के रूप या के समा  
होते हैं ।

परस्मैपदी  
रट्—रेना  
वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रोदिति	रदित	रदन्ति
म० पु०	रोदिषि	रदिथ	रदिथ
उ० पु०	रोदिमि	रदिव	रदिम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रोदितु	रदिताम्	रदन्तु
म० पु०	रुदिहि	रदितम्	रदित
उ० पु०	रोदानि	रोदाव	रोदाम

## अथवा

पु०	अध्यैष्ट	अध्यैपाताम्	अध्यैपत
पु०	अध्यैष्टा	अध्यैपाथाम्	अध्यैष्वम् द्वम्
पु०	अध्यैणि	अध्यैष्वाहि	अध्यैष्महि

## अनद्यतनमविष्य—लृट्

पु०	अध्येता	अध्येतारी	अध्येतार
पु०	अध्येतासे	अध्येतासाये	अध्येताध्ये
पु०	अध्येताहे	अध्येतास्वहे	अध्येतास्महे

## सामान्यमविष्य—लृट्

पु०	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
पु०	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
पु०	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

## आशीर्लिङ्

पु०	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्	अध्येषीरन्
पु०	अध्येषीष्टा	अध्येषीयास्थाम्	अध्येषीष्वम्
पु०	अध्येषीय	अध्येषीवहि	अध्येषीमहि

## क्रियानिपत्ति—लृट्

पु०	अध्यगीष्यत	अध्यगीष्येताम्	अध्यगीष्यन्त
पु०	अध्यगीष्यथा	अध्यगीष्येथाम्	अध्यगीष्यध्वम्
पु०	अध्यगीष्ये	अध्यगीष्यावहि	अध्यगीष्यामहि



## विधि-लिट्

प्र० पु०	रद्यात्	रद्याताम्	रद्यु
म० पु०	रद्या	रद्यातम्	रद्यात
उ० पु०	रद्याम्	रद्याऽ	रद्याम

## अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अरोदीत्, अरोदत्	अरन्तिताम्	अरन्तु
म० पु०	अरोदी, अरोऽ	अरदितम्	अरदित
उ० पु०	अरोदम्	अरदिव	अरदिम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	र्रोद	ररन्तु	ररु
म० पु०	र्रोदिष	ररन्थु	ररद
उ० पु०	र्रोद	ररदिऽ	ररदिम

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	{ अरदत् अरोदीत्	{ अरदताम् अरोदिष्टाम्	{ अरदन् अरोदिषु
म० पु०	{ अरद अरोदी	{ अरदतम् अरोदिष्टम्	{ अरदन् अरोदिष्ट
उ० पु०	{ अरदम् अरोदिषम्	{ अरदाव अरोदिष्य	{ अरदाम अरोदिम

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	रोदिता	रोदितारी	रोदितार
म० पु०	रोदितासि	रोदितास्य	रोदिताम्य
उ० पु०	रोदितास्मि	रोदितास्य	रोदितास्म

## अथवा

प्र० पु०	अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यन्त
म० पु०	अध्यैष्यथा	अध्यैष्येथाम्	अध्यैष्यन्त
उ० पु०	अध्यैष्ये	अध्यैष्येयावहि	अध्यैष्यन्त

## परस्मैपदी

## इ—जाना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	एति	इत	यन्ति
म० पु०	एपि	इथ	इथ
उ० पु०	एमि	इव	इम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	एतु	इताम्	यन्तु
म० पु०	इहि	इतम्	इत
उ० पु०	अयानि	अयाव	अयाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयाताम्	इयु
म० पु०	इया	इयातम्	इयात
उ० पु०	इयाम्	इयाव	इयाम

## अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	ऐत्	ऐताम्	आयन्
म० पु०	ऐ	ऐतम्	ऐत
उ० पु०	आयम्	ऐव	ऐम



० पु०	शधि	शिष्टम्	शिष्ट
० पु०	शामानि	शासाव	शासाम
	चिचिलिट्		
० पु०	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्यु
० पु०	शिष्या	शिष्यातम्	शिष्यान्
० पु०	शिष्याम्	शिष्यान्	शिष्याम्
	अनद्यतनभूत—लट्		
प्र० पु०	अशात्	अशिष्टाम्	अशासु
म० पु०	अशा, अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट
उ० पु०	अशासम्	अशिष्ट	अशिष्टम्
	परोक्षभूत—लिट्		
प्र० पु०	शशास	शशामतु	शशामु
म० पु०	शशासिथ	शशासथु	शशास
उ० पु०	शशास	शशासिथ	शशासिन्
	सामान्यभूत—लुट्		
प्र० पु०	अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्
म० पु०	अशिष	अशिषतम्	अशिषत
उ० पु०	अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम
	अनद्यतनभविष्य—लुट्		
प्र० पु०	शासिता	शासितारौ	शासितार
म० पु०	शासितासि	शासितास्थ	शासितास्थ
उ० पु०	शासितास्मि	शासितान्य	शासितात्म

आशीर्लिट्

प्र० पु०	धेयात्	धेयान्ताम्	धेयामु
म० पु०	धेया	धेयान्मम्	धेयान्त
उ० पु०	धेयासम्	धेयास्य	धेयान्म

क्रियातिपत्ति—लट्

प्र० पु०	अधास्यत्	अधास्यताम्	अधास्यन्
म० पु०	अधास्य	अधास्यतम्	अधास्यत
उ० पु०	अधास्यम्	अधास्यान	अधास्याम

आत्मनेपद

धर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	धत्ते	दधाते	दधते
म० पु०	धत्से	दधाथे	दधथे
उ० पु०	दधे	दधहे	दधमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
म० पु०	धत्स्व	दधाथाम्	दध्वम्
उ० पु०	दधे	दधावह	दधामहे

विधिलिट्

प्र० पु०	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
म० पु०	दधीया	दधीयाथान्	दधीथ्यम्
उ० पु०	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शासिष्यति	शासिष्यत	शासिष्यति
म० पु०	शासिष्यमि	शासिष्यथ	शासिष्यथ
उ० पु०	शासिष्यामि	शासिष्याव	शासिष्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासु
म० पु०	शिष्या	शिष्यास्तम्	शिष्याम्
उ० पु०	शिष्यासम्	शिष्यास्व	शिष्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०	अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्	अशासिष्यन्
म० पु०	अशासिष्य	अशासिष्यतम्	अशासिष्यथ
उ० पु०	अशासिष्यम्	अशासिष्याव	अशासिष्याम

## आत्मनेपदी

## शी—लेटना

## घर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शेते	शयाते	शेरते
म० पु०	शेपे	शयाथे	शेध्वे
उ० पु०	शये	शेवहे	शेमहे

## आद्या—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्

## अनयतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अधत्त	अदधाताम्	अदधत्
म० पु०	अधरथा	अदधाथाम्	अधद्भ्वम्
उ० पु०	अदधि	अदध्महि	अदधमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधे	दधाते	दधिरे
म० पु०	दधिषे	दधाथे	दधिष्वे
उ० पु०	दधे	दधिवहे	दधिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधित	अधिपाताम्	अधिपत्
म० पु०	अधिथा	अधिपाथाम्	अधिष्वम्
उ० पु०	अधिपि	अधिष्वहि	अधिष्महि

## अनयतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	धातार
म० पु०	धातासे	धातासाथे	धाताभ्वे
उ० पु०	धाताहे	धातास्वहे	धातासहे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
म० पु०	धास्यसे	धास्येथे	धास्यन्वे
उ० पु०	धास्ये	धास्यावहे	धास्यामहे

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	धासीष्ट	धासीयास्ताम्	धासीरन्
----------	---------	--------------	---------

प्र० पु०	शेष्व	शयाथाम्	शेष्वम्
उ० पु०	शयै	शयावहे	शयामहे

## विप्रितिट्

प्र० पु०	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
म० पु०	शयीथा	शयीयाथाम्	शयीध्वन्
उ० पु०	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

## अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
म० पु०	अशेथा	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उ० पु०	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शिश्ये	शिश्याते	शिशियरे
म० पु०	शिशिये	शिश्याधे	शिशियन्वे इषे
उ० पु०	शिश्ये	शिश्यिवहे	शिशियमहे

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
म० पु०	अशयिष्ठा	अशयिषाथाम्	अशयिष्टन्, ध्वम्
उ० पु०	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिषमहि

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	शयिता	शयितारौ	शयितार
म० पु०	शयितासे	शयितामाधे	शयिताध्वे
उ० पु०	शयिताहे	शयिताश्वहे	शयिताममहे



प्र० पु०	धासीष्ठा	धामीयास्याम्	धासीध्वम्
उ० पु०	धामीय	धासीवहि	धासीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अधास्यत्	अधास्येताम्	अधास्यन्त
म० पु०	अधास्यथा	अधास्येयाम्	अधास्यध्वम्
उ० पु०	अधास्ये	अधास्याग्रहि	अधामास्यहि

परस्मैपदी भी—डरना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	विभेति	विभितः, विभीत	विभ्यति
म० पु०	विभेयि	विभिथ विभीथ	विभिथ, विभीथ
उ० पु०	विभेमि	विभिथ, विभीथ	विभिथ, विभीथ

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	{ विभेतु विभितात्	{ विभिताम् विभीताम्	विभ्यतु
म० पु०	{ विभिहि विभीहि	{ विभितम् विभीतम्	{ विभित विभीत
उ० पु०	विभयानि	विभयाव	विभयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	{ विभियात् विभीयात्	{ विभियाताम् विभीयाताम्	{ विभियु विभीयु
म० पु०	{ विभिया विभीया	{ विभियातम् विभीयातम्	{ विभियात विभीयात

## सामान्यभविष्य—लट्

प्र० पु०	शयिष्यते	शयिष्यते	शयिष्यन्
म० पु०	शयिष्यस	शयिष्येधे	शयिष्यथ
उ० पु०	शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यन्त

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीत
म० पु०	शयिषाष्टा	शयिषीयास्याम्	शयिषीष्टथ
उ० पु०	शयिषीय	शयिषीयहि	शयिषीमहि

## क्रियातिपत्ति—लङ्

प्र० पु०	अशयिष्यन्	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
म० पु०	अशयिष्यथा	अशयिष्येधाम्	अशयिष्यथ
उ० पु०	अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यन्त

## परस्मैपदी

## स्ना—स्नान कर्त्तुम्

## धर्तमान—लट्

	एकस्मिन्	द्विषथा	पटुपथा
प्र० पु०	स्नाति	स्नान	स्नान्ति
म० पु०	स्नासि	स्नाथ	स्नाथ
उ० पु०	स्नानि	स्नाथ	स्नाथ

## आज्ञा—तेट्

प्र० पु०	स्नातु, स्नाताय	स्नाताम्	स्नातु
म० पु०	स्नादि, स्नाताय	स्नातम	स्नात

उ० पु०	{ विभियाम् विभीयाम्	{ विभियाव विभीयाव	{ विभियाम विभीयाम
--------	------------------------	----------------------	----------------------

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अविभेत्	{ अविभिताम् अविभीताम्	अविभयु
----------	---------	--------------------------	--------

म० पु०	अविभे	{ अविभितम् अविभीतम्	{ अविभित अविभीत
--------	-------	------------------------	--------------------

उ० पु०	अविभयम्	{ अविभिष अविभीष	{ अविभिष अविभीष
--------	---------	--------------------	--------------------

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विभयाञ्चकार	विभयाञ्चकृत्	विभयाञ्चकृ
----------	-------------	--------------	------------

म० पु०	विभयाञ्चक्य	विभयाञ्चकथु	विभयाञ्चक
--------	-------------	-------------	-----------

उ० पु०	{ विभयाञ्चकार विभयाञ्चक	विभयाञ्चकृष्य	विभयाञ्चकृम
--------	----------------------------	---------------	-------------

प्र० पु०	विभयाग्यभूव	विभयाग्यभूवतु	विभयाग्यभूयु
----------	-------------	---------------	--------------

म० पु०	विभयाग्यभूविय	विभयाग्यभूवथु	विभयाग्यभूव
--------	---------------	---------------	-------------

उ० पु०	विभयाग्यभूव	विभयाग्यभूविव	विभयाग्यभूविम
--------	-------------	---------------	---------------

प्र० पु०	विभयामास	विभयामासतु	विभयामासु
----------	----------	------------	-----------

म० पु०	विभयामासिथ	विभयामासथु	विभयामास
--------	------------	------------	----------

उ० पु०	विभयामास	विभयामासिव	विभयामासिम
--------	----------	------------	------------

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषु
----------	---------	-----------	-------

आदा-लोट्

तु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
तहि	स्वपितम्	स्वपित
तनि	स्वपाव	स्वपाम

चिधिलिङ्

यात्	स्वप्याताम्	स्वप्यु
या	स्वप्यातम्	स्वप्यात
याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

अनद्यतनभूत-लिट्

चपीत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
चपत्		
चपी	अन्वपितम्	अस्वपित
चप		
चपम्	अस्वपि	अस्वपिम

परोक्षभूत-लिट्

सुप्वाप	सुपुपत्	सुपुप्
सुप्वापिथ, सुप्वाप्य	सुपुपथु	सुपुप
सुप्वाप, सुप्वाप	सुपुपि	सुपुपिम

भामान्यभूत-लुङ्

अन्वासात्	अन्वाप्सु
अन्वासात्	अन्वाप्त
	अन्वाप्सम

म० पु०	अभैषी	अभैष्टम्	अभैष्ट
उ० पु०	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	मेता	मेतारौ	मेतार
म० पु०	मेतासि	मेताम्ह	मेतारथ
उ० पु०	मेतास्मि	मेतास्व	मेताम

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	मेप्यति	मेप्यत	मेप्यन्ति
म० पु०	मेप्यसि	मेप्यथ	मेप्यथ
उ० पु०	मेप्यामि	मेप्याव	मेप्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भीयार	भीयास्ताम्	भीयासु
म० पु०	भीया	भीयास्तम्	भीयास
उ० पु०	भीयासम्	भीयास्व	भीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०	अमेप्यत्	अमेप्यताम्	अमेप्यन्
म० पु०	अमेप्य	अमेप्यतम्	अमेप्य
उ० पु०	अमेप्यम्	अमेप्याव	अमेप्याम

## सामान्यभविष्य—लट्

प्र० पु०	स्नास्यति	स्नास्यत	स्नास्यन्ति
म० पु०	स्नास्यसि	स्नास्यथ	स्नास्यथ
उ० पु०	स्नास्यामि	स्नास्याव	स्नास्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्नायात्	स्नायास्ताम्	स्नायासु
म० पु०	स्नाथा	स्नायास्तम्	स्नायास्त
उ० पु०	स्नायासम्	स्नायास्व	स्नायास्म

## अथवा

प्र० पु०	स्नेयात्	स्नेयास्ताम्	स्नेयासु
म० पु०	स्नेया	स्नेयास्तम्	स्नेयास्त
उ० पु०	स्नेयासम्	स्नेयास्व	स्नेयास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अस्नास्यत्	अस्नास्यताम्	अस्नास्यन्
म० पु०	अस्नास्य	अस्नास्यतम्	अस्नास्यत
उ० पु०	अस्नास्यम्	अस्नास्यात्	अस्नास्याम

## परस्मैपदी

## स्वप्—सोना

## धर्तमान—लट्

प्र० पु०	स्वपिति	स्वपित	स्वपन्ति
म० पु०	स्वपिपि	स्वपिथ	स्वपिथ
उ० पु०	स्वपिमि	स्वपिव	स्वपिम

## परस्मैपदी

हा—छोडना

वर्तमान—जट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहाति	{ जहित जहीत	जहति
म० पु०	जहासि	{ जहिथ जहीथ	{ जहिथ जहीथ
उ० पु०	जहामि	{ जहिव जहीव,	{ जहिम जहीम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	{ जहातु जहितात् जहीतात्	{ जहिताम् जहीताम्	जहतु
म० पु०	{ जहाहि जहिहि, जहीहि जहितात्, जहीतात्	{ जहितम् जहीतम्	{ जहित जहीत
उ० पु०	जहानि	जहाव	जहाम

विधिलिट्

प्र० पु०	जह्यात्	जह्याताम्	जह्यु
म० पु०	जह्या.	जह्यातम्	जह्यात
उ० पु०	जह्याम्	जह्याव	जह्याम

अनर्द्यतनभूत—जट्

प्र० पु०	अजहात्	{ अजहीताम् अजहिताम्	अजहु
----------	--------	------------------------	------

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
म० पु०	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उ० पु०	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

## विधिलिट्

प्र० पु०	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्यु
म० पु०	स्वप्या	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उ० पु०	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	{ अस्वपीत् अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
म० पु०	{ अस्वपी अस्वप	अस्वपितम्	अस्वपित
उ० पु०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	सुप्वाप	सुपुपतु	सुपुपु
म० पु०	सुप्त्रपिय, सुप्त्रप्य	सुपुपथु	सुपुप
उ० पु०	सुप्वाप, सुप्त्रप	सुपुपिव	सुपुपिम

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सु
म० पु०	अस्वाप्सी	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
उ० पु०	अस्वाप्सम्	अस्वाप्त्व	अस्वाप्सम



म० पु०	दीव्य, दीव्यतात्	दीव्यतम्	दीव्यत
व० पु०	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

विधिलिङ्

म० पु०	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयु
म० पु०	दीव्ये	दीव्येतम्	दीव्येत
व० पु०	दीव्येयम्	दीव्येय	दीव्येम

अनप्रतनभूत—लङ्

म० पु०	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
म० पु०	अदीव्य	अदीव्यतम्	अदीव्यत
व० पु०	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

परोक्षभूत—लिट्

म० पु०	दिदेव	दिदिगु	दिदिबु
म० पु०	दिदेविष	दिदिगु	दिदिब
व० पु०	दिदेव	दिदिविष	दिदिविम

सामान्यभूत—लुट्

म० पु०	अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषु
म० पु०	अदेवी	अदेविष्टम्	अदेविष्ट
व० पु०	अदेविषम्	अदेविष्य	अदेविष्य
लुट्—	देविता	देवितारौ	देवितार
लुट्—	देविष्यति	देविष्यत	देविष्यन्ति
मागो०—	दीव्यात्	दीव्याम्ताम्	दीव्याम्
लुट्—	अदेविष्यन्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्

	प्र० पु०	एकवचन	स्वप्ता
लुट्—	"	"	स्वप्
लट्—	"	"	सुप्
आगोर्लिङ्—	"	"	अस्
लट्—	"	"	

## परस्मैपदी

## श्चस्—सांस लेना

	प्र० पु०	एकवचन	श्चसिति ।
जट्—	"	"	श्चसितु ।
लोट्—	"	"	श्चस्यात् ।
विधि—	"	"	अश्चसीव
जड्—	"	"	शश्वास
लिट्—	"	"	अश्चसी
लुङ्—	"	"	श्चसित
लुट्—	"	"	श्चसि
लट्—	"	"	

श्चस् के रूप स्वप् के समान होते हैं

## परस्मैपदी

## हन्—मार डालना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	हन्ति	हत्
म० पु०	हसि	हय
उ० पु०	हन्मि	हन्व

म० पु०	हेया	हेयान्तम्	हेयास्त
उ० पु०	हेयासम्	हेयास्व	हेयास्म
क्रियातिपत्ति—लङ्			
प्र० पु०	अहास्यस्	अहास्यताम्	अहास्यन्
म० पु०	अहास्य	अहास्यतम्	अहास्यत
उ० पु०	अहास्यम्	अहास्याव	अहास्याम

### ( ४ ) दिवादिगण

१५१—इस गण की प्रथम धातु दिव् ( जुआ खेलना ) है इस कारण इसका नाम दिवादिगण है । इस में १४० धातुएँ हैं । इस गण की धातुओं और प्रत्ययों के बीच में श्यन् ( य ) जोड़ा जाता है , जैसे—मन् धातु से मन् + य + ते = मन्यते । कुप् + य + ति = कुप्यति ।

नीचे इस गण की मुख्य २ धातुओं के रूप दिखाए जाते हैं —

#### परस्मैपदी

#### ( क ) दिव्—जुआ खेलना

#### वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दीव्यति	दीव्यत	दीव्यन्ति
म० पु०	दीव्यसि	दीव्यथ	दीव्यथ
उ० पु०	दीव्यामि	दीव्याव	दीव्याम

#### आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दीव्यतु, दीव्यतात्	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
----------	--------------------	-----------	-----------

## आद्या-लोट्

प्र० पु०	हन्तु, हतात्	हताम्	हन्तु
म० पु०	जहि, हतात्	हतम्	हत
उ० पु०	हनानि	हनाव	हनाम

## विधिलिट्

प्र० पु०	हन्यात्	हन्याताम्	हन्तु
म० पु०	हन्या	हन्यातम्	हन्यात
उ० पु०	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

## अनद्यतनभूत-लङ्

प्र० पु०	अहन्	अहताम्	अहन्
म० पु०	अहन्	अहतम्	अहत
उ० पु०	अहनम्	अहव	अहन्म

## परोक्षभूत-लिट्

प्र० पु०	जघान	जघतु	जघ्नु
म० पु०	जघतिथ, जघथ	जघथु	जघ्न
उ० पु०	जघान, जघन	जग्निव	जग्निम

## सामान्यभूत-लुट्

प्र० पु०	अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषु
म० पु०	अवधी	अवधिष्टम्	अवधिष्ट
उ० पु०	अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म

म० पु०	दीव्य, दीव्यतात्	दीव्यतम्	दीव्यत
उ० पु०	दीव्यानि	दी०भाव	दीव्याम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	दी०येत्	दीव्येताम्	दीव्येयु
म० पु०	दीव्ये	दीव्येतम्	दीव्येत
उ० पु०	दीव्येयम्	दी०येव	दीव्येम

## अनप्रतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदी०यत्	अदी०यताम्	अदीव्यन्
म० पु०	अदी०य	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उ० पु०	अदीव्यम्	अदी०याव	अदीव्याम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दिदेव	दिदिषत्	दिदिबु
म० पु०	दिदेविष	दिदिबुधु	दिदिब
उ० पु०	दिदेव	दिदिविव	दिदिविम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदेवीत्	अदेविप्याम्	अदेविपु
म० पु०	अदेवो	अदेविप्यम्	अदेविप्य
उ० पु०	अदेविप्यम्	अदेविप्य	अदेविप्यम्
लुङ्—	देविता	देवितारी	देवितार
लुङ्—	देविप्यति	देविप्यत	देविप्यन्ति
आगी०—	दीव्यान्	दीव्यास्ताम्	दी०यासु
लुङ्—	अदेविप्यत्	अदेविप्यताम्	अदेविप्यन्

उ० पु०	दध्याम्	दध्याव	दध्याम
--------	---------	--------	--------

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदधात्	अधत्ताम्	अदधु
----------	--------	----------	------

म० पु०	अदधा	अधत्तम्	अधत्त
--------	------	---------	-------

उ० पु०	अदधाम्	अदध्व	अदध्म
--------	--------	-------	-------

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधौ	दधतु	दधु
----------	-----	------	-----

म० पु०	दधिथ, दधाय	दधथु	दध
--------	------------	------	----

उ० पु०	दधौ	दधिव	दधिम
--------	-----	------	------

सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अधात्	अधाताम्	अधु
----------	-------	---------	-----

म० पु०	अधा	अधातम्	अधात
--------	-----	--------	------

उ० पु०	अधाम्	अधाव	अधाम
--------	-------	------	------

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	धातार
----------	------	--------	-------

म० पु०	धातासि	धातास्थ	धातास्थ
--------	--------	---------	---------

उ० पु०	धातासि	धातास्व	धातासः
--------	--------	---------	--------

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	धास्यति	धास्यत	धास्यन्ति
----------	---------	--------	-----------

म० पु०	धास्यसि	धास्यथ	धास्यथ
--------	---------	--------	--------

उ० पु०	धास्यामि	धास्याव	धास्याम
--------	----------	---------	---------

६

आत्मनेपदी  
( ख ) जन्—पैदा होना

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जायते	जायेते	जायन्ते
म० पु०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उ० पु०	जाये	जायावहे	जायामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
म० पु०	जायस्व	जायेयाम्	जायध्वम्
उ० पु०	जायै	जायावहै	जायामहै

विधिलिट्

प्र० पु०	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
म० पु०	जायेथा	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उ० पु०	जायेय	जायेरहि	जायेमहि

अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
म० पु०	अजायथा	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उ० पु०	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिरे	जज्ञाथे	जज्ञिद्वे

२० पु०      अच्      जणियहे      जणिमट

सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अजनि, अजनिष्ट	अजणिपाताम्	अजणिपन
म० पु०	अजनिप्ता	अजणिपायाम्	अजणिपम्
त० पु०	अजनिपि	अजनिपिदि	अजनिपिदि
लुट्—	अनिता	अनितारी	अनितार
लुट्—	अनिष्यते	अनिष्ये	अनिष्यन्ते
आजी०—	अनिपीष्ट	अनिषायागताम्	अनि गीत
लुट्—	अजनिप्यत	अजनिप्येताम्	अजनिप्यन्त

परस्मैपदी

( ग ) कुप्—कोप कर्ता

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	कुप्यति	कुप्यत	कुप्यन्ति
म० पु०	कुप्यसि	कुप्यथ	कुप्यथ
त० पु०	कुप्यामि	कुप्याव	कुप्याम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु
म० पु०	कुप्य	कुप्यताम्	कुप्यन्त
त० पु०	कुप्याति	कुप्यात	कुप्यान्त





## विगिलिङ्

प्र० पु०	कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयु
म० पु०	कुप्ये	कुप्येतम्	कुप्येत
उ० पु०	कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम

## अनघतनभूत—लट्

प्र० पु०	अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्
म० पु०	अकुप्य	अकुप्यतम्	अकुप्यत
उ० पु०	अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चुकोप	चुकुपत्	चुकुपु
म० पु०	चुकोपिथ	चुकुपथु	चुकुप
उ० पु०	चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्
म० पु०	अकुप	अकुपतम्	अकुपत
उ० पु०	अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम
लुट्—	कोपिता	कोपितारौ	कोपितार
लृट्—	कोपिष्यति	कोपिष्यत	कोपिष्यन्ति
आशी०—	कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासु
लृङ्—	अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्	अकोपिष्यन्

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चिनोतु	चिनुताम्	चिन्यन्तु
म० पु०	चिनु	चिनुतम्	चिनुत
उ० पु०	चितवानि	चिनयाव	चिनवाम

## विधिलिट्

प्र० पु०	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयु
म० पु०	चिनुया	चिनुयातम्	चिनुयात
उ० पु०	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम

## अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
म० पु०	अचिनो	अचिनुतम्	अचिनुत
उ० पु०	अचिनवम्	अचिन्व	अचिन्म

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिकाय	चिक्यतु	चिक्यु
म० पु०	चिकयिथ चिकेथ	चिक्यथु	चिक्य
उ० पु०	चिकाय, चिकय	चिकियव	चिक्रियम

## अथवा

प्र० पु०	चिचाय	चिच्यतु	चिच्यु
म० पु०	चिचयिथ, चिचेथ	चिच्यथु	चिच्य
उ० पु०	चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचैपीत्	अचैष्टाम्	अचैषु
----------	---------	-----------	-------

आत्मनेपद्  
वर्त्तमान—लट्  
( व ) विद्—होना

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	विद्यते	विद्येते	विद्यन्ते
म० पु०	विद्यसे	विद्येथे	विद्यामे
उ० पु०	विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	विद्यताम्	विद्यताम्	विद्यन्ताम्
म० पु०	विद्यस्व	विद्येयाम्	विद्यध्वम्
उ० पु०	विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे

विगितिङ्

प्र० पु०	विद्येत	विद्ययाताम्	विद्येरन्
म० पु०	विद्येथा	विद्येयाथाम्	विद्येभ्यम्
उ० पु०	विद्येय	विद्यागहि	विद्येमहि

अनद्यतनभूत—लिट्

प्र० पु०	अविद्यत	अविद्येताम्	अविद्यन्त
म० पु०	अविद्यथा	अविद्येयाम्	अविद्यभ्यम्
उ० पु०	अविद्ये	अविद्यागहि	अविद्यामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विचिदे	विचिदाते	विचिदिरे
----------	--------	----------	----------

म० पु०	अचैपी	अचैष्टम्	अचैष्ट
उ० पु०	अचैपम्	अचैष्ट	अचैष्ट
लृट्—	चेता	चेतारौ	चेतार.
लृट्—	चेप्यति	चेप्यत	चेप्यति
आशी०—	चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासु
लृट्—	अचेप्यत्	अचेप्यताम्	अचेप्यन्

## आत्मनेपद

## घर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	चिनुते	चिन्वाते	चिन्वाते
म० पु०	चिनुपे	चिन्वाथे	चिनुपे
उ० पु०	चिन्ते	चिनुवहे, चिन्वहे	चिनुमहे, चिन्महे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वाताम्
म० पु०	चिनुध्व	चिन्वायाम्	चिनुध्वम्
उ० पु०	चिनवै	चिन्वावहै	चिन्वामहै

## विधिलिट्

प्र० पु०	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीर
म० पु०	चिन्वीथा	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
उ० पु०	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि

## अनद्यतनभूत—लृट्

प्र० पु०	अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत
----------	--------	-------------	---------

म० पु०	विविदिपे	विविदाथे	विविदिध्वे
उ० पु०	विविदे	विविदिवहे	विविदिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवित्त	अविस्ताताम्	अविस्तत
म० पु०	अविस्था	अविस्ताथाम्	अविद्वध्वम्
उ० पु०	अवित्सि	अविस्वहि	अत्रिस्महि
लृट्—	वेत्ता	वेत्तारौ	वेत्तार
लृट्—	वेत्स्यते	वेत्स्येते	वेत्स्यन्ते
आशी०—	विस्तीष्ट	विस्तीयास्ताम्	विस्तीरम्
लृङ्—	अवेत्स्यत	अवेत्स्येताम्	अवेत्स्यन्त

१५२—नीचे कुछ मुख्य धातुओं की सूची दी जाती है ।

कम् ( प० )—जाना । क्रमयति । लृट्—कमिता, क्रन्ता । लृट्—क्रमिष्यति ।

आशी०—कन्यात् । लृङ्—अक्रमिष्यत् ।

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्राम	चक्रमतु	चक्रमु
म० पु०	चक्रमिथ	चक्रमथु	चक्रम
उ० पु०	चक्राम, चक्रम	चक्रमिव	चक्रमिम

## सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अकमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषु
म० पु०	अकमी	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
उ० पु०	अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्व

म० पु०	अचिनुथा	अचिन्नाथाम्	अचिनुष्यम्
उ० पु०	अचिन्नि	अचिन्नाहि	अचिन्नाहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्थे	चिन्त्याते	चिक्थिरे
म० पु०	चिक्थिपे	चिक्थ्याथे	चिक्थिष्वे
उ० पु०	चिन्थे	चिक्थिगृहे	चिक्थिमहे

## अथवा

प्र० पु०	चिच्ये	चिच्यते	चिच्यिरे
म० पु०	चिच्यिपे	चिच्य्याथे	चिच्यिष्वे
उ० पु०	चिच्ये	चिच्यिवहे	चिच्यिमहे

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अचेष्ट	अचेष्टाताम्	अचेष्टत
म० पु०	अचेष्टा.	अचेष्टाथाम्	अचेष्ट्वम्
उ० पु०	अचेष्टि	अचेष्टाहि	अचेष्टमहि

लुट्—	चेता	चेतारौ	चेतार
लुट्—	चेप्यते	चेप्येते	चेप्यन्ते
आशी०—	चेपीष्ट	चेपीयास्ताम्	चेपीरन्
लुट्—	अचेप्यत	अचेप्येताम्	अचेप्यन्त

क्रुध् (प०)—गुस्सा करना । क्रुध्यति । लिट्—क्रुधोद्य । लृट्—अक्रुधत् ।  
लुट्—क्रोद्धा । लृट्—क्रोत्स्यति । आशी०—क्रु यान् । लृट्—  
अक्रोत्स्यत् ।

क्रिश् (आत्म०)—दु खो होना, हेश पाना । क्रिश्यते । लृट्—हेशिता ।  
लृट्—हेशिष्यते । आशी०—हेशिपीष्ट । लृट्—अहेशिष्यत् ।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिह्नेश	चिह्निशतु	चिह्निशु
म० पु०	{ चिह्नेशिय चिह्नेष्ट	चिह्निशधु	चिह्निश
उ० पु०	चिह्नेश	{ चिह्निशिर चिह्निश्च	{ चिह्निशिम चिह्निश्म
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	अह्नेशिष्ट

चम् (प०)—चमा करना । चाम्यति । लृट्—चमिता अथवा चता ।

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	चमिष्यति	चमिष्यत	चमिष्यन्ति
म० पु०	चमिष्यमि	चमिष्यथ	चमिष्यथ
उ० पु०	चमिष्यामि	चमिष्याव	चमिष्याम

अथवा

प्र० पु०	चस्यति	चस्यतः	चस्यन्ति
म० पु०	चस्यसि	चस्यथ	चस्यथ
उ० पु०	चस्यामि	चस्याव	चस्याम
आशी०—	चस्यान् ।	लृट्—अचमिष्यत्,	अचस्यत्



## उभयपदी

( ग ) वृ—चुनना

परस्मैपद

धर्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणोति	वृणुत	वृण्वन्ति
म० पु०	वृणोषि	वृणुथ	वृणुध्व
उ० पु०	वृणोमि	वृणुय, वृणुव	वृणुम, वृणुम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु
म० पु०	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
उ० पु०	वृणुमानि	वृणुयाय	वृणुयाम

विधिलिट्

प्र० पु०	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयु
म० पु०	वृणुया	वृणुयातम्	वृणुयात
उ० पु०	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम

अन्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृणुन्
म० पु०	अवृणो	अवृणुतम्	अवृणुत
उ० पु०	अवृणुवम्	अवृणुव, अवृणुव	अवृणुम, अवृणुम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वृणु	वृणुतु	वृणु
----------	------	--------	------

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्षाम	चक्षमतु	चक्षमु
म० पु०	{ चक्षमिथ	चक्षमथु	चक्षम
उ० पु०	{ चक्षन्थ		
	{ चक्षाम	{ चक्षमिव	{ चक्षमिम
	{ चक्षम	{ चक्षयव	{ चक्षयम

लुङ्—अक्षमत् अक्षमताम् अक्षमन् ।

लुङ् ( प० )—भूखा होना । लुङ्यति । लिट्—लुषोष । लुङ्—अलुषत् ।  
लुङ्—लोढा । लृट्—लोत्स्यति । आशी०—लुष्यात् ।  
लृट्—अलोत्स्यत् ।

खिद् (आत्म०)—दुःखी होना । खिद्यते । लिट्—चिखिदे । लुङ्—अखे  
क्षीत् । लुङ्—खेत्ता । लृट्—खेत्स्यते । आशी०—  
खिप्सीष्ट । लृट्—अखेत्स्यत् ।

लुप् (प०)—प्रसन्न होना । लुप्यति । लिट्—लुवोप । लुङ्—अलुपत् ।  
लुङ्—तोष्टा । लृट्—तोष्यति । आशी०—लुप्यात् ।  
लृट्—अतोष्यत् ।

दम् ( प० )—दमन करना, दवाना । दाम्यति । लिट्—ददाम । लुङ्—  
अदमत् । लुङ्—दमिता । लृट्—दमिष्यति । आशी०—  
दम्यात् । लृट्—अदमिष्यत् ।

दुप् ( प० )—अशुद्ध होना । दुप्यति । लिट्—दुदोष । लुङ्—अदुपत् ।  
लुङ्—दोष्टा । लृट्—दोष्यति । आशी०—दुप्यात् ।  
लृट्—अदोष्यत् ।

म० पु०	वज्ररिथ	वज्रथु	ववर
उ० पु०	वचार, ववर	वधिव	वधिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवारीत्	अवारिष्टाम्	अजारिपु
म० पु०	अवारी	अवारिष्टम्	अवारिष्ट
उ० पु०	अवारिपम्	अवारिष्व	अवारिप्म

लुङ्—	{ वरिता वरीता	{ वरितारौ वरीतारौ	{ वरितार वरीतार
-------	------------------	----------------------	--------------------

लृङ्—	{ वरिष्यति वरीष्यति	{ वरिष्यत वरीष्यत	{ वरिष्यन्ति वरीष्यन्ति
-------	------------------------	----------------------	----------------------------

आशी०—	धियात्	• धियास्ताम्	धियासु
-------	--------	--------------	--------

लृङ्—	{ अवरिष्यत् अवरीष्यत्	{ अवरिष्यताम् अवरीष्यताम्	{ अवरिष्यन् अवरीष्यन्
-------	--------------------------	------------------------------	--------------------------

## आत्मनेपद

## वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणुते	वृणवाते	वृणवते
म० पु०	वृणुपे	वृणवाथे	वृणुध्वे
उ० पु०	वृण्वे	वृणुगहे, वृणगहे	वृणुमहे, वृणमहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	वृणुताम्	वृणवाताम्	वृणवताम्
म० पु०	वृणुध्व	वृणवाधाम्	वृणुध्वम्
उ० पु०	वृणवै	वृणवागहे	वृणवामहै

दुह ( प० )—दाह करना । दुहति । लृट्—द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा ।  
लृट्—द्रोहिष्यति, धोक्ष्यति । आशी०—दुह्यात् । लृट्—  
अद्रोहिष्यत्, अधोक्ष्यत् ।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दुमोह	दुमुह्य	दुमुह
म० पु०	{ दुद्रोहिष दुद्रोट दुद्रोन्ध	दुमुह्यु	दुमुह
ठ० पु०	दुमोह	{ दुद्रुहिष दुद्रुह	{ दुमुहिम दुमुह

नश्य ( प० )—नाश हो जाना । नश्यति । लृट्—नशिता, नष्टता । लृट्—  
—नशिष्यति, नक्ष्यति । आशी०—नश्यात् । लृट्—  
अनशिष्यत्, अनक्ष्यत् ।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ननाश	नेशतु	नेशु
म० पु०	{ नेशिय ननष्ट	नेशतु	नेश
ठ० पु०	{ ननाश ननश	{ नेशिय नेश्व	{ नेशिम नेश्म

नश्य ( प० )—नाचना । नृत्यति । लृट्—नर्तिता । लृट्—नतिष्यति  
नत्स्यति । आशी०—नृत्यात् ।

लिट्

प्र० पु०	ननर्त	ननृतु	ननृतु
----------	-------	-------	-------

## विधिलिङ्

प्र० पु०	वृण्वीत्	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
म० पु०	वृण्वीथा	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीष्वम्
उ० पु०	वृण्वीथ	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

## अनद्यतनभूत—जड्

प्र० पु०	अवृणुत	अवृणुवाताम्	अवृणुवत
म० पु०	अवृणुथा	अवृणुयाथाम्	अवृणुष्वम्
उ० पु०	अवृणुथ	अवृणुवहि	अवृणुमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वघ्रे	वघ्राते	वघ्निरे
म० पु०	वघृपे	वघ्राथे	वघृष्वे
उ० पु०	वघ्रे	वघृगहे	वघृमहे

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अवरिष्ट	अवरिषाताम्	अवरिषत
म० पु०	अवरिष्ठा	अवरिषाथाम्	अवरिष्वम्
उ० पु०	अवरिषि	अवरिष्वहि	अवरिष्वमहि

या

प्र० पु०	अवरीष्ट	अवरीषाताम्	अवरीषत
म० पु०	अवरीष्ठा	अवरीषाथाम्	अवरीष्वम्
उ० पु०	अवरीषि	अवरीष्वहि	अवरीष्वमहि

## अथवा

प्र० पु०	अवृत	अवृषाताम्	अवृषत
----------	------	-----------	-------

म० पु०

ननर्तिथ

ननृतथु

ननृत

उ० पु०

ननर्त

ननृतिव

ननृतिम

लुङ्

अनर्तीत्

अनर्तिष्टाम्

अनर्तिषु, इत्यादि ।

अम् (१०) — धूमना । आग्नयति । लुट् — अमिता । लृट् — अमियति ।

आशी० — अग्न्यात् ।

लिट्

प्र० पु०

वभ्राम

{ वभ्रमतु  
भ्रेमतु{ वभ्रमु  
भ्रेमु

म० पु०

{ वभ्रमिथ  
भ्रेमिथ{ वभ्रमथु  
भ्रेमथु{ वभ्रम  
भ्रेम

उ० पु०

{ वभ्राम  
वभ्रम{ वभ्रमिव  
भ्रेमिव{ वभ्रमिम  
भ्रेमिम

लुङ्—

अभ्रमत

मन् (आत्म०) — समकृता । मन्यते । लुट् — मन्ता । लृट् — मस्यते । आशी० —

मसिष्ट । लिट् — मेने मेनाते मेनिरे । लुङ् — ममस्त

अमसाताम् अमसत अमस्था अमसायाम् अमन्यन्

अमसि अमस्वहि अमस्महि ।

युध् (आ०) — सङ्ग्राम करना । युध्यते । लुट् — योद्धा । लृट् — योत्स्यते ।

आशी० — युत्सीष्ट । लृट् — अयोत्स्यत । लिट् — युयुधे ।

लुङ् — अयुद्ध अयुत्साताम् अयुत्सत ।

व्यध् (१०) — वेधना । विध्यति । लुट् — व्यद्धा । लृट् — व्यस्यति । आशी० —

विध्यात् ।

म० पु०	अवृथा	अवृथायाम्	अवृत्रम्
उ० पु०	अवृ पे	अवृष्वहि	अवृष्महि
लृट्—	{ वरिता वरीता	{ वरितारौ वरीतारौ	{ वरितार वरीतार
लृट्—	{ वरिष्यते वरीष्यते	{ वरिष्येते वरीष्येते	{ वरिष्यन्ते वरीष्यन्ते
आशी०—	{ वरिषीष्ट वृषीष्ट	{ वरिषीयास्ताम् वृषीयास्ताम्	{ वरिषीरन् वृषीरन्
लृट्—	{ अवृष्यत अवरीष्यत	{ अवृष्येताम् अवरीष्येताम्	{ अवृष्यन्त अवरीष्यन्त

## परस्मैपदी

( २ ) शक्—सकना

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचा	बहुवचन
प्र० पु०	शक्नोति	शक्नुत	शक्नुवन्ति
म० पु०	शक्नोषि	शक्नुथ	शक्नुग
उ० पु०	शक्नोमि	शक्नुव	शक्नुम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
म० पु०	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उ० पु०	शक्नुवामि	शक्नुवाव	शक्नुवाम

विप्रिलिङ्

प्र० पु०	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयु
----------	-----------	-------------	---------

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विन्याध	विविधतु	विविदु
म० पु०	विन्यधिय, विन्यद्	विविधथु	विविध
उ० पु०	विन्याध, विन्यध	विविधिव	विविधिम

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अव्यात्सीत्	अव्यात्ताम्	अव्यात्तु
म० पु०	अव्यात्सी	अव्यात्तम्	अव्यात्त
उ० पु०	अव्यात्सम्	अव्यात्स्व	अव्यात्स्म

शुप् (प०)—सृजना । श्रुप्यति । लुट्—शोष्य । लृट्—शोषयति ।

आशी०—श्रुप्यात् । लिट्—शुशोप । लुङ्—अश्रुपत् ।

सिध् (प०)—निद्ध करना, कामयाब होना । सिध्यति । लुट्—सेद्धा ।

आशी०—सिध्यात् । लिट्—सिपेध । लुङ्—असिधत् ।

सिर् (प०)—सीना । सीप्यति । लुट्—सेविता । आशी०—सीग्यात् ।

लिट्—सिपेव । लुङ्—असेयीत् ।

हृप् (प०)—हर्षित होना । हृषति । लुट्—हर्षिता । लृट्—हर्षिष्यति ।

आशी०—हृप्यात् । लिट्—अहर्ष । लुङ्—अहृपत् ।

## ( ५ ) स्वादिगण

१५३—इस गण की प्रथम धातु सु ( र्स निकालता ) है, इस कारण इसका नाम स्वादि पड़ा । इसमें ३५ धातुएँ हैं । धातु और ल्य के बीच में इस गण में श्रु ( नु ) जोड़ा जाता है ।  
 दाहरणार्थ—सु + नु + ते = सुनुते आदि ।



३० पु० शक्नुया शक्नुयातम् शक्नुयात

४० पु० शक्नुयाम् शक्नुयाय शक्नुयाम

अनद्यतान्भूत ताड्

५० पु० अशक्नोत् अशक्नुताम् अशक्नुयन्

६० पु० अशक्नो अशक्नुतम् अशक्नुत

७० पु० अशक्नुम् अशक्नुय अशक्नुय

परोक्षभूत—तिट्

८० पु० शशाक शेकु शेकु

९० पु० शेतिथ, शशकथ शेकु शेकु

१० पु० शशाक, शशक शेकिय शेकिय

नामायभूत लुट्

११ पु० अशकम् अशकताम् अशक

१२ पु० अशक अशकताम् अशक

१३ पु० अशकम् अशकाय अशकाम

१४— शक्ता शक्तारी शक्ता

१५— शक्यति शक्यत शक्यति

१६— शक्यात् शक्याताम् शक्यात्

१७— शक्यम् शक्यताम् शक्यम्

( ६ ) तुदादिगण

१५४—इस गण की प्रथम धातु तुट् (पीडा पहुँचाना) है इसी लक्ष्य नाम तुदादिगण है। इस में १७८ धातुएँ हैं। धातु और

१ नोट—प्रत्यय के व्, स् के पूर्व चिन्त्य में नु का उ गिरा कर केवल न् जोड़ा जाता है ( जैसे—सु + नु + व = सुनुव, सुन् अथवा सुनुम्, सुन्म् ) किन्तु यदि नु के पूर्व कोई व्यञ्जन हो तो उ नहीं गिराया जाता । ( जैसे—साध् + नु + म = साध्नुम् ) ।

नीचे इस गण की मुख्य २ धातुओं के रूप दिये जाते हैं ।

### परस्मैपदी

#### ( क ) आप्—पाना

##### वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	आप्नोति	आप्नुत	आप्नुवन्ति
म० पु०	आप्नोषि	आप्स्य	आप्नुथ
उ० पु०	आप्नोमि	आप्नुत	आप्नुम

##### आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
म० पु०	आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम

##### विधि लिट्

प्र० पु०	आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयु
म० पु०	आप्नुया	आप्नुयातम्	आप्नुयात
उ० पु०	आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम

##### अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
म० पु०	आप्नो	आप्नुतम्	आप्नुत

प्रत्यय के बीच में इस गण में श (अ) जोड़ा जाता है। भ्वादिगण में भी अ जोड़ा जाता है किन्तु वहाँ धातु की उपधा को अथवा अन्त के स्वर को गुण प्राप्त होता है, यहाँ तुदादिगण में ऐसा नहीं होता यहाँ अन्तिम इ ई को इय्, उ ऊ को उव् और ऋ को रिय् और श् को इर् हो जाता है, जैसे—रि+अ+ति=रियति। धु+अ+ति=धुवति मृ+अ+ते=म्रियते। ग+अ+ति=गिरति। कृप् धातु भ्वादिगण तथा तुदादिगण दोनों में है, भ्वादि में कर्पति आदि और तुदादि में कृपति आदि रूप होते हैं

नीचे मुख्य धातुओं के रूप दिये जाते हैं।

उभयपदी

तुद्—पीडा पहुँचाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तुदति	तुदत	तुदन्ति
म० पु०	तुदसि	तुदथ	तुदथ
उ० पु०	तुदामि	तुदात्र	तुदाम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तुदतु, तुदतात्	तुदताम्	तुदन्तु
म० पु०	तुद तुदतात्	तुदतम्	तुदत
उ० पु०	तुदानि	तुदाव	तुदाम

## विधिलिट्

प्र० पु०	तुदेत्	तुदताम्	तुदेयु
म० पु०	तुदे	तुदेतम्	तुदेउ
उ० पु०	तुदेयम्	तुदेउ	तुदेम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
म० पु०	अतुद	अतुदतम्	अतुदत
उ० पु०	अतुदम्	अतुदाउ	अतुदाम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तुतोळ	तुतुत्तु	तुतुङ्
म० पु०	तुतोदिथ	तुतुत्थु	तुतुद
उ० पु०	तुतोद, तुतुद	तुतुदिथ	तुतुदिम

## सामान्यभूत—लृट्

प्र० पु०	अतोत्सीत्	अतोत्ताम्	अतोत्सु
म० पु०	अतोत्सी	अतोत्तम्	अतोत्त
उ० पु०	अतोत्सम्	अतोत्त	अतोत्स

सुट्—तोत्ता । लृट्—तोत्स्यति । आशी०—तुत्तात् । लृट्—अतोत्स्यत् ।

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तुदने	तुदत	तुदन्
म० पु०	तुदये	तुदथ	तुदये
उ० पु०	तुदे	तुदाथ	तुदाथे

## आज्ञा—लोट्

छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
छिन्दि	छिन्तम्	छित्त
छिनदानि	छिनदाय	छिनदाम

## विधिलिट्

छिन्धाग	छिन्धाताम्	छिन्धु
छिन्धा	छिन्धातम्	छिन्धात
छिन्धाम्	छिन्धान	छिन्धाम

## अनद्यतनभूत—लट्

अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
अच्छिन अछिनत्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्त

## परोक्षभूत—लिट्

चिच्छेद	चिच्छिदतु	चिच्छिदु
चिच्छेदिय	चिच्छिदधु	चिच्छिद
चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम

## सामान्यभूत—लुट्

अच्छिदत्	अच्छिदताम्	अच्छिदन्
अच्छिद	अच्छिदतम्	अच्छिदत
अच्छिदम्	अच्छिदान	अच्छिदाम

## अथवा

अच्छेत्सीत्	अच्छेत्ताम्	अच्छेत्सु
-------------	-------------	-----------

## सामान्यभूत—लृट्

प्र० पु०	ऐपीत्	ऐपिष्टाम्	ऐपिषु
म० पु०	ऐपी	ऐपिष्टम्	ऐपिष्ट
उ० पु०	ऐपिषम्	ऐपिष्व	ऐपिष्म

## अनद्यननभविष्य—लृट्

प्र० पु०	{ एपिता एष्टा	{ णपितारौ एष्टारौ	{ एपितार एष्टार
म० पु०	{ एपितासि एष्टासि	{ णपितास्थ एष्टास्थ	{ एपितास्थ एष्टास्थ
उ० पु०	{ एपितास्मि एष्टास्मि	{ एपितास्व एष्टास्व	{ एपितास्म एष्टास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	एपिष्यति	एपिष्यन्	एपिष्यन्ति
म० पु०	एपिष्यसि	एपिष्यथ	एपिष्यथ
उ० पु०	एपिष्यामि	एपिष्याव	एपिष्याम
आशी०—	इष्यात् ।	लृङ्—	ऐपिष्यत् ।

१५५—तुदादिगण की अन्य मुख्य धातुओं की सूची ।

कृत् (१०)—काटना । कृन्तति । लृट्—कतिंता । लृट्—कर्तिष्यति ।  
आशी०—कृष्यात् । लृङ्—अकर्तिष्यत् । लिट्—चकर्त चकृतु  
चकृतु । लृङ्—अकर्तीत् ।

कृप् (८०)—जोतना । कृपति, कृपते । लृट्—कप्टा, कप्ट् । लृट्—कप्यति,  
कप्यति, कप्यते, कप्यते । आशी०—कृष्यात्, कृषीष्ट । लृङ्—

म० पु०	अच्छैरुषी	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त
उ० पु०	अच्छैस्सम्	अच्छैस्स	अच्छैस्सम्
लुट्—	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तार
लृट्—	छेत्स्यति	छेत्स्यत	छेत्स्यन्ति
आशी०—	छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासु
लृङ्—	अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्यताम्	अच्छेत्स्यन्

## आत्मनेपद

## घर्त्तमान—जट्

प्र० पु०	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
म० पु०	छिन्ते	छिन्दाथे	छिन्द्वे
उ० पु०	छिन्दे	छिन्द्रहे	छिग्रहे

## आह्ला—जोट्

प्र० पु०	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
म० पु०	छिन्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्द्वम्
उ० पु०	छिनदै	छिनद्रावहै	छिनदामहै

## चिधिलिट्

प्र० पु०	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
म० पु०	छिन्दीथा	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीष्यम्
उ० पु०	छिन्दीय	छिन्दीर्वाहि	छिन्दीमहि

## अनद्यतनभूत—लुट्

प्र० पु०	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
म० पु०	अच्छिन्था	अच्छिन्नाथाम्	अच्छिन्द्वम्

प्रकष्यत्, अकष्यत्, अकष्यत्, अकष्यत् । लिट्—चर्ष, चर्षे ।

लुट्—अकार्षीत्, अमाचीत्, अकृषत् । अकृष्, अकृषत् ।

१ (५०)—कितर कितर करना । किरति । लुट्—करिता, करीता । लृट्—करिष्यति, करीष्यति । आशी०—कीयात् । लृट्—अकरिष्यत् प्रकरीष्यत् । लिट्—चकार चरुत् चकह । चकरिथ । लृट्—अकरीत् अकारिष्याम् अकारिषु ।

१ (५०)—निगलना । गिरति गिरत गिरन्ति तथा गिलति, गिलत गिलन्ति भी । लुट्—गरिता, गरीता । गलिता, गनीता । लृट्—गरिष्यति गरीष्यति । गलिष्यति, गलीष्यति । आशी०—गार्यात् । लिट्—जगार जगरत् जगह । जगल जगलत् । जगरिथ । लृट्—अगारीत् । अगालीत् ।

शुट् (५०)—ट्ट जाना । शुति । लुट्—शुडिता । लृट्—शुटिष्यति । आशी०—शुड्यात् । लिट्—शुडोड, शुडुत् शुडुड । शुडुडिष्य शुडुडु शुडुड । लृट्—अशुटीत् अशुटिष्याम् अशुटिषु ।

शब्द (५०)—पृक्षना । पृक्षति पृक्षत पृक्षन्ति । लुट्—प्रप्ता प्रप्ताती प्रप्तात् । लृट्—प्रक्ष्यति । आशी०—पृक्ष्यात् । लृट्—अप्रक्ष्यत् ।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	पप्रच्छ	पप्रक्षु	पप्रक्षु
म० पु०	पप्रक्षिष्य, पप्रक्ष	पप्रक्षुषु	पप्रक्ष
उ० पु०	पप्रच्छ	पप्रक्षिव	पप्रक्षिम



उ० पु०	अच्छिन्धि	अच्छिन्दहि	अच्छिन्महि
--------	-----------	------------	------------

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदाते	चिच्छिदिर
म० पु०	चिच्छिदिषे	चिच्छिदाधे	चिच्छिदिषे
उ० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदिवहे	चिच्छिद्विमहे

सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अच्छिन्न	अच्छिन्नाताम्	अच्छिन्नासत
म० पु०	अच्छिन्ना	अच्छिन्नायाम्	अच्छिन्नाम्
उ० पु०	अच्छिन्ति	अच्छिन्त्यहि	अच्छिन्त्यमहि
लुट्—	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तार
लट्—	छेत्स्यते	छेत्स्येते	छेत्स्यन्ते
आशी०—	छिन्सीष्ट	छिन्सीया ताम्	छिन्सीरम्
लङ्—	अच्छेत्स्यत	अच्छेत्स्येताम्	अच्छेत्स्यन्त

परस्मपदी

(ग) भञ्ज्—तोन्ना

धर्ममान—जट्

प्र० पु०	भाक्ति	भङ्क्त	भङ्गिनि
म० पु०	भासि	भङ्ग्य	भङ्ग्य
उ० पु०	भनजिम	भङ्ग्य	भङ्ग्य

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भनक्त, भङ्क्ताव्	भङ्क्ताम्	भङ्ग्य
----------	------------------	-----------	--------

## सामान्यभूत—लृट्

प्र० पु०	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षु
म० पु०	अप्राक्षी	अप्राष्टम्	अप्राष्ट
उ० पु०	अप्राक्षम्	अप्राक्ष	अप्राक्ष

मिल् (उ०)—मिलता । मिलति मिलते । लिट्—मिमेत मिमितु मिमितुः ।  
मिमेतिथ मिमितु निमित । मिमेत मिमितिव मिमितिम् ।  
मिमिले मिमिलाते मिमितिरे । लृट्—अमेलीत् अमेलिष्य  
अमेतिषु । अमेलिष्य अमेलिष्यताम् अमेलिष्यत । लृट्—  
मेलिता । लृट्—मेलिष्यति मेलिष्यते । आशी०—मिष्या  
मेलिषीष्ट । लृट्—अमेलिष्यन् अमेलिष्यत ।

मुच् (उ०)—मुञ्चता । मुञ्चति मुञ्चत मुञ्चन्ति । मुञ्चते मुञ्चते मुञ्चन्ते  
लृट्—मोक्ता । लृट्—मोक्षति मोक्षयते । आशी०—मुष्या  
मुक्षीष्ट । लृट्—अमोक्ष्यत् अमोक्ष्यत ।

## परोक्षभूत—लिट्, परस्मैपद

प्र० पु०	मुमोच	मुमुचतु	मुमुचु
म० पु०	मुमोचि	मुमुचथु	मुमुच
उ० पु०	मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम

## परोक्षभूत—लिट्, आत्मनेपद

प्र० पु०	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
म० पु०	मुमुचिये	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
उ० पु०	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

म० पु०	महन्निव, महक्तात्	महत्तम्	महत्त
उ० पु०	मनजानि	मनजाव	मनजाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	मञ्ज्यात्	मञ्ज्याताम्	मञ्ज्यु
म० पु०	मञ्ज्या	मञ्ज्यातम्	मञ्ज्यात
उ० पु०	मञ्ज्याम्	मञ्ज्याव	मञ्ज्याम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्
म० पु०	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
उ० पु०	अभनजम्	अभञ्जव	अभञ्जम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वभञ्ज	वभञ्जतु	वभञ्जु
म० पु०	वभञ्जिय वभङ्क्थ	वभञ्जथु	वभञ्ज
उ० पु०	वभञ्ज	वभञ्जिव	वभञ्जिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अमाङ्क्षीत्	अमाङ्क्ताम्	अमाङ्ङ
म० पु०	अमाङ्क्षी	अमाङ्क्तम्	अमाङ्क्त
उ० पु०	अमाङ्क्षम्	अमाङ्क्षव	अमाङ्क्षम

लुट्—	महक्ता	महक्तारौ	महक्तार
लृट्—	महक्षयति	महक्षयत	महक्षयन्ति
आशी०—	मज्यात्	मज्यास्ताम्	मज्यासु

## सामान्यभूत—लुट, परस्मैपद

प्र० पु०	अमुचत्	अमुचताम्	अमुचन्
म० पु०	अमुच	अमुचतम्	अमुचत
उ० पु०	अमुचत्	अमुचात्	अमुचाम्

## सामान्यभूत—लुङ, आत्मनेपद

प्र० पु०	अमुक्त	अमुक्ताताम्	अमुक्त
म० पु०	अमुक्ता	अमुक्तायाम्	अमुक्ताम्
उ० पु०	अमुक्ति	अमुक्तिहि	अमुक्महि

लुट् (५०)—लिखना । लिखति । लुट्—लेखिता । लृट्—लेखयति ।  
आशी०—लिख्यात् । लृट्—अलेखिष्यत् । लिट्—लिलेख  
लिलिपत् लिलिपु । लिलेखिथ लिलिखथु लिलिप । लृट्—  
अलेखीत् ।

लृट् (६०)—लापना । लिम्पति लिम्पत लिम्पन्ति । लिम्पते लिम्पेते  
लिम्पन्ते । लृट्—लेप्ता । लृट्—लेप्स्यति लेप्स्यते । आशी०—  
लिप्यात् । लिप्सीष्ट लिप्सीयास्ताम् लिप्सीरन् । लिट्—लिखेप  
लिखिपत् लिलिपु । लिखिपे लिखिपाते लिखिपिरे । लृट्—  
अलिपत् । अलिपत अलिपेताम् अलिपन्त । अलिष अलिप्साताम्  
अलिप्सत ।

लृट् (५०)—वृत्तना । विशति । लृट्—वेत्ता । लृट्—वेत्स्यति । आशी०—  
विश्यात् । लृट्—अवेक्ष्यत् । लिट्—विवेश । लृट्—अविषत् ।

(५०)—दुःखी होता सहारा लेना, जात । मीदति । लृट्—सत्ता ।  
लृट्—सस्यति । आशी०—सधात् । लृट्—अमत्स्यत् । लिट्—

१— अभट्ठयत् अभट्ठयताम् अभट्ठयन्

उभयपदी

(घ) भुज्—रत्ता करना

परस्मैपद

वर्तमान—लुट्

पु०	भुनक्ति	भुङ्क्ते	भुञ्जन्ति
पु०	भुनचि	भुङ्क्थ	भुङ्क्थ
पु०	भुनज्मि	भुङ्म	भुङ्म

आज्ञा—लोट्

पु०	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
पु०	भुङ्ग्धि	भुङ्क्थम्	भुङ्क्थ
पु०	भुनजानि	भुनजान	भुनजाम

विधिलिट्

पु०	भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्यु
पु०	भुञ्ज्या	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात्
पु०	भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याथ	भुञ्ज्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

पु०	अभुनक्—ग्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
पु०	अभुनक्—ग्	अभुङ्क्थम्	अभुङ्क्थ
पु०	अभुनजम्	अभुङ्म	अभुङ्म

ससाद सेदतु सेदु । सेदिय समथ्य सद्यु सेद । ससात्, स  
सेदिव सेदिम । लुङ्—असदत् असदताम् असदन् ।

सिच् (उ०)—झिङ्कना, सीचना । सिञ्चति सिञ्चते । लुट्—सेक्  
लुट्—सेचयति सेचयते । आशी०—सिच्यात् सिचीष्ट । लिट्  
सिपेच सिपिचतु सिपिचु । सिपेचिथ । लुङ्—असिचत् । असि  
असिक्त ।

सृज् (प०)—बनाना । सृजति । लुङ्—स्रष्टा । लुट्—स्रक्षयति । आशी०  
सृज्यात् । लृङ् अस्त्रक्षयत् । लिट्—ससर्जं ससृजतु ससृजु  
समर्जिथ, सस्त्रष्ट ससृजथु ससृज । ससर्जं ससृजिब ससृजि  
लुङ्—अस्त्राचीत् अस्त्राष्टाम् ।

स्पृश् (प०)—छूना । स्पृशति । लुट्—स्पृष्टां, स्पृष्टा । लुट्—स्पृक्षयति  
आशी०—स्पृश्यात् । लिट्—पस्पृशं पस्पृशतु पस्पृशु । प  
शिथ पस्पृशथु पस्पृश । पस्पृश पस्पृशिव पस्पृशिम । लुट्—  
अस्प्राचीत् अस्प्राष्टाम् अस्प्राष्टु । अस्प्राची अस्प्राष्टम् अस्प्राष्ट  
अस्प्राक्षम् अस्प्राक्ष अस्प्राक्षम्, तथा—अस्प्राचीत् अस्प्राष्टा  
अस्प्राष्टु और अस्पृक्षत् अस्पृक्षताम् अस्पृक्षन् ।

स्फुट् (प०)—खुलना, खिलना या फट जाना । स्फुटति । लुट्—स्फुटिता  
लुट्—स्फुटिष्यति । आशी०—स्फुट्यात् । लिट् पुस्फोट पुस्फुटि  
तु पुस्फुट । पुस्फुटिथ पुस्फुटथु पुस्फुट । पुस्फोट पुस्फुटि  
पुस्फुटिम । लुङ्—अस्फुटीत् अस्फुटिष्टाम् अस्फुटिषु । अस्फुटी  
अस्फुटिष्टम् अस्फुटिष्ट । अस्फुटिष्यम् अस्फुटिष्व अस्फुटिष्यम् ।

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुभोज	बुभुजतु.	बुभुज
म० पु०	बुभोजिय	बुभुजथु	बुभुज
उ० पु०	बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभौचीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षु
म० पु०	अभौची	अभौक्ताम्	अभौक्त
उ० पु०	अभौचम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म
लुङ्—	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तार
लट्—	भोक्ष्यति	भोक्ष्यत	भोक्ष्यन्ति
आशी०—	भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासु
लङ्—	अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	अभोक्ष्यन्

## आत्मनेपद

## वर्त्तमान लट्

प्र० पु०	भुङ्क्ते	भुङ्जाते	भुङ्गते
म० पु०	भुङ्क्ते	भुङ्जाथे	भुङ्क्ते
उ० पु०	भुङ्जे	भुङ्जहे	भुङ्जहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भुङ्क्ताम्	भुङ्जाताम्	भुङ्गताम्
म० पु०	भुङ्क्ताम्	भुङ्जाथाम्	भुङ्क्ताम्
उ० पु०	भुङ्जै	भुङ्जामहे	भुङ्जामहे

स्फुर् (प०)—कॉपना, फड़कना, लपलपाना, चमकना । स्फुरति । लुट्—  
स्फुरिता । लुट्—स्फुरिष्यति । आशी०—स्फुर्यात् । लिङ्—  
पुस्फोर पुस्फुरतु पुस्फुर । पुष्फुरिष्य । लुट्—अस्फुरीत्  
अस्फुरिष्याम् अस्फुरिषु ।

( ७ ) रधादिगण

१५६—इस गण की प्रथम धातु रुध् (रोकना, धेरना) है,  
इस कारण इसका नाम रधादि है । इसमें २५ धातुएँ हैं । धातु  
के प्रथम स्वर के उपरान्त इस गण में ङनम् ( न ) अथवा न् जोना  
गता है, जैसे—लुट् + ति = लु + न + ट् + ति = लु + ण + ट् + ति =  
लुणत्ति । लुट् + यात् = लु + न् + ट् + यात् = लुयात् ।

नीचे मुख्य मुख्य धातुआ के रूप दिखाये जाते हैं ।

उभयपदी

( क ) रुध—राकना

परस्मैपद्

वर्त्तमान—लट्

प० पु०	रुणद्धि	रुन्द्ध	रुधन्ति
म० पु०	रुणद्धि	रुद्ध	रुद्ध
उ० पु०	रुणद्धि	रुध्व	रुध्व

आज्ञा—लोट्

प० पु०	रुणद्धु	रुन्द्धाम्	रुधतु
--------	---------	------------	-------



धिधिलिट्

प्र० पु०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
म० पु०	भुञ्जीथा	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उ० पु०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
म० पु०	अभुङ्क्था	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्क्ध्वम्
उ० पु०	अभुञ्जि	अभुञ्जवहि	अभुञ्जमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
म० पु०	बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिष्वे
उ० पु०	बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे

सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अभुक्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
म० पु०	अभुक्था	अभुञ्जाथाम्	अभुञ्जध्वम्
उ० पु०	अभुञ्जि	अभुञ्जवहि	अभुञ्जमहि
लुट्—	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तार
लट्—	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
आजी०—	भुञ्जीष्य	भुञ्जीयान्ताम्	भुञ्जीरन्
लट्—	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	अभोक्ष्यन्त

प्र० पु०	रुन्दि	रुन्दम्	रुन्द
उ० पु०	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्धु
म० पु०	रुन्ध्या	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उ० पु०	रुन्ध्याम्	रुन्ध्यात्र	रुन्ध्याम

## अनद्यतनभूत—लिट्

प्र० पु०	अरुणत् अरुणद्	अरुण्दाम्	अरुणन्
म० पु०	अरण , अरुणत्	अरुण्दम्	अरुण्
उ० पु०	अरुणधम्	अरुणत्र	अरुणम्

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ररोध	ररुधतु	ररुधु
म० पु०	ररोधिथ	ररुधु	ररुध
उ० पु०	ररोध	ररुधिथ	ररुधिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	{ अरुधत् अरौत्मीत्	{ अरुधताम् अरौदाम्	{ अरुधन् अरौनु
म० पु०	{ अरुध अरौत्सी	{ अरुधतम् अरौदम्	{ अरुधन् अरौद
उ० पु०	{ अरुधम् अरौत्सम्	{ अरुधात्र अरौत्स्व	{ अरुधाम अरौत्सम्
लुङ्—	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धार
लृट्—	गेत्स्यति	रात्स्यतः	रोत्स्यति

## ( ८ ) तनादिगण

१५७—इस गण की प्रथम धातु तन् ( फैलाना ) है, इस वि  
इस का नाम तनादि है । इसमें दस धातुएँ हैं । धातु और प्रत्यय  
के बीच में, इस गण में उ जोड़ा जाता है, जैसे—तन्+उ+ते  
तनुते ।

[ नोट—नियम १५३ में उदाहरण नोट यहाँ भी लागू होता है  
नीचे तन् और कृ धातुओं के रूप दिए जाते हैं ।

## उभयपदी

## (क) तन्—फैलाना

## परस्मैपद

## वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनोति	तनुत	तन्वन्ति
म० पु०	तनोषि	तनुथ	तनुथ
उ० पु०	तनोमि	{ तनुव तन्व	{ तनुम तम्म

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु
म० पु०	तनु	तनुतम्	तनुत
उ० पु०	तनवानि	तनवाव	तनवाम

आगी०—	रुन्धात्	रुन्धाताम्	रुन्धातु
लङ्—	अरुन्धयत्	अरुन्धयताम्	अरुन्धयन्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
म० पु०	रुन्धसे	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
उ० पु०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्धमहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
म० पु०	रुन्धस्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
उ० पु०	रुन्धधे	रुन्धायहे	रुन्धामहे

## विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
म० पु०	रुन्धीथा	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीष्यन्
उ० पु०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
म० पु०	अरुन्धा	अरुन्धाथाम्	अरुन्धन्
उ० पु०	अरुन्धि	अरुन्धहि	अरुन्धमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	रुन्धि	रुन्धाते	रुन्धिरे
म० पु०	रुन्धिषे	रुन्धाथे	रुन्धिष्वे, एते

## विधिलिङ्

प्र० पु०	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयु
म० पु०	तनुया	तनुयातम्	तनुयात
ङ० पु०	तनुयाम्	तनुयाध	तनुयाम

## अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
म० पु०	अतनो	अतनुतम्	अतनुत
ङ० पु०	अतनवम्	{ अतनु अतन्व	{ अतनुम अतन्म

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तेतान	तेनतु	तेनु
म० पु०	तेनिथ	तेनथु	तेन
ङ० पु०	ततान, ततन	तेनिव	तेनिम

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषु
म० पु०	अतनी	अतनिष्टम्	अतनिष्ट
ङ० पु०	अतनियम्	अतनिष्	अतनिष्म

## अथवा

प्र० पु०	अतानीत्	अतानिष्टाम्	अतानिषु
म० पु०	अतानी	अतानिष्टम्	अतानिष्ट
ङ० पु०	अतानियम्	अतानिष्	अतानिष्म

उ० पु०	रुधे	रुधिवहे	रुधिमहे
--------	------	---------	---------

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अरुद्ध	अरुसाताम्	अरुसत
----------	--------	-----------	-------

म० पु०	अरुद्धा	अरुसायाम्	अरुद्धवम्
--------	---------	-----------	-----------

उ० पु०	अरुस्ति	अरुस्त्वहि	अरुन्महि
--------	---------	------------	----------

अनद्यतनभविष्य - लुट्

प्र० पु०	रोद्धा	रोद्धारी	रोद्धार
----------	--------	----------	---------

म० पु०	रोद्धासे	रोद्धासाधे	रोद्धाधे
--------	----------	------------	----------

उ० पु०	रोद्धाहे	रोद्धास्यहे	रोद्धास्महे
--------	----------	-------------	-------------

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
----------	-----------	------------	-------------

म० पु०	रोत्स्यसे	रोत्स्येथे	रोत्स्यध्वे
--------	-----------	------------	-------------

उ० पु०	रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे
--------	----------	-------------	-------------

आशी०—	रुसीष्ट	रुसीयास्ताम्	रुसीरन्
-------	---------	--------------	---------

लृट्—	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	अरोत्स्यन्त
-------	-----------	---------------	-------------

उभयपदी

(ख) छिद्—काटना

परस्मैपद

धर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	छिनत्ति	छिन्त	छिन्दन्ति
----------	---------	-------	-----------

म० पु०	छिनस्ति	छिन्थ	छिन्थ
--------	---------	-------	-------

उ० पु०	छिनद्मि	छिन्म	छिन्मः
--------	---------	-------	--------

लुट्—	तनिता	तनितारौ	तनितारः
लट्—	तनिप्यति	तनिप्यत	तनिप्यन्ति
आशी०—	तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासु
लृङ्—	अतनिप्यत्	अतनिप्यताम्	अतनिप्य

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनुते	तन्वासे	तन्वते
म० पु०	तनुपे	तन्वाथे	तनुध्वे
उ० पु०	तन्वे	तनुवहे, तन्वहे	तनुमहे, तन्महे

## आज्ञा—लोट

प्र० पु०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
म० पु०	तनुध्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उ० पु०	तन्वे	तन्वावहे	तन्वामहे

## विधिलिट्

प्र० पु०	तन्वीव	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
म० पु०	तन्वीथा	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
उ० पु०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
म० पु०	अतनुथा	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्

१० पु०	अतन्वि	{ अतनुवहि अतन्वहि	{ अतनुमहि अतन्महि
--------	--------	----------------------	----------------------

परोक्षभूत—लिट्

१० पु०	तेने	तेनाते	तेनिरे
१० पु०	तेनिपे	तेगाथे	तेनिध्वे
१० पु०	तेने	तेनिघडे	तेनिमहे

सामान्यभूत—लुट्

० पु०	अतत, अतनिष्ट	अतनिपाताम्	अतनिपत
१० पु०	अतथा, अतनिष्ठा	अतनिपायाम्	अतनिध्वम्
१० पु०	अतनिपि	अतनिप्सहि	अतनिप्सहि
कुट्—	तनिता	तनितारां	तनितार
शुट्—	तनिप्यते	तनिप्येते	तनिप्यन्ते
शी०—	तनिपीष्ट	तनिपीयास्ताम्	तनिपीरन्
शुट्—	अतनिप्यत	अतनिप्येताम्	अतनिप्यन्त

उभयपदी

(स) कृ—करना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

१० पु०	करोति	कुरुत	कुर्वन्ति
१० पु०	करोपि	कुरथ	कुरथ
१० पु०	करोमि	कुर्व	कुम



म० पु०	जानासि	जानीथ	जानीथ
उ० पु०	जानामि	जानीव	जानीम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि	जानीतम्	जानीत
उ० पु०	जानानि	जानाव	जानाम

विप्रिलिट्

प्र० पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयु
म० पु०	जानीया	जानीयातम्	जानीयात
उ० पु०	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म० पु०	अजाना	अजानीतम्	अजानीत
उ० पु०	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञौ	जज्ञु	जज्ञु
म० पु०	जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथु	जज्ञ
उ० पु०	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्म	अज्ञासिषु
म० पु०	अज्ञासी	अज्ञासिम्	अज्ञासिष्ट

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	करोतु	कुरुताम्	कुरुन्तु
म० पु०	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

## विधिलिट्

प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्यु
म० पु०	कुर्या	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुरुन्
म० पु०	अकरो	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुरुव	अकुरुम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चकार	चक्रुः	चक्रुः
म० पु०	चकथं	चक्रथुः	चक्र
उ० पु०	चकार, चकर	चकृव	चक्रम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकार्षीत्	अकार्षेताम्	अकार्षु
म० पु०	अकार्षी	अकार्षेम्	अकार्ष
उ० पु०	अकार्षेम्	अकार्ष्व	अकार्षम
लुट्—	कर्ता	कर्तारौ	कर्तार
लृट्—	करिष्यति	करिष्यत	करिष्यन्ति

उ० पु०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्—	" "	"	ज्ञास्यति
आशी०—	,	"	ज्ञेयात् ज्ञायान्
लङ्—	" "	"	अज्ञास्यत्

## आत्मनेपद

## वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जानीते	जानाते	जानते
म० पु०	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उ० पु०	जाने	जानोवहे	जानीमहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
म० पु०	जानीध्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानै	जानावहै	जानामहै

## विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
म० पु०	जानीथा	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
म० पु०	अजानीथा	अजानाथाम्	अजानीध्वम्

गशी०—	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासु
गङ्—	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्

आत्मनेपद  
वर्त्तमान—लट्

१० पु०	कुरुते	कुरुंते	कुरुंते
२० पु०	कुरुषे	कुरुष्वे	कुरुष्वे
१० पु०	कुरुं	कुरुहे	कुरुं

आज्ञा—लोट्

५० पु०	कुरुताम्	कुरुताम्	कुरुताम्
२० पु०	कुरुष्व	कुरुष्वाम्	कुरुष्व
१० पु०	कुरुं	कुरुवहे	कुरुं

विधिलिट्

१० पु०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीत
२० पु०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीथाः
१० पु०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीय

अनद्यतनभूत—लट्

५० पु०	अकुरुत	अकुरुताम्	अकुरुन्
२० पु०	अकुरुथा	अकुरुथाम्	अकुरुथ
३० पु०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्वहि

परोक्षभूत—लिट्

५० पु०	चक्रे	चक्षन्	चक्षन्
--------	-------	--------	--------

उ० पु०	अजानि	अजानावहि	अजानीमहि
--------	-------	----------	----------

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जने	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिष्ये
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिग्हे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञामत
म० पु०	अज्ञास्या	अज्ञासायाम्	अज्ञाप्स्यम्
उ० पु०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्—	" "	"	ज्ञास्यते
प्राशी०—	" "	"	ज्ञासाप्य
लृट्—	" "	"	अज्ञास्यत

परस्मैपद

बन्ध्—बाधना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१० पु०	बध्नाति	बध्नात	बध्नन्ति
१० पु०	बध्नासि	बध्नाथ	बध्नाथ
१० पु०	बध्नामि	बध्नाव	बध्नाम

आज्ञा—लोट्

१० पु०	बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नान्तु
--------	---------	-----------	-----------

म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृध्वे
उ० पु०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकृत	अकृपाताम्	अकृपत
म० पु०	अकृथा	अकृपायाम्	अकृध्वम्
उ० पु०	अकृपि	अकृष्वहि	अकृप्महि
लृट्—	कर्त्ता	कर्त्तारो	कर्त्तार
लृट्—	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
आशी०—	कृपीष्ट	कृपीयास्ताम्	कृपीरन्
लृट्—	अकरिष्यत्	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त

## ( ९ ) व्रपादिगण

१५८—इस गण की प्रथम वातु की ( मोल लेना ) है, इस कारण इसका नाम व्रपादिगण पड़ा । इसमें ६१ वातुएँ हैं । धातु और प्रत्यय के बीच में, इस गण में श्ना ( ना ) जोड़ा जाता है, किन्हीं प्रत्ययों के पूर्व यह ना न् हो जाता है, और किन्हीं के पूर्व नी । धातु की उपधा में यदि चर्गों का पञ्चम अक्षर अथवा अनुस्वार हो तो उसका लोप हो जाता है ।

व्यजनान्त धातुओं के उपरान्त आज्ञा के म० पु० एक्यचन में हि प्रत्यय के स्थान में आन होता है, जैसे—मुप्+हि=मुप+आन=मुपाण ।

म० पु०	वधान	वधीतम्	वधीत
उ० पु०	वधानि	वधाव	वधाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	वधीयात्	वधीयाताम्	वधीयु
म० पु०	वधीया	वधीयातम्	वधीयात
उ० पु०	वधीयाम्	वधीयाव	वधीयाम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अवधात्	अवधीताम्	अवधन्
म० पु०	अवधा	अवधीतम्	अवधीत
उ० पु०	अवधाम्	अवधीव	अवधीम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वधन्ध	वधन्धु.	वधन्धु
म० पु०	वधन्धिथ, वधन्ध	वधन्धु	वधन्ध
उ० पु०	वधन्ध	वधन्धव	वधन्धिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभान्सीत्	अभान्ताम्	अभान्सु
म० पु०	अभान्सी	अभान्तम्	अभान्त
उ० पु०	अभान्सम्	अभानस्व	अभान्सम

लुङ्—	प्र० पु०	एकमचन	वन्द्वा
लृङ्—	" "	"	मन्त्स्यति
आशी०—	" "	"	वध्यात्
लृङ्—	" "	"	अभन्त्स्यत्

नीचे मुख्य वातुओं के रूप दिए जाते हैं ।

उभयपदी

क्रो—परिदना

परस्मैपद

वर्तमान—जट्

पकवचन	द्विवचन	बहुवचन
क्रीणाति	क्रीणीत	क्रीणन्ति
क्रीणासि	क्रीणीथ	क्रीणीथ
क्रीणामि	क्रीणीव	क्रीणीम

आज्ञा—लोट्

क्रीणातु, क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	क्रीणतु
क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

विधिलिट्

क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयु
क्रीणीया	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

अनङ्गताभूत—लङ्

अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
अक्रीणा	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम



## ( १० ) चुरादिगण

१५९—इस गण की प्रथम धातु चूर् (चुराना) है, इस गण इसका नाम चुरादिगण पड़ा। ग्रातुपाठ में इस गण की १५ धातुएँ पठित हैं। इसमें चातु ओर प्रत्यय के बीच में अय जोड़ा जाता है तथा उपधा के ह्रस्व स्वर (अ के अतिरिक्त) का गुण जाता है और यदि उपधा में ऐसा अ हो जिसके अनन्तर मयुक्ता-एन हों तो उसकी और अन्तिम स्वर की वृद्धि हो जाती। उदाहरणार्थ—चूर्+अय+ति = चोर्+अय+ति = चोर-ते। तड्+अय+ति = ताड्+अय+ति = ताडयति। नी+अय+ति = ने+अय+ति = नाय्+अय+ति = नाययति

नीचे चूर्, धातु के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी

चूर्—चुराना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

एकवचन

द्विवचन

बहुवचन

प्र० पु०

चोरयति

चोरयत

चोरयन्ति

म० पु०

चोरयसि

चोरयथ

चोरयथ

व० पु०

चोरयामि

चोरयाव

चोरयाम

आदा—लोट्

प्र० पु०

चोरयतु

चोरयताम्

चोरयन्तु

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्राथ	चिक्रियतु	चिक्रियु
म० पु०	चिक्रयिथ, चिक्रेग	चिक्रियथु	चिक्रिय
उ० पु०	चिक्राय, चिक्रय	चिक्रियिष्व	चिक्रियिष्व

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अक्रेषीत्	अक्रेष्टाम्	अक्रेषु
म० पु०	अक्रेषी	अक्रेष्टम्	अक्रेष्ट
उ० पु०	अक्रेषम्	अक्रेष्व	अक्रेष्व
लुट्—	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतार
लुट्—	क्रेष्यति	क्रेष्यत	क्रेष्यति
आशी०—	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासु
अड्—	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	अक्रेष्यन्

## क्री

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म० पु०	क्रीणीथे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ० पु०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म० पु०	क्रीणीष्व	क्रीणायाम्	क्रीणीध्वम्

म० पु०	चोरय	चारयतम्	चोरयत
उ० पु०	चोरयाणि	चारयाव	चोरयाम

## विधिलिट्

प्र० पु०	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयु
म० पु०	चोरये	चोरयेतम्	चोरयेत
उ० पु०	चोरयेयम्	चोरयेत्र	चोरयेम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
म० पु०	अचोरय	अचोरयतम्	अचोरयत
उ० पु०	अचोरयन्	अचोरयाव	अचोरयाम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयामास	चोरयामासतु	चोरयामासु
म० पु०	चोरयामासिथ	चोरयामासथु	चोरयामास
उ० पु०	चोरयामास	चोरयामासिव	चोरयामासिम

## अथवा

प्र० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूवतु	चोरयाम्बभूवु
म० पु०	चोरयाम्बभूविथ	चोरयाम्बभूवथु	चोरयाम्बभूव
उ० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूविव	चोरयाम्बभूवि

## अथवा

प्र० पु०	चोरयाञ्चकार	चोरयाञ्चक्रु	चोरयाञ्चकु
म० पु०	चोरयाञ्चकर्थ	चोरयाञ्चक्रथु	चोरयाञ्चक
उ० पु०	{ चोरयाञ्चकार चोरयाञ्चकर		चोरयाञ्चकृम

उ० पु०	क्रीयै	क्रीयावहे	क्रीयामह
--------	--------	-----------	----------

विधिलिट्

प्र० पु०	क्रीयीत	क्रीयीयाताम्	क्रीयारन्
म० पु०	क्रीयीथा	क्रीयीयाथाम्	क्रीयीध्वम्
उ० पु०	क्रीयीय	क्रीयीवहि	क्रीयीमहि

अनद्यतनभूत—जट्

प्र० पु०	अक्रीयीत	अक्रीयाताम्	अक्रीयत
म० पु०	अक्रीयीथा	अक्रीयाथाम्	अक्रीयीध्वम्
उ० पु०	अक्रीयि	अक्रीयीवहि	अक्रीयीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
म० पु०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिष्वे
उ० पु०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

सामान्यभूत—लुट्

अक्रेष्ट	अक्रेयाताम्	अक्रेषत
अक्रेष्ठा	अक्रेषाथाम्	अक्रेष्वम्
अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्वमहि
क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतार
क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
क्रेपीष्ट	क्रेपीयाताम्	क्रेपीरन्
अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	अक्रेष्यन्त

## सामान्यभूत लृट्

प्र० पु०	अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्
म० पु०	अचूचुर	अचूचुरतम्	अचूचुरत
उ० पु०	अचूचुरम्	अचूचुरात्	अचूचुराम्
लृट्—	प्र० पु०	एकवचन	चोरयिता
लृट्—	" "	"	चोरयिष्यति
आशी०—	" "	"	चोर्यात्
लृट्—	" "	"	अचोरयिष्यत्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चोरयते	चोरयेत	चोरयन्ते
म० पु०	चोरयसे	चोरयेधे	चोरयध्वे
उ० पु०	चोरये	चोरयाग्हे	चोरयामहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
म० पु०	चोरयस्व	चोरयेधाम्	चोरयध्वम्
उ० पु०	चोरयै	चोरयाग्हे	चोरयामहे

## विधि लिट्

प्र० पु०	चोरयेत्	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
म० पु०	चोरयेथा	चोरयेयायाम्	चोरयेध्वम्
उ० पु०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

उभयपदी

ग्रह—लेना

परम्भैपद

घर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	गृहाति	गृहीत	गृहन्ति
म० पु०	गृहासि	गृहीथ	गृहीथ
उ० पु०	गृहामि	गृहीव	गृहीम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	गृहातु	गृहीताम्	गृहन्तु
म० पु०	गृहाथ	गृहीतम्	गृहीत
उ० पु०	गृहानि	गृहाव	गृहाम

विधिलिट्

प्र० पु०	गृहीयात्	गृहीयाताम्	गृहीयु
म० पु०	गृहीया	गृहीयातम्	गृहीयात
उ० पु०	गृहीयाम्	गृहीयाव	गृहीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अगृहात्	अगृहीताम्	अगृहन्
म० पु०	अगृहा	अगृहीतम्	अगृहीत
उ० पु०	अगृहाम्	अगृहीव	अगृहीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जग्राह	जगृहतु	जगृहु
म० पु०	जग्राह्य	जगृहथु	जगृह

## अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयत
म० पु०	अचोरयथा	अचोरयेथाम्	अचोरयन्म
उ० पु०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चकाते	चोरयाञ्चक्रे
म० पु०	चोरयाञ्चरूपे	चोरयाञ्चकाये	चोरयाञ्चरूपे, -म
उ० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चरूपे	चोरयाञ्चरूपे
	चोरयामास	इत्यादि ।	
	चोरयाम्भूव	इत्यादि ।	

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
म० पु०	अचूचुरथा	अचूचुरेथाम्	अचूचुरन्म
उ० पु०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि
लुट्—	प्र० पु०	एकमचन	चोरयिता
लुट्—	" "	"	चोरयिष्यते
आजी०—	" "	"	चोरयिषीष्ट
लुट्—	" "	"	अचोरयिष्यत

१६०—चुरादिगण की मुख्य २ धातुओं की सूची ।

उभयपदी—अर्च् (पूजा करना)

लट्—अर्चयति, अर्चयते । लोट्—अर्चयन्, अर्चयताम् । लिटि

३० पु०	जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम
--------	---------------	--------	--------

सामान्यभूत—लुङ्

१० पु०	अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषु
२० पु०	अग्रही	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट
३० पु०	अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म
लुङ्—	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतार
लुङ्—	ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यत	ग्रहीष्यन्ति
आशी०—	गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासु
लङ्—	अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	अग्रहीष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१० पु०	गृह्णाते	गृह्णाते	गृह्णाते
२० पु०	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीष्वे
३० पु०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

आज्ञा—लोट्

१० पु०	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णीताम्
२० पु०	गृह्णीष्व	गृह्णायाम्	गृह्णीष्वम्
३० पु०	गृह्णै	गृह्णावहे	गृह्णामहे

विधिलिङ्

१० पु०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
२० पु०	गृह्णीया	गृह्णीयायाम्	गृह्णीष्वन्



अर्चयेत्, अर्चयेत । लट्—आर्चयत्, आर्चयत । लिट्—अर्चयामास,  
अर्चयाम्भूत्, अर्चयाम्भूय, अर्चयाम्भवे ।

लृट्—परस्मैपद

प्र० पु०	आर्चिञ्त्	आर्चिञ्ताम्	आर्चिञ्त्
म० पु०	आर्चिञ्च	आर्चिञ्चतम्	आर्चिञ्चत
उ० पु०	आर्चिञ्चम्	आर्चिञ्चाव	आर्चिञ्चाम

आत्मनेपद

प्र० पु०	आर्चिञ्चत	आर्चिञ्चेताम्	आर्चिञ्चन्त
म० पु०	आर्चिञ्चथा	आर्चिञ्चेथाम्	आर्चिञ्चध्वम्
उ० पु०	आर्चिञ्चे	आर्चिञ्चावहि	आर्चिञ्चामहि

लृट्—अर्चयिता । लृट्—अर्चयिष्यति, अर्चयिष्यते । आशी०—अर्चयाम्  
अर्चयिषीष्ट । लृट्—आर्चयिष्यत्, आर्चयिष्यत ।

अर्च ( उभयपदी—कमाना, पैदा करना ) के रूप अर्च के समान  
जते हैं ।

अर्च ( आत्मनेपदी—प्राथना करना ) के रूप अर्च के समान होते  
। केवल सामान्यभूत ( लृट् ) में भेद होता है, जो कि नीचे दिखाया  
जाता है ।

लृट्—अर्चयते । लोट्—अर्चयताम् । विधि—अर्चयेत् । लृट्—अर्च-  
यत् । लिट्—अर्चयामास, अर्चयाम्भूय, अर्चयाम्भवे । लृट्—अर्चयिता ।  
लृट्—अर्चयिष्यते । आशी०—अर्चयिषीष्ट । लृट्—अर्चयिष्यत ।

लृट्

प्र० पु०	आर्तयत्	आर्तयेताम्	आर्तयन्त
----------	---------	------------	----------



उ० पु०	गृहीय	गृहीयहि	गृहीमहि
	अनद्यतनभूत—लट्		
प्र० पु०	अगृहीत	अगृहाताम्	अगृहत
म० पु०	अगृहीथा	अगृहाथाम्	अगृहीध्वम्
उ० पु०	अगृहि	अगृहीवहि	अगृहीमहि
	परोक्षभूत—लिट्		
प्र० पु०	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
म० पु०	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिष्वे, -इ
उ० पु०	जगृहे	जगृहिष्वहे	जगृहिमहे
	सामान्यभूत—लुट्		
प्र० पु०	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
म० पु०	अग्रहीष्ठा	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीष्वम्, -इ
उ० पु०,	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्वहि
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीता
लट्—	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीप्यते
आशी०—	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीणीष्ट
लट्—	प्र० पु०	एकवचन	अग्रहीप्यत

उभयपदो

ज्ञा—जानना

परस्मैपद्

वर्तमान—लट्

एकवचन

द्विवचन

बहुवचन

प्र० पु०

जानाति

जानीत

जानन्ति

म० पु०	आर्तयथा	आर्तयेथाम्	आर्तयधम्
उ० पु०	आर्तये	आर्तथावहि	आर्तथामहि

## उभयपदी—कथ् ( कहना )

कट्—कथयति, कथयते । लोट्—कथयतु, कथयताम् । विधि-  
कथयेत्, कथयेत् । लङ्—अकथयत्, अकथयत । लिट्—कथयामास  
कथयाम्यभूव, कथयाञ्चकार कथयाञ्चके । लुट्—कथयिता । लृट्—कथयिष्यति  
कथयिष्यते । आशी०—कथ्यात्, कथयिषीष्ट । लृङ्—अकथयिष्यत्  
अकथयिष्यत ।

## लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अचकथन्	अचकथताम्	अचकथन्
म० पु०	अचकथ	अचकथतम्	अचकथत
द० पु०	अचकथम्	अचकथाव	अचकथाम

## आत्मनेपद

प्र० पु०	अचकथत	अचकथेताम्	अचकथन्त
म० पु०	अचकथथा	अचकथेथाम्	अचकथध्वम्
उ० पु०	अचकथे	अचकथावहि	अचकथामहि

## उभयपदी—चल ( घुमा, साफ करना )

चल् के रूप चालयति, चालयते इत्यादि चलते हैं । लिट्—चालयामास  
चालयाम्यभूव, चालयाञ्चकार, चालयाञ्चके । लुट्—चालयिता । लृट्—  
चालयिष्यति, चालयिष्यते । आशी०—चाल्यात्, चालयिषीष्ट । लृङ्—  
अचालयिष्यत्, अचालयिष्यत । लुङ्—अचिचलत् अचिचलताम् अचि

चलन् । अचिञ्चल अचिञ्चलतम् अचिञ्चलत । अचिञ्चलम् अचिञ्चलाव  
अचिञ्चलाम् । आत्मनेपद में—अचिञ्चलत अचिञ्चनेताम् इत्यादि ।

### उभयपदी—गण् ( गिनना )

गणयति, गणयते । लिट्—गणयाम्भूव, गणयामास, गणयाम्भूव,  
गणयाम्भूव । लुट्—अजीगणत् अजीगणताम् अजीगणन् तथा अजगणत्  
अजगणताम् अजगणन् । अजीगणत अजीगण्येताम् अजीगणन्त तथा अज-  
गणत अजगण्येताम् अजगणन्त । लृट्—गणयिता । लृट्—गणयिष्यति,  
गणयिष्यते । आशी०—गणयात्, गणयिषीष्ट । लृट्—अगणयिष्यत्,  
अगणयिष्यत ।

### उभयपदी—चिन्त् ( विचारना )

चिन्तयति, चिन्तयते । लिट्—चिन्तयामास, चिन्तयाम्भूव,  
चिन्तयाम्भूव । लुट्—अचिचित् अचिचितताम्  
अचिचिन्तन् । अचिचिन्तत अचिचिन्तेताम् अचिचिन्तन्त । लृट्—चिन्तयिता ।  
लृट्—चिन्तयिष्यति, चिन्तयिष्यते । आशी०—चिन्तयात्, चिन्तयिषीष्ट ।  
लृट्—अचिन्तयिष्यत्, अचिन्तयिष्यत ।

### उभयपदी—तड् ( मारना )

ताडयति, ताडयते । लिट्—ताडयामास, ताडयाम्भूव, ताड-  
याम्भूव । लुट्—अतीतडत् अतीतडताम् अतीतडन् । अतीतडत  
अतीतडेताम् अतीतडन्त । लृट्—ताडयिता । लृट्—ताडयिष्यति, ताड-  
यिष्यते । आशी०—ताड्यात्, ताडयिषीष्ट ।

### उभयपदी—तप् ( गरम करना )

तप् के रूप सर्वथा तड् के समान होते हैं । तापयति-तापयते, इत्यादि ।

अपीयेथाम् अपीयध्वम् । अपीये अपीयाग्रहि अपीयामहि ।  
 लिट्—पपे पपाते पपिरे । पपिपे पपाथे पपिध्वे । पपे पपिग्रहे  
 पपिमहे । लुङ्—अपायि अपायिपाताम् अपायिपत । अपायिष्ठा  
 अपायिपाथाम् अपायिध्वम् । अपायिपि अपायिग्रहि अपायिष्महि ।  
 लुट्—पाता पातारौ णतार । लृट्—पास्यते पास्यते पास्यन्ते ।  
 आशी०—पासीष्ट । लृङ्—अपास्यत ।

स्थायीयते स्थीयेते स्थीयन्ते इत्यादि । लोट्—स्थीयताम् । लिङ्—  
 स्थीयेत । लृट्—अस्थीयत अस्थीयेताम् अस्थीय त । लिट्—तस्थे  
 तस्थाते तस्थिरे । तस्थिपे तस्थाथे तस्थिध्वे । तस्थे तस्थिग्रहे  
 तस्थिमहे । लुङ्—अस्थायि अस्थायिपाताम् अस्थायिपत । अस्था  
 यिष्ठा अस्थायिपाथाम् अस्थायिध्वम् । अस्थायिपि अस्थायिग्रहि  
 अस्थायिष्महि । लुट्—स्थाता । लृट्—स्थास्यते । आशी०—  
 स्थासीष्ट ।

हा—हीयते इत्यादि । लिट्—जहे जहाते जहिरे । लुङ्—अहायि अहा-  
 यिपाताम् अहायिपत इत्यादि ।

ज्ञा-सकर्मक—कर्मधाच्य

धर्तमान—जट्

प्र० पु०	ज्ञायते	ज्ञायेते	ज्ञायन्ते
म० पु०	ज्ञायसे	ज्ञायथे	ज्ञायध्वे
उ० पु०	ज्ञाये	ज्ञायावहे	ज्ञायामहे

## उभयपदी—तुल् ( तौलना )

लट्—तोलयति, तोलयते इत्यादि । लिट्—तोलयाञ्चकार, तोलयाञ्चने ।

लुङ्—अतूतुलत् अतूतुलताम् अतूतुलन् । अतूतुलत अतूतुलेताम् अतूतुलन्त ।

लृट्—तोलयिता । लृट्—तोलयिष्यति, तोलयिष्यते । आशी०—तोल्यात् तोलयिषीष्ट ।

## उभयपदी—दण्ड् ( दण्ड देना )

दण्डयति, दण्डयते । लिट्—दण्डयाञ्चकार, दण्डयाञ्चने, दण्डयामास ।

दण्डयाम्बभूव । लुङ्—अददण्डत् अददण्डताम् अददण्डन् । अददण्डत

अददण्डेताम् अददण्डन्त । लृट्—दण्डयिता । लृट्—दण्डयिष्यति,

दण्डयिष्यते । आशी०—दण्ड्यात्, दण्डयिषीष्ट ।

## उभयपदी

पाल्—( पालना, रक्षा करना ) लुङ् — अपीपत्तत्, अपीपत्तन् ।

पीड्—( दुःख देना ) " — अपिपीडत् अपिपीडन् ।

" — अपिपीडत्, अपीपिडत् ।

पूज्—( पूजा करना ) " — अपूपुजत्, अपूपुजन् ।

## उभयपदी—प्री ( खुश करना )

प्रीणयति, प्रीणयते इत्यादि । लुङ्—अपिप्रीणत्, अपिप्रीणत् ।

## आत्मनेपदी—भर्त्स ( धमकाना, डाटना )

भर्त्सयते । लिट्—भर्त्सयाञ्चके । लुङ्—अवभर्त्सत अवभर्त्सेताम्

अवभर्त्सन्त । अवभर्त्सथा अवभर्त्सेताम् अवभर्त्सध्वम् । अवभर्त्से अवभर्त्सादि

अवभर्त्सामहि । लृट्—भर्त्सयिता । लृट्—भर्त्सयिष्यते । आशी०—

भर्त्सयिषीष्ट ।

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ज्ञायताम्	ज्ञायेताम्	ज्ञायन्ताम्
म० पु०	ज्ञायन्व	ज्ञायेयाम्	ज्ञायध्वम्
उ० पु०	ज्ञायै	ज्ञायावहे	ज्ञायामहे

## विधिलिङ्

प्र० पु०	ज्ञायेत	ज्ञायेयाताम्	ज्ञायेरन्
म० पु०	ज्ञायेथा	ज्ञायेयाथाम्	ज्ञायेध्वम्
उ० पु०	ज्ञायेय	ज्ञायेवहि	ज्ञायेमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अज्ञायत	अज्ञायेताम्	अज्ञायन्त
म० पु०	अज्ञायथा	अज्ञायेथाम्	अज्ञायध्वम्
उ० पु०	अज्ञाये	अज्ञायावहि	अज्ञायामहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञायि	{ अज्ञायिषाताम् अज्ञासाताम्	{ अज्ञायिषत अज्ञासत
म० पु०	{ अज्ञायिष्ठा अज्ञास्था	{ अज्ञायिषाथाम् अज्ञासाथाम्	{ अज्ञायिध्वम् अज्ञाध्वम्
उ० पु०	{ अज्ञायिषि अज्ञासि	{ अज्ञायिष्वहि अज्ञास्वहि	{ अज्ञायिष्महि अज्ञास्महि

## उभयपदी—भत् ( राना )

भचयति, भचयते । लिट्—भचयामास, भचयाम्बभूव, भचयान्चकार,  
भचयाञ्चके । लुङ्—अभचत् अभचत । लुट्—भचयिता । लृट्—  
भचयिष्यति, भचयिष्यते । आशी०—भचयात् भचयिषीष्ट ।

## उभयपदी—भूप् ( सजाना )

भूपयति, भूपयते । लिट्—भूपयामास, भूपयाम्बभूव, भूपयाञ्चकार  
भूपयाञ्चके । लुङ्—अबुभूषत्, अबुभूषत । लुट्—भूपयिता । लृट्—  
भूपयिष्यति, भूपयिष्यते । आशी०—भूप्यात्, भूपयिषीष्ट ।

## आत्मनेपदी—मन्त्र्—( मलाह करना या सलाह देना )

मन्त्रयते । लिट्—मन्त्रयाञ्चके । लुङ्—अममन्त्रत् अममन्त्रेताम् अम  
मन्त्रन्त । अममन्त्रथा अममन्त्रेयाम् अममन्त्रधम् । अममन्त्रे अमन्त्रावहि  
अममन्त्रामहि । लुट्—मन्त्रयिता । लृट्—मन्त्रयिष्यते । आशी०—  
मन्त्रयिषीष्ट ।

## उभयपदी—माग् ( खोजना )

मागयति मार्गयते । लिट्—मार्गयामास, मार्गयाम्बभूव, मागयाञ्चकार,  
मार्गयाञ्चके । अममार्गत्, अममार्गत । लुट्—मागयिता । लृट्—मार्ग  
यिष्यति, मार्गयिष्यते । आशी०—मार्गात्, मार्गयिषीष्ट ।

## मार्ज् ( शुद्ध करना, पोढ़ना )

मार्जयति, मार्जयते । लिट्—मार्जयामास, मार्जयाम्बभूव, मार्जयाञ्चकार  
मार्जयाञ्चके । लुङ्—अममार्जत्, अममार्जत । लुट्—मार्जयिता । लृट्—  
मार्जयिष्यति, मार्जयिष्यते । आशी०—मार्ज्यात्, मार्जयिषीष्ट ।



## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	{ ज्ञाता ज्ञायिता	{ नातारी जायितारी	{ नातार जायितार
म० पु०	{ ज्ञातासे ज्ञायितासे	{ ज्ञातामाथे जायिनामाथे	{ ज्ञाताधे जायिना धे
उ० पु०	{ ज्ञाताहे ज्ञायिताहे	{ ज्ञातान्वहे जायितान्वह	{ ज्ञातास्महे जायितास्महे

## सामान्यभविष्य - लृट्

प्र० पु०	{ ज्ञास्यते जायिष्यते	{ ज्ञास्येने जायिष्येते	{ ज्ञास्यते जायिष्यते
म० पु०	{ ज्ञास्यसे जायिष्यसे	{ ज्ञास्येधे जायिष्येधे	{ ज्ञास्येने जायिष्येधे
उ० पु०	{ ज्ञास्ये जायिष्ये	{ ज्ञास्यावहे जायिष्यावहे	{ ज्ञास्यामहे जायिष्यामहे

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	{ ज्ञासीष्ट जायिषीष्ट	{ ज्ञासीयास्ताम् जायिषीयास्ताम्	{ ज्ञासीरन् जायिषीरन्
म० पु०	{ ज्ञासीष्टा जायिषीष्टा	{ ज्ञासीयास्थाम् जायिषीयास्थाम्	{ ज्ञासीष्वम् जायिषीष्वम्
उ० पु०	{ ज्ञासीय जायिषाय	{ ज्ञासीवहि जायिषीवहि	{ ज्ञासीमहि जायिषीमहि

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	{ अज्ञास्यत अज्ञायिष्यत	{ अज्ञास्येताम् अज्ञायिष्येताम्	{ अज्ञास्यन्त अज्ञायिष्यन्त
----------	----------------------------	------------------------------------	--------------------------------

परस्मैपदी—मान् ( आदर करना )

मानयति । मानयाञ्चकार । अभीमनन् अभीमनताम् अभीमनन् ।

उभयपदी—रच् ( बनाना )

रचयति, रचयते । लुङ्—अररचत्, अररचत । लुट्—रचयिता । लृट्—

रचयिष्यति, रचयिष्यते । आशी०—रच्यात्, रचयिषीष्ट ।

उभयपदी—वर्ण् ( वर्णन करना या रंगना )

वर्णयति, वर्णयते । लुङ्—अववर्णत्, अववर्णत । लुट्—वर्णयिता ।

लृट्—वर्णयिष्यति, वर्णयिष्यते । आशी०—वर्ण्यात्, वर्णयिषीष्ट ।

आत्मनेपदी—वञ्च् ( धोखा देना )

वञ्चयते । लिट्—वञ्चयामास, वञ्चयाम्यभूव, वञ्चयाञ्चके । लुङ्—अववञ्चत

अववञ्चेताम् अववञ्चन्त । लुट्—वञ्चयिता । लृट्—वञ्चयिष्यते ।

आशी०—वञ्चयिषीष्ट ।

उभयपदी—वृज् ( छेड़ना, निकालना )

वर्जयति, वर्जयते । लुङ्—अवीवृजत् अवीवृजताम् अवीवृजन् । अववर्जत्

अववर्जताम् अववर्जन् । अवीवृजत अवीवृजेताम् अवीवृजन्त । अववर्जन्त

अववर्जेताम् अववर्जन्त ।

उभयपदी—स्पृह् ( चाहना )

स्पृहयति, स्पृहयते । लिट्—स्पृहयामास, स्पृहयाम्यभूव, स्पृहयाञ्चकार,

स्पृहयाञ्चके । लुङ्—अपिस्पृहत् अपिस्पृहताम् अपिस्पृहन् । अपिस्पृहत अपि

स्पृहेताम् अपिस्पृहन्त । लुट्—स्पृहयिता । लृट्—स्पृहयिष्यति स्पृहयिष्यते ।

आशी०—स्पृह्यात्, स्पृहयिषीष्ट ।

म० पु०	{ अज्ञान्यया { अज्ञायिष्यथा	{ अज्ञास्येयाम् { अज्ञायिष्येयाम्	{ अज्ञास्यध्वम् { अज्ञायिष्यध्वम्
उ० पु०	{ अज्ञास्ये { अज्ञायिन्ये	{ अज्ञास्यावहि { अज्ञायिष्यावहि	{ अज्ञास्यामहि { अज्ञायिष्यामहि

ध्यै—लट्—ध्यायते ध्यायेते ध्यायन्ते । लाट्—व्यायताम् ध्यायेता  
 ध्यायन्ताम् । विधि—ध्यायेत ध्यायेयाताम् ध्यायेरन् । लट्—  
 अध्यायत अध्यायेताम् अध्यायन्त । लिट्—दध्या  
 दधियरे । तुङ्—अध्यायि अध्यायिष्याताम् अध्यायाता  
 अध्यायिष्यत अध्यासत । लुट्—ध्याता । लृट्—ध्यास्यते ।

चि—सकर्मक—कर्मधात्व्य

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	चीयते	चीयेते	चीयन्ते
म० पु०	चीयसे	चीयेथे	चीयथ्वे
उ० पु०	चीये	चीयावहे	चीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चीयताम्	चीयेताम्	चीयन्ताम्
म० पु०	चीयन्थ्व	चीयेथाम्	चीयध्वम्
उ० पु०	चीये	चीयावह	चीयामह

विधिलिट्

प्र० पु०	चीयेत	चीयेयाताम्	चीयेरन्
म० पु०	चीयेथा	चीयेयायाम्	चीयेध्वम्
उ० पु०	चीयेय	चीयेवहि	चीयेमहि

## दशम सोपान

### क्रिया विचार ( उत्तरार्ध )

१६१-ऊपर ( १४१ में ) कह चुके हैं कि मस्कृत में तीन धान्य होते हैं—कर्तृषाच्य, कर्मषान्य और भाषान्य । धातुओं के कर्तृषाच्य के रूप दसो गणों के सभी लकारों में पिङ्गने परिच्छेद में लिखाये जा चुके हैं । यह भी बताया जा चुका है कि कर्मषाच्य केवल सकर्मक धातुओं में और भाषषान्य केवल अकर्मक धातुओं में हो सकता है । इन दो धान्यों के रूप केवल आत्मनेपद में होते हैं, धातु चाहे जिस पद की हो । आत्मनेपद के जो प्रत्यय दसों लकारों के हैं वेही प्रत्यय जोड़े जाते हैं । कर्मषाच्य तथा भाषषान्य के रूप बनाने समय नीचे लिखे नियमों का पालन किया जाता है —

( १ ) धातु और प्रत्ययों के बीच में मार्वधातुक लकारों में यक् ( य ) जोड़ा जाता है, जैसे—भिद् और ते के बीच में य जोड़ कर भिशते रूप बनता है ।

( २ ) धातु में यक् के पूर्व, कोई विकार नहीं होता । जैसे—गम्+य+ते=गम्यते । कर्तृषान्य में सार्वधातुक लकारों में धातुओं के स्थान में धात्वादेश ( जैसे गम् का गच्छ् ) नहीं होता । इसी प्रकार गुण और वृद्धि भी नहीं होती ।

( ३ ) डा, दे, दो, या, ये, मा, मै, पा, मो और हा धातुओं का अन्तिम स्वर ई में बदल जाता है, जैसे—दीयते, धीयते, मीयते,

## अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अचीयत	अचीयेताम्	अचीयन्त
म० पु०	अचीयथा	अचीयेयाम्	अचीयध्वम्
उ० पु०	अचीये	अचीयावहि	अचीयामहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्वे	चिक्व्याते	चिक्विर
म० पु०	चिक्विषे	चिक्व्याथे	चिक्विष्ये
उ० पु०	चिक्वे	चिक्विष्वहे	चिक्विमहे

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अचायि	{ अचायिपाताम् अचेपाताम् }	{ अचायिपन् अचेपन् }
म० पु०	{ अचायिष्ठा अचेष्ठा }	{ अचायिपाथाम् अचेपाथाम् }	{ अचायिष्यन् अचेष्यन् }
उ० पु०	{ अचायिषि अचेषि }	{ अचायिष्वहि अचेष्वहि }	{ अचायिष्महि अचेष्महि }

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	{ चेता चायिता }	{ चेतारी चायिनारी }	{ चेतार चायितार }
म० पु०	{ चेतासे चायितासे }	{ चेतामाथे चायितामाथे }	{ चेताप्ते चायिताप्ते }
उ० पु०	{ चेताहे चायिताहे }	{ चेतास्वहे चायितास्वहे }	{ चेतास्महे चायितास्महे }

गीयते, पीयते, सीयते, ह्रीयते । और धातुओं का वैसे ही रहता है , जैसे—झायते, स्नायते, भूयते, ध्यायते । बहुत सी धातुओं के बीच का अनुस्वार कर्मवाच्य के रूपों में निकाल दिया जाता है , जैसे—बन्ध् से बध्यते, शस् से शस्यते, इन्ध् से इध्यते ।

( ४ ) अन्य छ लकारों में कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्तृवाच्य के ही रूप होते हैं जैसे, परोक्षभूत में—निग्ये, वभूव, जह्ये आदि, अथवा कृधातु के रूप जोड़ कर, जैसे ईक्ष्वाञ्चके अथवा अस् धातुके रूप लगाकर, कथयामासे आदि ।

( ५ ) स्वरान्त धातुओं के तथा हन्, ग्रह, इष् धातुओं के दोनों भविष्य, क्रियातिपत्ति तथा आशीर्लिङ् में वैकल्पिक रूप धातु के स्वर की वृद्धि शब्द तथा प्रत्ययों के पूर इ जोड़ कर बनते हैं , जैसे—दा से दायिता अथवा दाता । दायिष्यते अथवा दास्यते । अदायिष्यत अथवा अदाम्यत । दायिरोह अथवा दासीष्ट ।

( फ ) नीचे कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप दिये जाते हैं । जैसा ऊपर नवें सोपान में बता चुके हैं । कर्मवाच्य की क्रिया क रूप पुरुष और वचन में कर्म के अनुसार होते हैं । भाववाच्य का अर्थ है केवल किसी क्रिया का होना दिखाना । यह सदा प्रथमपुरुष एक वचन में होता है, कर्ता के अनुसार इसके रूप नहीं बदलते । जैसे—तेन भूयते, ताभ्याम् भूयते, नै भूयते, त्वया भूयते युवाभ्याम् भूयते, युष्माभि भूयते, मया भूयते, आवाभ्यां भूयते अस्माभि भूयते । इसी प्रकार भूयताम्, भूयात्, अभूयत ।

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	{ चेष्यते चायिष्यते	{ चेष्येते चायिष्येते	{ चेष्यन्ते चायिष्यन्ते
म० पु०	{ चेष्यसे चायिष्यसे	{ चेष्येथे चायिष्येथे	{ चेष्यध्वे चायिष्यध्वे
उ० पु०	{ चेष्ये चायिष्ये	{ चेष्यावहे चायिष्यावहे	{ चेष्यामहे चायिष्यामहे

## आशीर्तिङ्

प्र० पु०	{ चेषीष्ट चायिषीष्ट	{ चेषीयास्ताम् चायिषीयास्ताम्	{ चेषीरन् चायिषीरन्
म० पु०	{ चेषीष्ठा चायिषीष्ठा	{ चेषीयास्थाम् चायिषीयास्थाम्	{ चेषीध्वम् चायिषीध्वम्
उ० पु०	{ चेषीय चायिषीय	{ चेषीवहि चायिषीवहि	{ चेषामहि चायिषीमहि

## लृङ्

प्र० पु०	{ अचेष्यत अचायिष्यत	{ अचेष्येताम् अचायिष्येताम्	{ अचेष्यन्त अचायिष्यन्त
म० पु०	{ अचेष्यथा अचायिष्यथा	{ अचेष्येथाम् अचायिष्येथाम्	{ अचेष्यध्वम् अचायिष्यध्वम्
उ० पु०	{ अचेष्ये अचायिष्ये	{ अचेष्यावहि अचायिष्यावहि	{ अचेष्यामहि अचायिष्यामहि

जि—लृट्—जीयते जीयेते जीयन्ते । लोट्—जीयताम् जीयेताम् जीयन्ताम् ।  
 विप्रि—जीयेत जीयेयाताम् जीयेरन् । लृट्—अजीयत अजीयेताम्  
 अजीयन्त । लिट्—जिग्ये जिग्याते जिग्यरे । जिग्येपे जिग्याथे जिग्यध्वे  
 जिग्ये जिग्यवहे जिग्यमहे । लुङ्—अजायि अजायिपाताम् अनेगताम्

१६२—मुख्य धातुओं के कर्मधान्य तथा भाववाच्य णे एष ।

पठ्—लट्—पठ्यते पठ्येते पठ्यन्ते । लोट्—पठ्यताम् पठ्येताम् पठ्यन्ताम् ।  
विधि—पठ्येत पठ्येयानाम् पठ्येरन् । लृट्—अपठ्यन् अपठ्येताम्  
अपठ्यन्त । लिट्—पेठे पेठाते पेठिरे । लुट्—अपाठि अपाठिपाताम्  
अपाठिपठ । लृट्—पठिता पठिनारा । पठितासे । लृट्—पठिष्यते ।  
आशी०—पठिषीष्ट ।

मुच्—लट्—मुच्यते मुच्येते मुच्यन्ते । लोट्—मुच्यताम् मुच्येताम् मुच्य  
न्ताम् । विधि—मुच्येत मुच्येयाताम् मुच्येरन् । लट्—अमुच्यत ।  
अमुच्येताम् अमुच्यन्त ।

लिट्—मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिषे
मुमुचे	मुमुचिबः	मुमुचिमहे
लृट्—अमोचि	अमुचाताम्	अमुचत
अमुक्या	अमुचायाम्	अमुकवम्
अमुचि	अमुचमहि	अमुचमहि
लृट्—मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्ता
लृट्—मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
आशी०—मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मुक्षीरन्
लृट्—अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अमोक्ष्यत



म० पु० अनायिष्यथा अनायिष्येधाम् अनायिष्यध्वम्

उ० पु० अनायिष्ये अनायिष्यावहि अनायिष्यामहि

रु—सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु० क्रियते क्रियेते क्रियन्ते

म० पु० क्रियसे क्रियेथे क्रियध्वे

उ० पु० क्रिये क्रियावहे क्रियामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु० क्रियताम् क्रियेताम् क्रियन्ताम्

म० पु० क्रियस्व क्रियेथाम् क्रियध्वम्

उ० पु० क्रियै क्रियावहे क्रियामहे

विधिलिट्

प्र० पु० क्रियेत क्रियेयाताम् क्रियेरन्

म० पु० क्रियेथा क्रियेयाथाम् क्रियेध्वम्

उ० पु० क्रियेय क्रियेयहि क्रियेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु० अक्रियत अक्रियेताम् अक्रियन्त

म० पु० अक्रियथा अक्रियेथाम् अक्रियध्वम्

उ० पु० अक्रिये अक्रियावहि अक्रियामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु० चक्रे चक्राते चक्रिरे

म० पु० चकृपे चक्राथे चकृध्वे ध्वे

दा—सकर्मक—कर्मप्राच्य

घर्तमान—लट्

प्र० पु०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
म० पु०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
उ० पु०	दीये	दीयावहे	दीयामहे

ग्राह्या—लोट्

प्र० पु०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
म० पु०	दीयन्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
उ० पु०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै

विधिलिट्

प्र० पु०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
म० पु०	दीयेथा	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
उ० पु०	दीयेथ	दीयेवहि	दीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
म० पु०	अदीयथा	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
उ० पु०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिपे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

म० पु०	अनायिष्यथा	अनायिष्येथाम्	अनायिष्यध्वम्
उ० पु०	अनायिष्ये	अनायिष्यामहि	अनायिष्यामहि

रु—मकर्मक—कर्मवान्य

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
म० पु०	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे
उ० पु०	क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्
म० पु०	क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्
उ० पु०	क्रियं	क्रियावहै	क्रियामहै

विधिलिट्

प्र० पु०	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्
म० पु०	क्रियेया	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्
उ० पु०	क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि

अनद्यतनभूत—लट्

प्र० पु०	अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त
म० पु०	अक्रियथा	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्
उ० पु०	अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृध्वे ध्वे

## सामान्यभूत—लुट्

प्र० पु०	अदायि	{ अदायिपाताम् अदिपाताम्	{ अदायिपत अदिपत
म० पु०	{ अदायिष्ठा अदिष्ठा	{ अदायिपाथाम् अदिपाथाम्	{ अदायिपथम् अदिपथम्
उ० पु०	{ अदायिष्वि अदिष्वि	{ अदायिष्वहि अदिष्वहि	{ अदायिष्वहि अदिष्वहि

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातार
म० पु०	दातासे	दातासाथे	दाताप्ते
उ० पु०	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

## अथवा

प्र० पु०	दायिता	दायितारौ	दायितार
म० पु०	दायितासे	दायितासाथे	दायिताप्ते
उ० पु०	दायिताहे	दायितास्वहे	दायितास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यन्ते
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

## अथवा

प्र० पु०	दायिष्यते	दायिष्येते	दायिष्यन्ते
म० पु०	दायिष्यसे	दायिष्येथे	दायिष्यन्ते
उ० पु०	दायिष्ये	दायिष्यावहे	दायिष्यामहे

इस वाक्य में राम स्वयं नहीं पकाता, पकाने का काम किसी और से कराता है। शिच् प्रत्यय लग कर अकर्मक धातु कभी कभी सकर्मक भी हो जाती है, और कभी कभी उसके अर्थ में परिवर्तन भी हो जाता है।

(क) शिजन्त धातु के रूप चुरादिगण की धातुओं के समान चलते हैं, धातु और तिङ् प्रत्ययो के बीच में अत्र जोड़ दिया जाता है।

तथा नियम १५६ में उल्लिखित स्वर का परिवर्तन होता है, जैसे—

(१) धुध् ( पोषति )	से	प्रेरणार्थक	बाधयति
(२) अद् ( अस्ति )	मे	"	आदयति
(३) हु ( जुहोति )	मे	"	हावयति
(४) दिष् ( दीव्यति )	मे	"	दंशयति
(५) सु ( सुनोति )	से	"	साधयति
(६) तुद् ( तुदति )	से	"	तोदयति
(७) रुप् ( रुणाद्भि )	से	"	रोधयति
(८) तन ( तनोति )	मे	"	तानयति
(९) अज् ( अज्जनाति )	मे	"	आजयति
(१०) चूर् ( चोरयति )	मे	"	चोरयति

चुरादिगण की धातुओं के रूप प्रेरणार्थक में भी जैसे ही होते हैं जैसे सादे में।

## आशीर्जिट्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठा	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

## अथवा

प्र० पु०	दायिपीष्ट	दायिपीयास्ताम्	दायिपीरन्
म० पु०	दायिपीष्ठा	दायिपीयास्थाम्	दायिपीध्वम्
उ० पु०	दायिपीय	दायिपीवहि	दायिपीमहि

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथा	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

## अथवा

प्र० पु०	अदायिष्यत	अदायिष्येताम्	अदायिष्यन्त
म० पु०	अदायिष्यथा	अदायिष्येथाम्	अदायिष्यध्वम्
उ० पु०	अदायिष्ये	अदायिष्यावहि	अदायिष्यामहि

पा—लृट्—पीयते पीयेते पीयन्ते । पीयसे पीयेथे पीयध्वे । पीये पीयावहे पीयामहे । लोट्—पीयताम् पीयेताम् पीयन्ताम् । पीयस्व पीयेथाम् पीयध्वम् । पीयै पीयावहै पीयामहै । विधि—पीयेत पीयाताम् पीयेरन् । पीयेथा पीयेयाथाम् पीयेध्वम् । पीयेय पीयेवहि पीयेमहि । लृट्—अपीयत अपीयेताम् अपीयन्त । अपीयथा

साथ साथ और अर्थ का भी बोध हो जाता है। जैसे हिन्दी में 'म जाता हूँ' के साथ यदि चाहने का अर्थ लगाना हो तो 'मै जाना चाहता हूँ' इस वाक्य का प्रयोग करेंगे। इस में दो धातुआ (जाना—और चाहना—) का प्रयोग हुआ, किन्तु सस्कृत में गम् धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय जोड़ कर चाहने का अर्थ निकाल लिया जाता है, जैसे गम्—जाना, जिगमिप्—जाने की इच्छा करना (अह गच्छामि—अह जिगमिषामि)। जिगमिप्—को सन् प्रत्ययान्त धातु कहेंगे। सन् आदि प्रत्यय धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच में जोड़े जाते हैं तब क्रिया की सिद्धि होती है।

प्रत्ययान्त धातुएँ चार प्रकार की होती हैं —

- ( १ ) णिजन्त—णिच् प्रत्यय में अन्त होने वाली।
- ( २ ) सन्नन्—सन् प्रत्यय में अन्त होने वाली।
- ( ३ ) यङन्त—यट् प्रत्यय में अन्त होने वाली तथा
- ( ४ ) नामधातु—किसी सत्ता को धातु रूप लेकर बनाई हुई धातु।

### णिजन्त धातु

१६४—किसी धातु में जब प्रेरणा का अर्थ लाना हो तो णिच् प्रत्यय जोड़ देते हैं। करना से कराना, पढ़ना से पढ़ाना, पकाना से पकवाना, बनाना से बनवाना आदि प्रेरणा के अर्थ हैं। सादी धातु में जो कर्ता रहता है वह प्रेरणार्थक धातु में स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे से कार्य कराता है, जैसे 'राम पकाता है' इस वाक्य में राम स्वयं पकाने का कार्य करता है 'किन्तु राम पकवाता

है' इस धातु में राम स्वयं नहीं पकाता, पकाने का काम किसी और से कराता है। शिच् प्रत्यय लग कर अकर्मक धातु कभी कभी सकर्मक भी हो जाती है, और कभी कभी उमड़े अर्थ में परि वर्तन भी हो जाता है।

(क) णिजन्त धातु के रूप चुरादिगण की धातुओं के समान चलते हैं धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच में अय जाड़ दिया जाता है।

तथा नियम १५६ में उल्लिखित स्वर का परिवर्तन होता है जैसे—

(१) बुध् ( बोधति )	में	प्रेरणायक	धाधयति
(२) अद् ( अस्ति )	से	"	आडयति
(३) हु ( जुहोति )	मे	"	हाधयति
(४) दिष् ( दीन्यति )	से	"	देवयति
(५) सु ( सुनोति )	से	"	मात्रयति
(६) तुद् ( तुदति )	से	"	तोदयति
(७) रुध् ( रुणद्धि )	से	"	रोत्रयति
(८) तन ( तनोति )	से	"	तानयति
(९) अज् ( अश्नाति )	से	"	आजयति
(१०) चूर् ( चारयति )	से	"	चारयति

चुरादिगण की धातुओं के रूप प्रेरणार्थक में भी जैसे ही होते हैं जैसे साढ़े में।



नेपट् । कुत्र एक पद की ही रानी हैं, उन्तदूसरे की ही और कोई कोई दोनों पदों की । किन्तु रूपाग्रो में धातु एक पद को छोड़कर दूसरे की हो जाती है, यह यहाँ दिखाने का प्रयत्न किया जायगा ।

भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में तात्त्विक आत्मनेपद में रहती है—कर्तृवाच्य में चाहे वह परस्मैपद में हो चाहे आत्मनेपद में ।

१। चार मोटे २ नियम यहाँ दिए जाते हैं ।

( १ ) अविपूर्वक इह् धातु का जन धातु का, हु धातु का, उध तथा युध् का निष्पन्न प्रयोग हो तो ये परस्मैपदों होती हैं, जैसे—जान प्रधीते, गुरु धात्रमध्यापयति जनयति प्रावयति बाधयति और बोधयति ।

( २ ) कृ' धातु उभयपदी है । परन्तु यदि अनु' अथवा 'परा' उपसर्ग लगा हो तो केवल परस्मैपद में होती है ( अनुज्जरोति पराज्जरोति ) । नाचे लिखी दशाओं में वह केवल आत्मनेपद में होती है —

'अधि' उपसर्ग लगाकर समा करने या अधिहार कर लेने के अर्थ में ( शत्रुमघिहुरवे—वैरी को समा कर देता है अथवा उस पर कब्जा कर लेता है ), 'वि' उपसर्ग लगाकर अकर्मक बनाने के अर्थ में ( छात्रा विजु-धन्ते—विकार लभन्ते ) अथवा जय गन्धन ( हिंसा, हानि पहुँचाना ) अथवा क्षण ( निन्दा, भर्त्सना ) सेवन, साहसिक कर्म प्रतियत्न ( किसी गुण का स्थापन ), प्रकथन अथवा धर्मार्थ में लग जाने का बोध कोई उपसर्ग जोड़ कर कराया जाय, जैसे —

। अनुपराभ्या कृञ् । १ । ३।०६ ॥ अवे प्रमहने । वे शत्रुर्महन्ते ।  
अकर्मसारत्त । १ । ३ । ३३-३४ ॥ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिकप्रतियत्न  
प्रकथनोपयोगेषु कृञ् । १ । ३ । ३२ ॥

(ख) कुछ धातुओं के साथ ऊपर लिखे हुए सभी परिवर्तन नहीं होते मुख्य मुख्य धातुओं का भेद यह है —

अम् में अन्त होने वाली धातुओं में ( अम्, कम्, चम्, शम् यौयम् को छोड़ कर ) उपधा के अकार को वृद्धि नहीं होती, जैसे—गम् गमयति, किन्तु कम् में कामयते होता है ।

यहुधा आकारान्त ( और ऐमी ए, ऐ, ओ में अन्त होने वाली धातुएँ जो आकारान्त हो जाती हैं ) धातुओं के अनन्तर अय् के पूर प् जोड़ दिया जाता है, जैसे—ग से दापयति, स्ना से स्नापयति गे से गापयति । मि, मा, वी, जि, क्री में ओ प् जोड़ दिया जाता है और इकार का आकार हो जाता है, जैसे—मापयति, दापयति, आपयति, क्रापयति ।

(ग) नीचे लिखी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप इस प्रकार चलते हैं —

इण् ( जाना ) से गमयति ।

अधि + इड् से अध्यापयति, —प्रस्थापयति ।

चि ( इकट्ठा करना ) से चापयति ते, थापयति ते ।

जागृ ( जागना ) से जागरयति ।

दुष् ( दोषी होना ) से दूषयति ते, दोषयति ते ।

प्री ( प्रसन्न होना ) से प्रीणयति ।

रुह् ( उगना ) से रोहयति ते, रोपयति ते ।

वा ( डोलना ) से वापयति, वाजयति ।

हन् ( मारना ) से घातयति ।

(घ) प्रेरणार्थक धातुओं के रूप चुरादिगणी धातुओं के समान दसो लकारों, तीनों वाच्यों और दोनों पदों में चलते हैं । उदाहरणार्थ बुध् धातु के रूप प्रथम पुरुष एक वचनमें दिखाए

उत्फुरते ( सूचना देता है—सूचना देकर हानि पहुँचाता है ) । श्येनो वर्तिकासुदाकुस्ते ( बाज़ घटेर को डराता है ) । हरिमुपकुस्ते ( विष्णु की सेना करता है ) । परदारान् प्रकुर्वते ( वे पराई स्त्रियो पर साहस से अत्याचार करते हैं ) । एध उदकम्य उपकुस्ते ( इंधन पानी में गरमो पहुँचाता है । गाथा प्रकुस्ते ( गाथाएँ कहता है ) । शत प्रकुस्ते ( सौ रूपए धर्माप लगाता है ) ।

( ग ) क्रम धातु उभयपदो है, किन्तु उप और परा के साथ बिना रोक रोक के चलने, बढ़ने और उल्लाह के अर्थ में ( उपक्रमते, पराक्रमते ) आड् के साथ सूर्य आदि के निकलने के अर्थ में ( सूर्य आक्रमते ), प्र और उप के साथ आरम्भ करने के अर्थ में ( वस्तु प्रक्रमते उपक्रमते )—आत्मनेपद में ही होती है ।

( घ ) क्री के पूर्व यदि अव, परि अथवा वि हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—अवक्रीणीते, परिक्रीणीते, विक्रीणीते ।

( ङ ) क्रीड् धातु के पूर्व यदि अनु, आ परि अथवा सम् में से कोई उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, अनु परि आ-स कोडते ।

१ वृत्तिसर्गतायनेषु । उपपराभ्याम् । आड् उद्गमने । ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम्) । १ । ३ । ३८-४० । प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् । १ । ३ । ४२ ।

२ परि यवेभ्य क्रिय । १ । ३ । १८ ।

३ क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च । १ । ३ । २१ ॥

ज्ञाते हैं। कर्तृवाच्य में—लट्—बोधयति, बोधयते । लोट्—बोधयतु  
बोधयताम् । विधि—बोधयेत्, बोधयेत । लृट्—अबोधयत् अबोधयत ।  
लृट्—बोधयाम्भूय, बोधयाम्भूय, बोधयामास बोधयान्चक्रे, बोधया-  
म्भूय, बोधयामास । लुट्—अबोधयत्, अबोधयत । लुट्—बोधयिता  
बोधयिता । लृट्—बोधयिष्यति, बोधयिष्यते । आशी० बोध्यात्  
बोधयिषीष्ट । लृट्—अबोधयिष्यन्, अबोधयिष्यत ।

कर्मण्य में—लट्—आध्यते । लोट्—बोध्यताम् । विधि—  
बोध्येत् । लृट्—अवाध्येत् । लिट्—बोधयाम्भूय, बोधयाम्भूये,  
बोधयामासे । लुट्—अवाध । लुट्—बोधिता । लृट्—बोधिष्यते ।  
आशी०—बोधिषीष्ट । लृट्—अवाधिष्यत ।

### सन्नन्त धातु

१६५—किसी कार्य के करने की इच्छा करने का अर्थ बत-  
लाने के लिए उस कार्य का अर्थ उतलाने वाली धातु के अनन्तर  
सन् प्रत्यय लगाया जाता है, उसे—म जाना चाहता हूँ । यहाँ म  
जाने की इच्छा करना है इस लिये जाने का बोध कराने वाली  
धातु के अनन्तर सन्नन्त में सन् प्रत्यय जो कर 'जाना चाहता हूँ'  
यह अर्थ निकल आणगा (गम्—मे जिगमिष) । जो कर्ता जाने की  
क्रिया का होगा वही इच्छा करने वाला होना चाहिये, यदि दूसरा

( च ) चिप् के पूर्व यदि अमि प्रति अति में से कोई उपसर्ग हो तो वह परस्मैपदी होती है, अमि अति प्रति चिपति ।

( छ ) गम् के पूर्व यदि 'सम्' उपसर्ग हो और मिलने, तथा उपयुक्त होने का अर्थ दिखाना हो तो आत्मनेपदी हो जाती है । मत्तोभि सह वृते—सरियो से मिलती है । इय चार्ता सङ्ग वृते—यह यात ठीक है ।

( ज ) चर् के पूर्व यदि उन् उपसर्ग हो और धातु सकर्मक हो जाय अथवा सम् पूर्वक हो और तृतीयान्त शब्द के साथ हो तो वह आत्मनेपदी हो जाता है, जैसे—धर्ममुचरते—धर्म के विपरीत करता है, निन्तु वापमुचरति—आंसू निरुलता है, रथेन सञ्चरते ( रथ पर चलता है ) ।

( झ ) जि के पूर्व यदि 'वि' अथवा 'पग' हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, शत्रून् विजयते, पराजयते वा, अध्ययनात् पराजयते—पढ़ने से हार जाता है ।

( ञ ) जो धातु सञ्जन्त होने पर आत्मनेपदी हो जाती है ( विशा सति ) । नीचे लिखी दशाश्रों में भी यह आत्मनेपदी होती है —

१ अभिप्रत्यतिभ्य चिप । १ । ३ । ८० ॥

२ समो गम्यच्छिभ्यम् । १ । ३ । २६ ।

३ उदग्धर सकमकात् । समस्तृतीयायुक्तात् । १ । ३ । ६३—६४ ॥

४ विपराम्या जे । १ । ३ । १६ ॥

५ अपह्वरे ज्ञ । अकर्मकाच्च । सम्प्रतिभ्यामनाध्याने १ । ३ । ४४—४६ ॥

कर्ता होगा तो सन् प्रत्यय नहीं लग सकता, जैसे 'मैं इच्छा करता हूँ कि वह जावे', इस वाक्य में इच्छा करने वाला मैं हूँ और जाने वाला वह, यहाँ सन् लगाना असम्भव होगा किन्तु मैं उसे पढ़ाना चाहता हूँ, इस वाक्य में सन् लग सकता है, क्योंकि यहाँ 'पढ़ाना' तथा 'चाहना' दोनों क्रियाओं का कर्ता एक ही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेरणार्थक धातु के अनन्तर भी सन् लग सकता है किन्तु तभी जब प्रेरणा करने वाला और इच्छा करने वाला एक ही व्यक्ति हो।

सन् प्रत्यय लगाना न लगाना अपनी इच्छा पर है। यदि न लगाना चाहें तो यही अर्थ इप्, अभिलप् आदि चाहने का अर्थ शतलाने वाली क्रियाओं के प्रयोग से भी लाया जा सकता है, जैसे—'मैं जाना चाहता हूँ' का अनुवाद चाहे अह जिगमिषामि 'फर्र' चाहे 'अह गन्तुमिच्छामि' या 'अह गन्तुमभिलपामि' आदि से करे, दोनों ठग ठोक होंगे।

इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इच्छा करने की क्रिया कर्म स्वरूप होना चाहिए, और कोई कारक नहीं। ऊपर 'मैं जाना चाहता हूँ' इस वाक्य में 'चाहता हूँ' क्रिया का 'जाना' कर्म है तभी सन् प्रत्यय लगाया जा सका है। यदि 'मैं चाहता हूँ कि मेरे खाने से बल बढ़े' इस प्रकार का वाक्य हो जहाँ 'खाने से' करण कारक है तो ऐसी दशा में 'खाने' की धातु के अनन्तर सन् लगा कर इच्छा का बोध नहीं कराया जा सकता।

(क) सन् प्रत्यय का सू धातु में जोड़ा जाता है, यह सू सन्धि के (२६वें) नियम के अनुसार कहीं कहीं प हो जाता है। स जोड़ने के पूर्व

यदि अकर्मक हो ( सर्पिणो जानाते ), यदि 'अप' पूर्वक अपहव ( इनकारी ) का अर्थ बताती हो ( शतमपजानीते—सौ ( रूपया ) स इनकार करता है ), यदि 'प्रति' पूर्वक प्रतिज्ञा का अर्थ बताती हो ( शत प्रतिजानीते—सौ रूपण की प्रतिज्ञा करता है ), 'सम्' पूर्वक आशा करने के अर्थ में ( शत सज्जानीते—सौ रूप्य की आशा करता है ) ॥

( ट ) दा के पूर्व यदि आह् उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी होती है ( आहते, नाहते प्रियमयहनाऽपि भवता स्नेहेन या पल्लवम् ) ।

( ठ ) इश् सञ्ज्ञ-त होने पर आत्मनेपदी होती है ( दिदृक्षते ) तथा 'सम्' पूर्वक यदि अकर्मक हो तब भी आत्मनेपदी होती है ( सम्पश्यते—भली प्रकार सोचता है ) ।

( ड ) नी धातु में जब सम्मान करने उठाने, उपनयन करने, जान, घेतन देकर काम में लगाने, कर ( देवस ) आदि अदा करने ( चुकाने ) अथवा भले कार्य में प्रार्थन करने का अर्थ निकलता हो तो वह आत्मनेपदी होती है, जैसे—(क्रम से) शास्त्रे शिष्य नयते (शिष्य को शास्त्र पढ़ाता है—इससे उसका सम्मान होगा) । दण्डमुत्रयते (दण्ड ऊपर उठाता है) माणवकमुपनयते (लड़के का उपनयन करता है) वत्स नयते (तत्त्व का

१—आहो दोऽनास्यविवरणे । १ । ३ २० ॥

२—अतिं श्रुदशिम्यश्चेति वक्तव्यम् । वा ।

३—सन्माननोत्सज्जनाचार्यकरणज्ञान मृतिविगणनव्ययेपुनिय । १

धातु को पृष्ठ ३१५ में उल्लेख किये हुए नियमों के अनुसार अभ्यस्त कर देना आवश्यक है। अभ्यास में यदि अकार हो तो उसका इकार हो जाता है, जैसे—पठ् + सन् = पठ् + पठ् + सन् = प + पठ् + स = पिपठ् + प् धातु यदि सेट् हो तो स् के पूर्व गृह्या इकार आ जाता है परन्तु कभी कभी किसी किसी धातु में नहीं भी आता, यदि घेट् हो तो गृह्या इच्छानुसार इकार आता है, और यदि अनिट् हो तो गृह्या नहीं आता, जैसे—सट् पठ् धातु का सन्नत रूप पिपठ् + इ + प् = पिपठिप् हुआ, किन्तु मेट् भू धातु का भूप्—हुआ।

( ख ) इस प्रकार गनी हुई सन्नत धातु के रूप धातु के पद के अनुसार वसों लकारों में चलते हैं। परोक्षभूत में आम् जोड़ कर इ, भू और प्रस् धातुओं के रूप जोड़ लिए जाते हैं।

उदाहरणार्थ बुध् धातु के प्रथम पुराण एक वचन के रूप दिए जाते हैं।

	कर्तृवाच्य		कर्मवाच्य
लट्	बुधोधिपति	बुबोधिपते	बुगोधिप्यते
लोट्	बुगोधिपतु	बुगोधिपताम्	बुगोधिप्यताम्
लृटि	बुबोधिपेत्	बुबोधिपेत	बुबोधिप्येत
लृट्	अबुगोधिपत्	अबुगोधिपत	अबुगोधिप्यत
लृट्	बुगोधिपात्तक	बुगोधिपात्तके	बुगोधिपात्तके
	बुगोधिपाग्यभूव	बुगोधिपाग्यभूवे	बुगोधिपाग्यभूवे
	बुगोधिपामास	बुगोधिपामासे	बुगोधिपामासे
लृट्	अबुगोधिपीत्	अबुगोधिपिष्ट	अबुगोधिपि



नेरचय करता है अर्थात् ज्ञान प्राप्त करता है ), कर्मकगनुपनयते ( मजदूर गाता है ) कर विनयते ( टैक्स चुमाता है ), तथा शत गिनयते ( सौ पण आदी तरह खर्च करता है ) ।

( ङ ) प्रच्छ् धातु के पूव 'आ' लगाकर चञ्च अनुमति लेने का अर्थ स्वात्मनेपदी हो तो यह धातु आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—आपृच्छस्व अयमस्त्रममुम् ( इस प्रियमित्र से जाने की अनुमति ले लो ) । 'सम्' लगाकर जब यह धातु अकर्मक होती है तब भी आत्मनेपदी हो जाता है ( आपृच्छते ) ।

( ञ ) भुज् धातु रक्षा करने के अर्थ में परस्मैपदी होता है और मय पृथ्वी में आत्मनेपदी । महीं भुनक्ति ( पृथ्वी की रक्षा करता है ) महा बुभुज पृथ्वी का भोग किया )

( त ) रम् आत्मनेपदी धातु है किन्तु वि, आह् परि और उप समासों के अनन्तर आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—वत्सैवस्माद्विरम, परमति, परिरमति, यज्ञदत्त उपरमति ( रमयति ) ।

( थ ) घट् नीचे लिखे अर्थों में आत्मनेपदी होती है —

१—आहि भुप्रच्छद्यो । वा० ॥

२—भुजोऽनवने । १ । ३ । ६६ ॥

३—याह्परिभ्योरम । उपाच्च । १३ । ८३—८४ ॥

४—भासनोपसभापाज्ञानयत्तविमत्युपमरणेषु वद । १ । ३ । ४० ॥

वादिद । १ । ३ । ७३ ॥

लुट्	बुभोधिषिता	बुभोधिषिता	बुभोधिषिता
लृट्	बुभोधिषिष्यति	बुभोधिषिष्यते	बुभोधिषिष्यते
आशी०	बुभोधिष्यात्	बुभोधिषिषीष्ट	बुभोधिषिषीष्ट
लृङ्	अबुभोधिषिष्यन्	अबुभोधिषिष्यत	अबुभोधिषिष्यत

### यङन्त धातु

१६६—ज्यञ्जन से आरम्भ होने वाली किसी भी एकाच् धातु के अनन्तर क्रिया को बार बार करने अथवा क्रिया को खूब करने का बोध कराने के लिए यङ् प्रत्यय लगाया जाता है। यह प्रत्यय द्रस्वर्णे गण की (सूच्, सूत्र, सूत्र्, अट्, ऋ, अश् और ऊर्ण के छेदकर) किसी धातु के अनन्तर नहीं लगता, केवल प्रथम नौ गणों की धातुओं के उपरान्त लग सकता है। जैसे—नेनीयते—बार बार ले जाता है। देदीयते—गुंव देता है।

यङ् प्रत्यय धातु में दो प्रकार से जोड़ा जाता है, एक को जोड़ने से परस्मैपद में रूप चलते हैं, और दूसरे के जोड़ने से आत्मनेपद में। परस्मैपद वाले रूप बहुधा वैदिक मस्कृत में मिलते हैं इस लिए उस का उल्लेख यहां अनावश्यक है। आत्मनेपद के यङन्त रूपों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

(क) धातु में पहले यङ् का य् जाड़ा जाता है, जैसे—नी + यङ् = नीय, भूय, नन्थ। नियम १६१ (३) में उल्लिखित किसी किसी धातु का

१ धातोरेकाचो हलादे क्रियासमभिहारे यङ् । ३ । १ । २३ । पौन पुन्य भृशार्थश्च क्रियासमभिहार । तस्मिन्चोत्थे यङ् स्यात् ।

भासन (चमकना)—शास्त्रे वदते (शास्त्र में चमकता है, अर्थात् इतना विद्वान् हे कि चमकता है), उपसम्भाषा (मेल मिलाप करना, शान्त करना)—भृत्यानुपवदते (नौकरों को समझा कर शान्त करता है), ज्ञान—शास्त्रे वदते (शास्त्र जानता है), यत्न—चेष्टे वदते (खेत में उद्योग करता है), विमति (झगड़ा)—परस्पर विवदन्ते स्मृतय (स्मृतियाँ परस्पर झगड़ा करती हैं), उपमन्त्रय (सुशामद करना)—दातार उपवदते (दाता की प्रशंसा करता है), अपपूर्वक निन्दा करने के अर्थ में—अपवदते—निन्दा करता है।

( द ) विश धातु के पूर्व यदि 'नि' अथवा 'अभिनि' उपसर्ग हो तो वङ् आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—निविशते, अभिनिविशते।

( ध ) श्रु धातु के पूर्व यदि 'सम्' उपसर्ग हो और अच्छी तरह सुनने का अर्थ हो तो यह आत्मनेपदी हो जाती है, सशृणुते (अच्छी तरह सुनता है), सशृणोति (सुनता है)। सन्नत श्रु आत्मनेपदी होती है (शुभ्रूपते) किन्तु 'आ' अथवा 'प्रति' के अनन्तर परस्मैपदी ही रहती है (आशुभ्रूपति प्रतिशुभ्रूपति)।

( न ) स्था धातु के पूर्व यदि सम्, अव, प्र और वि में से कोई

१ नेविश । १ । ३ । १७॥

२ अतिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् । वा० ।

३ समवप्रविम्य स्थ । १ । ३ । २४॥ आह प्रतिज्ञायामुपसख्यानम् । वा० ।

उद्देशपूर्वकर्मणि । १ । ३ । २४ ॥ उपादेयपूजासङ्गतिकरणमिन्नकरण पथिपिति वाच्यम् । वा० । वा क्षिप्तायाम् । वा० ।

विहित रूप यहाँ भी हो जाता है, जैसे—दा + यट् = दीय यच् + यट् = यथ्य ।

इस प्रकार से प्राप्त हुए यद्यन्त रूप का अभ्यास पृ० ३१६ पर तिसरे हुए नियमों के अनुसार किया जाता है, केवल अभ्यस्त अक्षर के अ का आ, इ अथवा ई का ण तथा उ अथवा ऊ का आ हो जाता है जैसे—प्रज् + गट्, = वप्रज्य = वाप्रज्य, दीय = ददीय, नेनीय, बोभूय ।

(ख) इस प्रकार बनी हुई धातु के आत्मनपठ में दत्ता लकारों में रूप चलते हैं । उदाहरणार्थ शुष् धातु के यद्यन्त रूप प्रथम पुरुष एकवचन में दिष्ट जाते हैं —

लकार	कर्तृधान्य	कर्मवान्य
लट्	बोधुष्यते	बोधुष्यते
लोट्	बोधुष्यताम्	बोधुष्यताम्
विधि	बाधुष्येत	बोधुष्येत
लङ्	अबोधुष्यत	अबोधुष्यत
लिट्	बाधाब्रूक	बोधाब्रूके
लुट्	अबोधुषिष्ट	अबोधुषि
लुट्	बाधुषिता	बोधुषिता
लृट्	बोधुषिष्यते	बोधुषिष्यत
आशी०	बोधुषिषोष्ट	बोधुषिषीष्ट
लृट्	अबोधुषिष्यत	अबोधुषिष्यत

मारा हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, मतिष्ठते, अतिष्ठते, प्रतिष्ठते  
 व वितिष्ठते । प्रतिज्ञा करनेके अर्थ में 'आह्' पूर्वक म्या धातु आत्म  
 दी होती है, शब्द नित्यम् आतिष्ठते ( शब्द नित्य है यह प्रतिज्ञा करना  
 ) । 'उद्' पूर्वक म्या धातु का यदि ऊपर उठना अर्थ है तो, तथा 'उप'  
 (कवचपूजा, मिलने, मित्र बनाने, सड़क के जाने तथा लिप्ता के अर्थों  
 आत्मनेपदी होती है ।

मुग्धानुत्तिष्ठते, किन्तु पोछानुत्तिष्ठति, आदिरामुपतिष्ठत (सूय रा  
 ता है), गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते (गङ्गा यमुना से मिलती है), रथिणानु  
 तेष्ठते (रथवालों से मित्रता करता है), पश्चा काशीमुपतिष्ठत,  
 पश्चा काशी को जाता है), भिक्षुः प्रभुमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा (भिक्षारी  
 भिक्ष के पास—लालच से—आता है) ।

## एकादश सोपान

### कृदन्त विचार

१७१-धातु में जिस प्रत्यय को जोड़ कर सज्ञा, विशेषण  
 बना अथवा प्रत्यय होता है, उसको कृन् प्रत्यय कहते हैं और इसके  
 पश्चा जो शब्द सिद्ध होता है उसको कृदन्त (जिसने अन्त में कृन्  
 ) कहते हैं, जैसे—कृधातु में कृन् प्रत्यय जोड़कर 'कर्तृ' शब्द बना ।

## नामधातु

१६७—जब किसी सुबन्त (सज्ञा आदि) के अनन्तर कोई प्रत्यय जोड़ कर उसे धातु बना लेते हैं तो उसे नामधातु कहते हैं। नाम सज्ञा को ही कहते हैं इसीलिए यह नाम पड़ा। नामधातुओं के विशेष २ अर्थ होते हैं, जैसे—पुत्रायति (पुत्र + वयच्)—पुत्र की इच्छा करता है। रुग्णति (रुग्ण + क्तिप्)—रुग्ण के समान आचरण करता है। लेहितायते (लेहित + स्यप्)—जाला हो जाता है। मृगयति (मृग + णिच्)—मूडता है। इत्यादि।

नामधातुओं के रूप सभी लकारों में चल सकते हैं, परन्तु बहुधा इनका प्रयोग वर्तमान काल में ही होता है।

नीचे नाम धातुओं के केवल दो मुख्य प्रत्यय दिए जाते हैं।

१६८—वयच् प्रत्यय।

(क) जिस वस्तु की इच्छा करे उस वस्तु के सूचक शब्द के अनन्तर वयच् प्रत्यय लगाया जाता है।

(ख) वयच् (य) जुड़ने के पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर में परिवर्तन हो जाता है, अ, आ का इ, इ का ई, उ का ऊ, ए का री, आ का अय् और औ का आव्। अन्तिम ट्, ज्, ण्, न् का लोप कर दिया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर का ऊपर लिखे नियम के अनुसार परिवर्तन हो जाता है। मकारान्त शब्द के अनन्तर तथा अव्यय के अनन्तर वयच् जुड़ता ही नहीं। उदाहरणार्थ—

१—मुप आत्मन वयच् । ३ । १ । ८ ॥

यहाँ कृत् प्रत्यय है और 'कर्तृ' कृदन्त है, यह सज्ञा है और इसके रूप अन्य सज्ञाओं की तरह विभक्तियों में चलेंगे।

कृत् और तिङ् प्रत्ययों में यह अन्तर है कि कृदन्त सज्ञा विशेषण अथवा अव्यय होते हैं—क्रिया नहीं, किन्तु तिङन्त सज्ञा क्रिया ही हाते हैं। कृन् और तिङित में यह अन्तर है कि तिङित सदा किसी तिङ् सज्ञा, विशेषण, अव्यय अथवा क्रिया के अनन्तर जोड़कर अन्य सज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया आदि बनाने के लिये होना है किन्तु कृत् धातु में ही जो ग जाता है।

जो कृदन्त सज्ञा अथवा विशेषण होते हैं उनके रूप चलते हैं, जो अव्यय होते हैं वे एकरूप रहते हैं, जैसे—गम् धातु से कृत् लगाकर गन्त बना, इसके रूप चलेंगे, किन्तु क्त्या लगाकर गत्वा बनने पर यह सर्वदा एकरूप रहेगा।

कोई कोई कृदन्त भी कभी कभी क्रिया का काम देता है, जैसे—स गत ( वह गया ) में 'गत' शब्द। वस्तुतः यह विशेषण है और इस धातु में क्रिया छिपी हुई है स गत ( अस्ति )।

कृन् प्रत्ययों के मुख्य तीन भेद हैं — कृत्य, कृन् और उणादि।

### कृत्य प्रत्यय

१७२—कृत्य प्रत्यय सात हैं—तयत्, तव्य अनीयर्, कैलिमर्

१ कृदतिङ् । २ । १ । ६३ ।

२ कृत्या । ३ । १ । ६४ ।





यत्, क्यप्, एयत् । ये प्रत्यय सदा भाववान्य और कमवान्य में ही प्रयुक्त होते हैं, कर्तृवाच्य में नहीं । अंगरेजी में जा काम पोटणल् पार्टि सिप्ल ( Potential Participle ) में लिया जाता है वही काम संस्कृत में कृत्य प्रत्ययान्त शब्द करते हैं । इनका सहाय्य के विशेषण स्वरूप भी प्रयोग में लाते हैं, जैसे—पक्त-या माया—जो उरद पकाने चाहिण वे ; कर्नव्य कर्म—यह काम जो करना चाहिण प्राप्त-या सम्पत्ति—यह संपत्ति जिसे प्राप्त करना चाहिए, गत-या नगरी—यह नगरी जहाँ जाना चाहिण, स्नानीय चूणम् दानीयो मिम इत्यादि इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि हिन्दी में जो अय, 'चाहिण' 'योग्य' द्वारा प्रकट किया जाता है वह संस्कृत में कृत्य प्रत्ययान्त शब्द द्वारा होता है । चाहिये वाला भाव कर्तृवाच्य में बहुधा विधि निरूपण से भी सूचित होता है, जैसे—राम सीता पुन गृहीयान्—राम को चाहिये कि सीता को फिर ग्रहण करें अथवा राम को योग्य है कि सीता को फिर ग्रहण करें । भृत्य स्वामिन सेवत—नौकर मालिक की सेवा करे, नौकर को मालिक की सेवा करनी चाहिये अथवा करनी योग्य है, इत्यादि । यदि इस प्रकार की मिथिलिङ् की क्रिया को कर्तृवाच्य से भाववान्य में पलटना हो तो कृत्यात् शब्द प्रयोग में लाना चाहिये, जैसे रामेण सीता पुनर्गृहीत-या, भृत्येन स्वामी सेवनीय आदि । ऊपर कह आये हैं कि उद्भूत क्रिया

१. पतरि कृत् । ३ । ४ । ६७ । तयोरेवकृत्यत्तसलर्या । ३।४ । ७० ।

२ कृत्यल्युटोपहूलम् । ३ । ३ । ११३।।

## १६९—क्यङ्

(क) किसी सुबन्त के अनन्तर 'जैसा वह करता है वैसा ही यह करना' इस अर्थ का बोध कराने के लिए क्यङ् ( य ) प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाते हैं ।

(ख) इसके रूप आत्मनेपद में चलते हैं । इस प्रत्यय के य के पूरा सुबन्त का अ दीर्घ कर दिया जाता है, दीर्घ आ वैसा ही रहता है और शेष स्वर जेमे क्यच् के पूरा ( १६८ ख ) बदलते हैं वैसे ही बदलते हैं । शब्द के अन्तिम स् का विकल्प से ( किन्तु ओजस् और अप्सरस् का नित्य ) लोप हो जाता है । उदाहरणार्थ—

कृण्व ह्याचरति = कृण्वायते—कृण्व के समान आचरण करता है । इसी प्रकार ओजायते—ओजस्वी के समान आचरण करता है, गदभी अप्सरायते—गदभी अप्सरा के समान आचरण करती है । यशायते अथवा यशस्यते—यशस्वी के समान आचरण करता है । विद्यायते अथवा विद्वस्यते—विद्वान् के समान आचरण करता है ।

(ग) स्त्री प्रत्ययान्त शब्द का ( यदि वह का में अन्त न होता हो ) स्त्री प्रत्यय गिरा दिया जाता है और शेष में क्यङ् जुड़ता है, जैसे—कुमारीव आचरति—कुमारायते, युवतीव आचरति—युवायते ।

## पदव्यवस्था

१७०—ऊपर नियम १४० ( घ ) में बताया चुके हैं कि संस्कृत भाषा में शतुर्ध्व दो पदों में रक्खी जाती हैं—परस्मैपद और आत्म

१ कर्तुं क्यङ् सलोपश्च । ३ । १ । ११ । ओजसोऽप्सरसो नित्य मितरेषा विभाषया । वा० ।

नहीं होते, इन प्रयोगों में भी ग्रहीतव्या और मेवनीय क्रिया नहीं हैं, किन्तु विशेषण। अंगरेजी में इनको प्रेडिकेटिव्, ऐड्जेक्टिव् ( Predicative adjective कहते हैं। कृत्यान्त शब्दों के रूप सज्ञाओं की तरह तीनों लिङ्गों में चलते हैं—पुलिङ्ग और नपुंसक में अकारान्त, और स्त्री लिङ्ग में आकारान्त।

१७३—तन्यत् ( तव्य ), तव्य, अनीयर् ( अनीय ) और केलिम् ( एलिम ) ये प्रायः सब धातुओं में लगाए जा सकते हैं। तन्यत् और तव्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है, तन्यत् के त् से केवल इतना सूचित होता है कि इस प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द 'स्वरित' होते हैं, इसी प्रकार 'अनीयर्' के र् से सूचित होता है कि अनीयर् में अन्त होने वाले शब्द मध्योदात्त होते हैं। किन्तु स्वर की वारीकियाँ केवल वैदिक सस्कृत में काम आती हैं भाषा की संस्कृत में नहीं, इस लिये तव्यत् और तन्य को बराबर ही समझना चाहिए और अनीयर् को 'अनीय'। केलिम् के क और र् का जोष हो जाता है और केवल 'एलिम' धातुओं में जोड़ा जाता है। यह प्रत्यय प्रायः कुछ सकर्मक धातुओं में ही जुड़ा हुआ प्रयोग में मिलता है।

इन प्रत्ययों के पूर्व धातु के अन्तिम स्वर ध्यवा यदि अन्तिम स्वर न हो तो उपधा वाले ह्रस्व स्वर का गुण हो जाता है और साधारण सन्धि के नियम लगते हैं। जो धातुर् सेट् होती है उनमें प्रत्यय और धातु के बीच में इ आ जाती है, जो अनिट् होती है उनमें

लभ्+यत् = लभ्+य = लभ्य

लभ्+यत् = लभ्+य = लभ्य

( यदि लभ् धातु के पूर आ उपसर्ग हो अथवा उप उपसर्ग हो (प्रशसा-  
नायक) तो बोध में लुम् ( लु=म् ) आ जाता है ) ।

इसके अतिरिक्त यत् प्रत्यय कुछ और व्यञ्जान्त धातुओं में लगता है  
जिनमें मुख्य ये हैं —

शम्—शस्य । यत्—यस्य । जन्—जन्य ।

हन्—वप्य ( यत् के पूर हन् का रूप वप् हो जाता है )

शक्—शक्य । सद्—सद्यः । चर्—चय । यम्—यम्य ।

१७५—क्यप् ( य ) कुछ धातुओं में ही लगता है, इसके पूर यदि  
धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उसके उपसर्ग, अर्थात् धातु और प्रत्यय  
बोध में व् आ जाती है, जैसे—स्तु+क्यप्=स्तु+व्+य=स्तुव्य । और  
इसके साथ गुण नहीं होता ।

जिन धातुओं में क्यप् लगता है उनमें ये मुख्य हैं —

१ ( जाना )+क्यप् = इत्य

१ आहोयि । उपाप्रशसायाम् । ७ । १ । ६५—६६ ।

२ तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्य । वा० । इनो वा यदधश्चरत्-  
। वा० । शकिमहोरच । ३ । १ । ६६ । गदमदचरयमश्चानुप  
। ३ । १ । १०० ।

३ एतिस्तुशास्वृदृष्टु क्यप् । ३ । १ । १०६ । सृजेर्विभाषा

को प्रजा । बाल रामनवमीमुपोषित — लटके ने रामनवमी को उपवास किया ।

नपुंसक लिङ्ग में कान्त शब्द कभी २ उस क्रिया से बताए हुए कार्य की भी सूचना देता है, अर्थात् वर्तमान (Verbal noun) की तरह प्रयोग में आता है । तस्य गत घर ( उसका चला जाना अच्छा है ) । यहाँ गत—गमन के अर्थ में आया है । इसी प्रकार पठित=पठन, सुप्त=स्वाप, इत्यादि ।

लिट् ( परोक्षभूत ) के अर्थ का बोध कराने के लिए दो कृत प्रत्यय वसु ( वस ) और कानच् ( आन ) हैं, कसु परस्मैपद की धातु के अनन्तर जाता जाता है, और कानच् आत्मनेपदी धातु के अनन्तर । इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्रायः वैदिक संहिता में ही मिलते हैं, किन्तु कभी कभी भाषा संहिता में भी प्रयोग में आते दिखाई पड़ते हैं ।

लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगाने के पूर्व धातु का जो रूप होता है ( जैसे गम् का लिट् अन्यपुरुष के बहुवचन में रूप हुआ अगम् इस में जग्म्—धातु का रूप हुआ—इसी प्रकार ' वदु से वद—इत्यादि ) उसमें ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं । यदि ऐसा धातु का रूप एकाक्षर हो अथवा अक्षर में आ हो तो धातु और प्रत्यय के बीच में इ हा जाती है, उदाहरणार्थ—

१ नपुंसके भावे क्त । ३ । ३ । ११ । ४ ।

२ लिट् काञ्चा । कसुश्च । ३ । २ । १०६—७ ।

जिगमिप् जिगमिष्टव्य जिगमिष्णीय  
 बुबोधिप् बुबोधिष्टव्य बुबोधिष्णीय इत्यादि ।

१७४-कृत्य प्रत्यय यत् (य) केवल ऐसी धातुओं में—जिनके अन्त में कोई स्वर हो अथवा ऐसी धातुओं में जिनके अन्त में पवर् का कोई वर्ण हो और उपधा में अकार हो—जोड़ा जाता है ।

यत् के पूर्व स्वर को गुण होता है यदि आ हो तो उसके स्थान पर पहले ई हो जाती है और फिर गुण ( ए ) होता है । यत् के पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ए, ऐ, ओ, अथवा औ, हो तो वह इ हो जाता है और फिर गुण होता है, जैसे —

दा + यत्	=	द + ई + य	=	द + ए + य	=	देय
धे + यत्	=	धी + य	=	धे + य	=	धेय
गी + यत्	=	गी + य	=	गे + य	=	गेय
छो + यत्	=	छी + य	=	छे + य	=	छेय
चि + यत्	=	चे + य	=		=	चेय
नी + यत्	=	ने + य	=		=	नेय
शप् + यत्	=	शप् + य	=		=	शप्य
जप् + यत्	=	जप् + य	=		=	जप्य
लप् + यत्	=	लप् + य	=		=	लप्य

१ अघो यत् । ३ । १ । ६७ । पोरदुपधात् । ३ । १ । ६८ ।

२ इद्यति । ३ । ४ । ६५ ।

	कसु	कानच्
गम्—	जग्मिषस्	
नी—	निनीवम्	निन्यान्
दा—	ददिषस्	ददान
वच्—	उचिषस्	उचान
कृ—	पकृवन्	चक्राण
दृश—	ददृशवस्	

इनके रूप तीनों लिङ्गों में अलग २ सञ्ज्ञाओं के समान चलते हैं। स जग्मिवान्—यह गया। त तस्थिवास नगरोपकण्ठे—नगर के निकट खड़े हुए उस को, श्रेयासि सर्वाण्यपि जग्मिवान्सवम्—तुम को सब अच्छी बातें प्राप्त हुई थीं।

### वर्तमानकाल के कृत् प्रत्यय

५८१—इनको अँगरेजी में प्रेजेंट पार्टिस्ल (Present Participle) कहते हैं। इस अर्थ का बोध कराने के लिए शत और शानच् (आन) मुख्य हैं। इन दोनों को संस्कृत वैयाकरण 'सत्' कहते हैं। सत् का अर्थ है 'विद्यमान' 'वर्तमान'। ये दोनों प्रत्यय किसी धातु में जुड़ कर उस धातु द्वारा सूचित वर्तमान काल की क्रिया का बोध विशेषण रूप से कराते हैं, जैसे स गच्छन्—चल जाता हुआ

१ लट् शतृशाचावप्रथमासमानाधिकरणे । ३ । २ । १२४ । तौ सत्

लम् + यत् = लभ + य = लभ्य

लम् + यत् = लम्भ + य = लम्भ्य

( यदि लम् धातु के पूर्व आ उपसर्ग हो अथवा उप उपसर्ग हो (प्रशस्त) तो बीच में लुम् ( लू=भू ) आ जाता है ) ।

इसके अतिरिक्त यत् प्रत्यय कुछ और यज्ञान्त धातुओं में लगता है  
जिनमें मुख्य ये हैं —

शल्—शस्य । यत्—यय । जन्—जन्य ।

हन्—वय ( यत् के पूर्व हन् का रूप वृ हो जाता है )

शक्—शक्य । सद्—मद् । चर्—चय । यम्—यय्य ।

१७५—क्यप् ( य ) कुछ धातुओं में ही लगता है, इसके पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उसके उपरान्त, अर्थात् धातु और प्रत्यय के बीच में त् आ जाती है, जैसे—स्तु + क्यप् = स्तु + त् + य = स्तुर्य । और इसके साथ गुण नहीं होता ।

जिन धातुओं में क्यप् लगता है उनमें ये मुख्य हैं —

इ ( जाना ) + क्यप् = इय

१ आहोयि । उपाध्मशस्तायाम् । ७ । १ । ६५ — ६ ।

२ तक्षिणसिचतियतिजमिभ्यो यद्वाच्य । वा० । हनो वा यद्भरपवत्-  
त्य । वा० । शक्तिसहोरच । ३ । १ । ६६ । यद्भरपवत्प्राप्त्युप-  
सर्गे । ३ । १ । १०० ।

३ पतिस्तुशाम्बुदक्षुष क्यप् । ३ । १ । १०१ । शृजेयिभाषा



(है) अर्थात् वह जा रहा है, स पठ् (अस्ति)—वह पढ़ रहा है। इन प्रयोगों से सूचित होता है कि क्रिया अभी जारी है। क्रिया के जारी रहने का ही अर्थ सत् प्रत्ययों में सूचित किया जाता है।

१८२—शतृ परस्मैपदी धातुओं के आत्तर तथा ज्ञानच् आत्मनेपदी धातुओं के अनन्तर जोड़ा जाता है। धातुओं का वर्तमान कालके अन्यपुरुष में बहुवचन में प्रत्यय लगाने के पूर्व जो रूप होता है (जैसे गच्छति—गच्छ। ददति—दद् आदि) उसी में सत् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यदि धातु के रूप के अन्त में अ हो तो शतृ (अत्) के पूर्व उसका लोप हो जाता है। यदि ज्ञानच् के पूर्व अकारात् धातुरूप आवे तो ज्ञानच् (आन) के स्थान पर 'मान' जुड़ता है, अन्यथा 'आन'। नीचे कुछ रूप उदाहरणार्थ दिए जाते हैं—

	परस्मै०	आत्मने०	कर्मबान्य
पठ्	पठत्	पठमान	पठ्यमान
कृ	कृर्वत्	कृर्वाण	क्रियमाण
गम्	गच्छत्		गम्यमान
नी	नयत्	नयमान	नीयमान
दा	ददत्	ददमान	दीयमान
चुर	चोरयत्	चोरयमाण	चोर्यमाण

स्तु	"	=	मृत्यु	
शास्	,	=	शिष्य	
वृ	,	=	वृष्य	
द	,	=	दश्य	
जुप्	,	=	जुष्य	
मृज्	"	=	मृज्य	विषय स
भृ	"	=	भृत्य (नाम)	"
कृ	,	=	कृत्य	"
वृप्	"	=	वृष्य	"

१७६-ऐसी धातुएँ जिनका अन्तिम वर्ण ऋकार अथवा व्यञ्जन हो उनके उपरान्त कृत्य प्रत्यय शयत् (य) लगता है। इसके पूर्व धातु के स्वर की वृद्धि हो जाती है। यदि उपधा में अकार हो तो उसकी (आ) वृद्धि हो जाती है और यदि कोई और स्वर हो तो बहुधा गुण को प्राप्त होता है। इसके पूर्व के च् और ज् के स्थान में क् और ग् यथाक्रम हो जाते हैं, किन्तु यदि धातु कवर्ग से आरम्भ होती हो (जैसे गर्ज्) तो यह परिवर्तन न होगा।

। ३ । १ । ११३ । भृजोऽसज्ञायाम् । ३ । १ । ११२ । विभाषा कृत्वा

। ३ । १ । १२० ।

१ अहलोपर्यत् । ३ । १ । १२४ ।

२ चजो कुक्षियतो । ७ । ३ । ५२ । नदादे । ७ । ३ । ५६ ।

पिपठिप् पिपठिपत् पिपठिपमाण पिपठिप्यमाण  
( सन्नन्त )

आस् 'शतु' के उपरान्त ज्ञानच् आने में ज्ञानच् के 'आन' को 'इन' हो जाता है, आस् + ज्ञानच् = आसीन ।

सत् में अन्त होने वाले जन्द्वा के रूप तीनों लिङ्गों में अलग-अलग चलते हैं ।

( क ) चानश् ( आन ) प्रत्यय परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों प्रकार की धातुओं में किसी की आदत्, उन्न अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिए जोड़ा जाता है, जैसे — भोग भुजान भोग भोगने की आदत् वाला । कञ्च विभ्राण — कञ्च धारण करने की अवस्था वाला ( अर्थात् तरुण ) । शत्रु निघ्नान — शत्रु को मारने वाला ( अर्थात् मारने की शक्ति रखने वाला ) ।

### भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय

१८३—भविष्यकाल के प्रत्यय जिनको अंगरेजी में फ्यूचर् पार्टिस्प्ल ( Future Participle ) कहते हैं सस्कृत में दो हैं—  
वही सत् प्रत्यय जो वर्तमान के हैं । अन्तर केवल इतना है कि यह

१ ईदास । ७ । २ । ८३ ।

२ ताच्छीत्यवयोवचनशक्तियु चानश् । ३ । २ । १२६ ।

३ लृट् सदा । ३ । ३ । १४ ।

यत् का विचार करते समय कह आया है कि स्वरान्त धातुओं के अनन्तर यन् लगता है, किन्तु यहाँ ऋकारान्त धातुओं के उपरांत ययन् लगता है ऐसा नियम रखा गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ऋकारान्त धातुओं को ऋइ कर अन्य स्वरान्त धातुओं में यत् लगता है ऋकारान्त में ययन्। उसी प्रकार उा ययनात् धातुओं को ऋइ कर जिनमें यन् और ययप् लगता है, वे भी ययन् लगता है। उदाहरणार्थ —

कृ+ययन्=कृ+आर् ( वृद्धि )+य=काय

पठ्+ययत्=पृ+आ+ठ्+य=पाठ्य ( उपधा के अ की वृद्धि )

धृप्+ययत्=धृ+अर्+प्+य=धार्य ( उपधा के ञ की गुण )

पच्+ययत्=प्+आ+क्+य=पान्य ( उपधा के अ की वृद्धि और च् के क् )

मृज्+ययन्=मृ+आर्+ग्+य=माग्य ( उपधा के अ की वृद्धि, और ज् के ग् )

धृ, ज्ञ, का क्, गृहो जाने वाला नियम यञ्, याच्, धृच्, यञ्, त्यञ् धातुओं में नहीं लगता—याज्य, याच्य, रोय, प्रवाज्य, याज्य । भुज् के दोनों रूप जाते हैं—भोग्य ( भोग करने योग्य ) और भोज्य ( खाने योग्य ), पच् के दोनों—पाच्य ( अन्न पकाने योग्य ) और पाक्य, कच् के भी वाच्य—( कहने योग्य ) और वाक्य, दो रूप होते हैं ।

भविष्य (लट्) के अन्यपुरुष के बहुवचन में जो धातुरूप होता है उसके अनन्तर जोड़े जाते हैं, जैसे—भविष्यन्ति के भविष्य्—में अत् और मान जोड़कर भविष्यत् और भविष्यमाण रूप बनते हैं। इसी कारण भविष्यकाल के इन प्रत्यया को कभी कभी प्यत् और प्यमाण भी कहते हैं। उदाहरणार्थ कुछ रूप देते हैं—

	परस्मे०	आत्मने०	कर्मण्यन्य
पठ्	पठिष्यत्	पठिष्यमाण	पठिष्यमाण
कृ	करिष्यत्	करिष्यमाण	करिष्यमाण
गम्	गमिष्यत्	गमिष्यमाण	गमिष्यमाण
नी	नेष्यत्	नेष्यमाण	नेष्यमाण
दा	दास्यत्	दास्यमाण	दास्यमाण
चुर्	चोरयिष्यत्	चोरयिष्यमाण	चोरयिष्यमाण
पिपठिष्	पिपठिष्यन्	पिपठिष्यमाण	पिपठिष्यमाण

इन प्रत्ययो में अन्त होने वाले शब्दों के रूप भी तीनों लिङ्गों में अलग-अलग अर्थों के समान चलते हैं।

### तुमुन् प्रत्यय

१८४—जब कोई दूसरी क्रिया करने के लिए कोई क्रिया करता है तब जिम्मा क्रिया के लिए क्रिया की जाती है उस की धातु में तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगना है, जैसे—कृष्ण द्रष्टुं याति—कृष्ण को

उकारान्त अथवा उकारान्त धातुओं के अनन्तर भी ययत् प्रत्यय लगता है यदि आवश्यकता का बोध कराना हो तो, जैसे—

श्रू + ययत् = श्राव्य ( अवश्य सुनने योग्य )

पू + ययत् = पाव्य ( अवश्य पवित्र करने योग्य )

यु + ययत् = याव्य ( अवश्य मिलाने योग्य )

लू + ययत् = लाव्य ( अवश्य काटने योग्य )

१७७—ऊपर कह आए हैं कि कृत्य प्रत्ययान्त शब्द भाववाच्य और कर्म वाच्य में ही प्रयोग में आते हैं किन्तु थोड़े से ऐसे शब्द हैं जो कृत्यान्त होते हुए भी कर्तृवाच्य में भी प्रयुक्त होते हैं। वे ये हैं —

वस् + तव्य = वास्तव्य ( बसने वाला )—इस अर्थ में लिच् भी हो जाता है जिसके कारण वृद्धि रूप वास् हो गया।

भू + यत् = भव्य ( होने वाला )

गे + यत् = गेय ( गाने वाला )

प्रवच् + यनीयर् = प्रवचनीय ( व्याख्यान करने वाला )

उपस्था + यनीयर् = उपस्थानीय ( निकट खड़ा होने वाला )

जन् + यत् = जन्य ( पैदा करने वाला )

प्लु + ययत् = प्लाव्य ( पैरने वाला )

आपत् + ययत् = आपात्य ( गिरने वाला )

१ ओरावश्यके । ३ । १ । १२५ ।

२ वसेस्तव्यकर्तरि लिच्च् । वा० । भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्या प्लाव्यापात्या वा । ३ । ४ । ६८ ।

देखने के लिए जाता है। इस वाक्य में दो क्रियाएँ हैं—देखना और जाना। जाने की क्रिया देखने की क्रिया के निमित्त होती है। जाने का प्रयोजन देखना है, इसलिए दृश में तुमुन् (तुम्) जोड़ कर द्रष्टृ बनाया गया। तुमुनन्त क्रिया जिस क्रिया के साथ आती है उसकी अपेक्षा तुमुनन्त क्रिया सदा बाद की होती है, जैसे ऊपर के उदाहरण में देखने की क्रिया जाने की क्रिया के बाद ही सम्भव है। इसी प्रकार 'कृष्ण द्रष्टुमगमत्' इस वाक्य में जाने की क्रिया की समाप्ति के उपरान्त ही देखने की क्रिया हो सकती है, इसीलिए तुमुनन्त क्रिया दूसरी क्रिया की अपेक्षा भविष्य में होती है।

तुमुनन्त क्रिया के अर्थ का बोध अंगरेजी में जेरण्डियल् इन्फिनिटिव् (Gerundial Infinitive) से होता है, जैसे—He goes to see Krishna वाक्य में to see का अर्थ है 'देखने के लिए'। किन्तु अंगरेजी में इन्फिनिटिव् सज्ञा की तरह भी प्रयोग में आता है और तब उसको नाउन् इन्फिनिटिव् या सिम्ल इन्फिनिटिव् कहते हैं। संस्कृत की तुमुनन्त क्रिया नाउन् इन्फिनिटिव् की तरह कभी भी प्रयोग में नहीं आती इतना ध्यान रखना आवश्यक है, जैसे To go to see Krishna is bad—कृष्ण को देखने के लिए जाना बुरा है। इस वाक्य में तीन क्रियाएँ हैं—देखना, जाना, है। इन में से दो के लिए अंगरेजी में इन्फिनिटिव् प्रयोग में आया है, एक का अर्थ है 'जाना' दूसरे का 'देखने के लिए'। इनमें से 'देखने के लिए' इस अर्थ के लिए संस्कृत में तुमुनन्त क्रिया आवेगी 'जाना' के वास्ते कोई सज्ञा। संस्कृत अनुवाद यह होगा—कृष्ण

### कृत् प्रत्यय

१७८—यद्यपि कृत् से कृत्य, कृत् और उणादि तीनों प्रकार के प्रत्ययों का बोध होता है तथापि कृत्य और उणादि के अलग होने के कारण, जोय कृत् प्रत्ययों को ही भेद प्रकट करने के लिए कभी-कभी कृत् कहते हैं। इन कृत् प्रत्ययों में कुछ ऐसे हैं जिनके रूप चलते हैं, कुछ के नहीं। जिनके रूप नहीं चलते उनके विषय में ऐसा स्पष्ट उल्लेख कर दिया जायगा, जोय के रूप चलते हैं ऐसा समझना चाहिए।

### भूतकाल के कृत् प्रत्यय

१७९—भूतकाल के कृत् प्रत्ययों को अंगरेजी में पास्ट पार्टिस्प्ल (Past Participle) कहते हैं। इस अर्थ में प्रधान दो प्रत्यय हैं—क (त) और कथतु (तथत्), इन दोनों प्रत्ययों को "निष्ठा" कहते हैं। निष्ठा शब्द का यौगिक अर्थ है 'समाप्ति', क और कथतु किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराते हैं इसीलिए इनको निष्ठा (समाप्ति) कहते हैं, जैसे—'तेन भुक्तम्'—यहाँ भुज् गतु में क प्रत्यय लगाने से यह तात्पर्य निकला कि भोजन का कार्य समाप्त हो गया। सोऽपराध कृतवान्—यहाँ कथतु प्रत्यय से यह निश्चय हुआ कि उसने अपराध कर डाला—करने का कार्य समाप्त हो गया। सारांश यह कि क और कथतु समाप्तिप्रोधक



पटु गमन वरत्नास्ति । इस वाक्य में 'द्रष्टु' तुमुन्त किया है और 'गमन' सज्ञा । इस प्रकार नाउन इन्फिनिटिव् की तरह, ससृजत के तुमुन्त शब्द को प्रयोग में नहीं ला सकते । ला सकते हैं तो केवल तेरपिडयल् इन्फिनिटिव् की तरह ।

(क) जिस क्रिया के साथ तुमुन्त शब्द आता है उस क्रिया का तथा तुमुन्त क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए, मित्रता होने से तुमुन्त शब्द प्रयोग में नहीं लाया जा सकता, जैसे राम पठितु विद्यालय गच्छति । यहाँ 'पठितु' और 'गच्छति' दोनों का कर्ता राम ही है, यदि दोनों का कर्ता अलग अलग होता तो तुमुन्त शब्द प्रयोग में न आता ।

(ख) कालवाची शब्दों (काल, समय, बेला) के साथ एक कर्ता होने पर भी तुमुन्त शब्द प्रयोग में आता है, जैसे—गतुम् कालोऽयमस्ति । जाने के लिए समय है । यहाँ दो शब्द क्रियावाचक हैं 'है' और 'जाने के लिए' । 'है' का कर्ता है 'काल' और 'जाने के लिए' का कर्ता कोई और, किन्तु यहाँ तब भी तुमुन्त शब्द का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार, भोक्तु बेला, अभ्येतु समय, द्रष्टु काल इत्यादि प्रयोग होते हैं ।

तुमुन्त शब्द अव्यय होता है इसके रूप नहीं चलते ।

१ समानकर्तृकेषु तुमुन् । ३ । ३ । १२८ ।

२ कालसमयबेलामु तुमुन् । ३ । ३ । १६० ।

३ मान्तत्वादव्ययत्वम् । सि० फौ० ।

प्रत्यय हैं। ये दोनों प्रत्यय प्रायः सभी धातुओं के अनन्तर भूत काल अथवा समाप्ति का अर्थ बताने के लिए लगाए जाते हैं। इन में के क् और उ का लोप हो जाता है और त तथा तवत् शेष रह जाते हैं। इनके रूप तीनों लिङ्गों में और सातों विभक्तियों में विशेष्य के अनुसार होते हैं। यदि विशेष्य पुलिङ्ग हुआ तो पुलिङ्ग, स्त्री० तो स्त्री० और नपुंसक० तो नपुंसक०। क प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में अकारान्त, और स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त होते हैं। कवत् में प्रत्यय होने वाले शब्द पुलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में नकारान्त ( श्रीमत् के समान ) और स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त ( नदी के समान ) होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे कुछ धातुओं के कान्त और कवत् रूप तीनों लिङ्गों में प्रथमा के एक वचन में दिए जाते हैं।

## कप्रत्ययान्त

पु०	न०	स्त्री०
पठ् — पठित	पठित	पठिता
स्ना — स्नात	स्नात	स्नाता
पा — पात	पात	पाता
भू — भूत	भूत	भूता
कृ — कृत	कृत	कृता
त्यज् — त्यक्त	त्यक्त	त्यक्ता
तृप् — तृप्त	तृप्त	तृप्ता
शक् — शक्त	शक्त	शक्ता
सिच् — सिक्त	सिक्त	सिक्ता

## पूर्वकालिक क्रिया

१८५—जब किसी क्रिया के हो जाने पर दूसरी क्रिया आरम्भ होती है तब होगई हुई क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। हिन्दी में इसका बोध 'कर' अथवा 'करके' लगा कर होता है; जैसे राम ने रावण को मारकर विभीषण को राज्य दिया—(राम रावण हत्वा विभीषणाय राज्य ददौ) इस वाक्य में राज्य देने की क्रिया रावण के मारे जाने पर होती है, इसलिए 'मारा जाना' पूर्व कालिक क्रिया होगी। पूर्वकालिक क्रिया का और उसके साथ घाली क्रिया का कर्ता एक होना चाहिए। ऊपर के वाक्य में 'ददौ' और 'हत्वा' दोनों का कर्ता 'राम' है। भिन्न कर्ता होने से पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग नहीं हो सकता, जैसे—'लक्ष्मण मेघनाद हत्वा, राम विभीषणाय राज्य ददौ'—'लक्ष्मण ने मेघनाद को मार कर, राम ने विभीषण को राज्य दिया' यह वाक्य अशुद्ध है क्योंकि मारने की क्रिया का कर्ता लक्ष्मण, देने की क्रिया के कर्ता राम से भिन्न है।

पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए मस्रुत में दो प्रत्यय हैं—कृत्वा (त्वा) और ल्यप् (य)। ल्यप् प्रत्यय केवल ऐसी धातुओं के उपरान्त जोड़ा जाता है जिनके पूर्व में कोई उपसर्ग

१ समानकर्तृकयो पूर्वकाले । ३ । ४ । २१ ।

२ समामेऽनन्पूर्वे क्तवो ल्यप् । ७ । १ । ३७ ।

को पूजा । बाल रामनवमीमुपोषित — लटके ने रामनवमी को उपवास किया ।

नपुंसक लिङ्ग में कान्त् शब्द कभी २ उस क्रिया में बताए हुए कार्य की भी सूचना देता है, अर्थात् वर्णलनाउन (Verbal noun) की तरह प्रयोग में आता है । तस्य गत वर ( उसका चला जाना अच्छा है ) । यहाँ गत—गमन के अर्थ में आया है । इसी प्रकार पठित=पठन, सुप्त=स्वाप, इत्यादि ।

लिट् ( परोक्षभूत ) के अर्थ का बोध कराने के लिए दो कृत प्रत्यय लु ( घम ) और कानच् ( धान ) हैं, वसु परस्मैपद की धातु के अनन्तर गादा जाता है, और कानच् आत्मनेपदी धातु के अनन्तर । इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्रायः वैदिक संहिता में ही मिलते हैं, किन्तु कभी कभी भाषा संहिता में भी प्रयोग में आते दिग्गड पवते हैं ।

लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगने के पूर धातु का जो रूप होता है ( जैसे गम् का लिट् अन्यपुरुष के बहुवचन में रूप हुआ वसु इस में जग्म्—धातु का रूप हुआ—इसी प्रकार ' वदु से वद्—[प्यादि] वरमें ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं यदि ऐसा धातु का रूप एकाक्षर हो अथवा अन्त में आ हो तो धातु और प्रत्यय के बीच में इ हो जाती है, उदाहरणार्थ —

१ नपुंसके भावे क्त । ३ । ३ । ११ । ४ ।

२ लिट् कानज्वा । वसुश्च । ३ । २ । १०६—७ ।

हो अथवा उपसर्ग स्थानीय हो । जोष धातुओं के उपरान्त स्या  
लगता है । उदाहरणार्थ —

गम्	+	स्या	=	गत्वा, किन्तु
अगम्	+	ल्यप्	=	अवगत्य अवगत्वा नहीं ।
पठ्	+	स्या	=	पठित्वा, किन्तु
प्रपठ्	+	ल्यप्	=	प्रपठ्य प्रपठित्वा नहा ।

पूर्वकालिक क्रिया के रूप नहीं चलते । वह अव्यय है ।

✓(क) स्या का त्वा प्रायः धातु म नेसा का नेसा जोड़ा जाता है, जैसे—स्ना—स्नात्वा, ज्ञा—ज्ञात्वा नी—नीत्वा भू—भूत्वा रु—  
रुत्वा, धृ—धृत्वा, ऐसी नकारान्त धातुएँ जिनमें नेट् वेट् की इ  
नहीं जुड़ती न् का लोप करके जोड़ी जाती हैं हन्—हत्वा, मन्—  
मत्वा, किन्तु जन्—जनित्वा, रान्—रानित्वा । त्वा का प्रथम  
अक्षर यदि य, र, ल, व हो तो वहुधा कम से इ, स, ल, उ, हा  
जाता है, यज्—यत्वा=यष्टा, प्रन्द्—पृष्टा, वप्—उप्ता । यदि  
धातु और प्रत्यय के बीच में इ आजाये तो पूर्व का स्वर गुण रूप  
धारण करता है, जैसे—शी+ स्या=श+ए+इ+त्वा=शे+  
इ+त्वा=शयित्वा, जागरित्वा आदि ।

त्यप् के पूर्व यदि स्वर ह्रस्व हो तो वहुधा 'य' न जुड़कर 'त्य'  
जुड़ता है, जैसे—आदाय, विनीय, अनुभूय, किन्तु निश्चय,  
प्रपठ्य, विजित्य । वहुधा नकारान्त धातुओं के न् का लोप करके  
य जोड़ा जाता है, अवमत्य, प्रहृत्य, पितत्य, किन्तु प्रपय । गम्,

जाता है जैसे—शृ से शीर्ण, शीर्णवत् जृ से जीर्ण, जीर्णवत्, छिद् से छिन्न, छिन्नवत्, भिद् से भिन्न, भिन्नवत् ।

सयुक्ताक्षर से आरम्भ होने वाली और आकार में अन्त होने वाली तथा कहीं न कहीं य्, र्, ल्, व् में से कोई अक्षर रखने वाली धातु की निष्ठा के त को भी न हो जाता है, जैसे—ग्लान ग्लान, स्यान्, गान्, ध्यान् । किन्तु कुछ में नहीं भी होता—ख्यात्, ध्यात् आदि ।

१८०—कधत् प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द सदा कर्तृवाच्य में प्रयोग में आते हैं, अर्थात् कर्ता ( Agent ) के विशेषण होते हैं । स भुक्तवान्, भुक्तवत्सु तेषु इत्यादि । क प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में प्रयुक्त होता है, अर्थात् कर्म ( Object ) का विशेषण होता है, तेन भुक्तम्, रामेण सीता त्यक्ता, तेन गतम् दत्तधन—दिया हुआ धन । परन्तु गत्यर्थक धातुओं में तथा अकर्मक धातुओं में का क कर्तृवाच्य के अर्थ में भी प्रयोग में आता है, जैसे स गतः, चलित । श्लिप्, शो, स्था, आम्, वम् धातुओं के कान्त शब्द भी कर्तृवाच्य का बोध कराते हैं—लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः = हरि ने लक्ष्मी का आलिङ्गन किया, हरि जेपमधिगयित —हरि जेप (नाग) पर सोये । हरि वैजुगठमधिष्ठित । शिवमुपासित । ( हरि ने ) शिव

१ सयोगादेरातोधातोर्येवत् । ८ । २ । ४३ ।

२ कतरि कृत् । ३ । ४ । ६७ । तयोरेकृत्यक्तचलयां । ३ । ४ । ७० ।

गत्यर्थकर्मकश्लिपशीट् स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च । ३ । ४ । ७२ ।

नम्, यम्, रम्, के म् रहने पर अवगम्य आदि और लोप होने पर अवगम्य आदि दो दो रूप होते हैं।

शिजन्त और चुरादिगण की धातुओं की उपधा में यदि ह्रस्वस्वर जेमे प्रणम्-( शिजन्त ) हो तो उनमें त्यप् के पूर्व अय् जो न जाता है अन्यथा नहीं, यथा—प्रणम्+अय्+त्यप् ( य ) =प्रणमय्य, किन्तु चोर्+य=चोय्य ( चोरय्य नहीं होता )।

( र ) पूर्वकालिक क्रिया ( क्तान्त तथा ल्यबन्त ) जब अलम् शब्द और खलु शब्द के साथ आती है तब पूर्वकाल का बोध न कराकर प्रतिषेध (मना करने) का भाव सूचित करती है जैसे—अल कृत्वा—धम, मत करो; पीत्वा खलु—मत पियो, विजित्य खलु—धस न जीतो, अवमत्यालम्—बस अपमान न करो।

## णमुल् प्रत्यय

१८६—जब किसी क्रिया को बार बार करने का भाव सूचित करना हो तो क्त्वाप्रत्ययान्त शब्द अथवा णमुल्प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग होता है, और यह शब्द दो बार रखा जाता है, जैसे—यह बार

१ ल्यपि लघुपूर्वात् । ६ । ४ । २६ ।

२ अलपरलो प्रतिषेधयो प्राचा क्त्वा । ३ । ४ । १८ ।

३ आभीरण्ये णमुल् च । ३ । ४ । २२ ।

४ नित्यवीप्सयो । ८ । १ । ४ ।

वार याद करके शिघ्र को प्रणाम करता है यहाँ याद करने की क्रिया वार वार होती है, इस लिए सस्त्वन्त में कहेंगे स स्मार स्मार प्रणामति शिवम्, अथवा स स्मृत्वा स्मृत्वा प्रणामति शिवम् । याद करने की क्रिया प्रणाम करने की क्रिया से पूर्व होती है । इसी प्रकार —

पी पी कर अर्थात् चार चार-पाय पाय अथवा पीत्वा पीत्वा—पा  
खा खाकर       "       " भोज भोज   भुक्त्वा भुक्त्वा—भुज्  
जा जाकर       "       " गम गम   गत्वा गत्वा—गम्  
जग जगकर     "       " जागर जागर जागरित्वा जागरित्वा—जागृ  
पा पाकर       "       " लाभ लाभ   लब्ध्वा लब्ध्वा—लभ्  
सुन सुनकर     "       " श्राव श्राव   श्रुत्वा श्रुत्वा—श्र

शमुल् प्रत्यय का 'अम्' धातु म जोना जाता है, यदि इसके पूर्व धातु का—आ आवे तो गीच में य् और आजाता है, जैसे—  
श+अम्=दाय दाय, पाय पाय, स्नाय स्नाय, प्रत्यय में ए होने के कारण पूर्व स्वर की वृद्धि भी होती है—जैसे स्मृ अम्=स्मा  
म्, श्रू+अम्=श्रो+अम्=श्राव्+अम्=श्रावम् इत्यादि । शमु  
वृद्धन्त शब्द के रूप नहीं चलते । यह अयय है ।

यदुत से स्थलों में शमुल् से वार वार क्रिया होने का बोध नहा भा  
से होता है, ऐसे स्थलों में शमुलन्त शब्द दो वार नहीं रक्खा जाता, जैसे—  
न्याशं वरयति—जिस वन्या को देखता है उसी में न्याह कर लेता है ।



( घ ) चलना, शब्द करना, अथवाली अकर्मक धातुओं के अनन्तर तथा क्रोध करना, आभूषित करना इन अर्थों वाली धातुओं के अनन्तर शील आदि अर्थ में युच् ( अन ) प्रत्यय लगना है । चलितु शीलमस्य स चलन ( चल + युच् ), कम्पन , शब्द कर्तुं शीलमस्य म शब्दन । खग पठिता निधाम् यहाँ सकर्मक धातु होने के कारण युच् न लगकर साधारण लृन् लगा ) क्रोधन , रोपण , मण्डन , भूषण । ये सब मनुष्यवाचक शब्द हैं ।

( ङ ) जरप्, भिच् कुट्ट् ( अलग करना काटना, ) लुण्ट् ( लूटना ) और वृ ( चाहना ) इनके अनन्तर शील, धम और साधुकारिताद्येतक पाकन् ( आक ) प्रत्यय लगता है । जरपाक ( बहुत खोलने वाला ) भिष्पाक ( मिलारी ), कुट्टाक ( काटने वाला ), लुण्टाक ( लूटने वाला ), वृपाक ( बेचारा ) ।

( च ) स्पृह् गृह्, पठ्, हप्, शी धातुओं के अनन्तर तथा निद्रा, दा, श्रद्धा के अनन्तर आलुच् ( आलु ) जोड़ा जाता है—स्पृह्यालु, गृह्यालु, पठ्यालु, दयालु शयालु, निद्रालु, तन्द्रालु, धदालु ।

१ चलनशब्दायादकर्मकाद्युच् । १ । २ । १४८ । क्रुधमण्डनार्थेभ्यश्च । १ । २ । १४९ ।

२ जरपभिष्कुट्टलुण्टकृष् पाकन् । ३ । २ । १५५ ।

३ स्पृह्गृह्पठिद्विनिद्रातन्द्राद्यद्वाम्य आलुच् । ३ । २ । १५८ ।

येही वाच्य । पा० ।

यहाँ सभी कन्याओं से ब्याह कर लेता है यह अर्थ है। अन्यथा, एव, कथ, इत्य शब्द जब कृ धातु के पूर्व आने और कृ धातु का अर्थ वाक्य में आवे तो भी यमुल् का प्रयोग होता है, जैसे अन्यथाकार म्रूते—वह दूसरा ही तरह बोलता है, यहाँ कृ का कुछ अर्थ न निकला, यह बेकार है। इसी प्रकार एवङ्कार—इस तरह, कथङ्कार—किसी तरह, इत्यङ्कार—इस तरह।

यमुलन्त शब्द प्रायः समास के अन्त में आने पर बार बार के भाव को नहीं सूचित करता, जैसे—सा यन्दिमाह गृहीता—वह कैदी करके पकड़ ली गई, अर्थात् क्रोध कर ली गई, समूलधातमग्रन्त पराजोयन्ति मानिन—मानि पुरुष शत्रुओं को जड़ से उखाड़े बिना उन्नति नहीं करते।

### १८७-कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

(क) किसी भी धातु के अनन्तर यमुल् (यु=अक) और तृच् (तृ) प्रत्यय धातु से सूचित कार्य के करने वाले (Agent) के अर्थ में लगाए जाते हैं। जैसे—कृ धातु से सूचित अर्थ हुआ 'करना' अब 'करने वाला' यह भाव प्रकट करने के लिए कृ + यमुल् = कृ + अक = 'कारक' शब्द हुआ और कृ + तृच् = कृ + तृ = कर्त् शब्द हुआ। कारक, कर्त् = करनेवाला, इसी प्रकार पठ् से पाठक, पठितृ, दा से दायक, दातृ, पच से पाचक, पचितृ, ह से

१ अन्ययेवङ्कथमिथसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् । ३ । ४ । २७ ।

२ यमुल्लृचौ । ३ । १ । १३६ । तुमुन्त्यमुलौ क्रियाया क्रियार्थायां

। ३ । ६ । १० ।

( द् ) सन्त ( इच्छावाची ) धातुओं तथा आशस् और भिच् के अनन्तर उ प्रत्यय लगता है, जैसे—कर्तुमिच्छति चिकीर्षुः, आशसु, भिषु ।

( ज ) भ्राज्, भास्, धुर्, विद्युत्, ऊर्ज्, पृ ज्ञ, प्रावस्तु—इन धातुओं के अनन्तर तथा औरों के भी अनन्तर क्तिप् प्रत्यय होता है, जैसे—विभ्राट्, भा, धू, विद्युत् ऊर्कं, पू, ज्ञ, प्रावस्तुत्, छित्, भित्, श्री, धी, प्रतिमू इत्यादि ।

### भावार्थ कृत् प्रत्यय

( क ) भाव का अर्थ जतलाने के लिए धातु के अनन्तर घञ् ( अ ) प्रत्यय जोड़ा जाता है । जब कोई बात सिद्ध हो जाय, पूरी हो जाय तब भाव कहलाता है, जैसे—पाक —पकजाना ( पक् + घञ् ) । लाभ, काम ।

[ यदि कोई ज अथवा ण धाला प्रत्यय लगाना हो तो धातु की उपधा का अ पृष्ठ हो जाता है । घ धाले तथा ण्य धाले प्रत्यय के पूर्व च् ज् का क् ग् हो जाना है ]

१ सनाशसमिच्छ उ । ३ । २ । १६८ ।

२ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृज्ञप्रावस्तुव क्तिप् । ३।२।१७७।अन्येभ्योऽपि दृश्यते । ३ । २ । १७८ ।

३ भावे । ३ । ३ । १८ ।

४ अत उपधाया । ७ । २ । ११५ ।

५ घञो कुंघण्यतो । ७ । ३ । २२ ।

हारक, हर्तृ, इत्यादि । गुण के पूर्व धातु में वृद्धि तथा तृच् के पूर्व धातु में गुण भाग होता है, यह ऊपर के उदाहरणों में स्पष्ट है ।

नोट—गुण प्रत्यय तुमुन् ( १८४ ) की तरह क्रियाय भी प्रयोग में आता है, जैसे—कृष्ण दर्शको याति—दृष्ट्वा के नेपथे ये लिप जाता है ।

( छ ) नन्दि आदि ( नन्दि, वागि, मन्दि, दूप्, ग्राधि वर्धि, शोभि, ग्राधि इनके णिजन्त रूप से ) धातुओं के अनन्तर ल्यु ( जन ), ग्रहि आदि ( ग्राही, उग्राही, स्थायी, मन्त्री अध्याची, अवाली, विपयी अपराधी—ये इस प्रकार बने मुख्य शब्द हैं ) के अनन्तर णिनि ( इन् ) तथा पच् आदि ( पच, वच घट, चल, पत, जर मर, चम सेव, वण, दर्श, मप आदि मुख्य शब्द इस शब्द के हैं ) धातुओं के अनन्तर अच् ( अ ) लगाकर कर्तृ-बोधक शब्द बनाए जाते हैं, जैसे—नन्द् + ल्यु = नन्दन ( नन्दयतीति नन्दनः ) इसी प्रकार वाशन, मदना, दूषण, साधन, वर्धना, शोभना, रोचन । गृह्णातीति ग्राही ( ग्रह + इन् = ग्राहिन् ) पच् + अच् ( अ ) = पच ( पच-ताति पच ) ।

( ग ) ऐसी धातुओं जिनकी उपधा में इ, उ, ऋ, लृ में स कोई स्वर हो उनके अनन्तर तथा आ ( जानना ), प्री ( प्रमत्त करना ) और कृ ( कसेरना ) के अनन्तर कर्तृधाचक क ( अ ) प्रत्यय लगता है, जैसे—चिप् + क = चिप ( चिपतीति चिप —फँकेवाला ), इसी प्रकार

१ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच । ३ । १ । १३४ ।

२ इगुपधनाभीन्नि क । ३ । १ । १३५ ।

( ख ) इकारान्त धातुओं में अच् (अ) जोड़ा जाता है जैसे—  
जे + अच् = जय, चय, नय, भि + अच् = भयम् ।

( ग ) झृकारान्त और उकारान्त धातुओं में अप् लगता है, जैसे  
क + अच् = कर, —खखेरना । गर —विप । शर । यु + अप् = यव —  
गड़ना । लघ —फाटना । स्तव । पव —पवित्र करना । इसकी अति-  
रेक ग्रह, वृ, दृ, निश्चि, गम्, घश, रण में भी अप् लगता है, ग्रह,  
र, दर, निश्चय, गम, घश, रण ।

( घ ) यज्, याच्, यत्, विच्च् ( चमक्ता ) प्रच्छ्, रच् इनमें  
भावार्थक नञ् ( न ) प्रत्यय लगता है, यज्ञ याज्ञा, यान, विरन,  
रन, रण्य ।

उपसर्गसहित घुसज्जक धातुओं ( दा, दो—सहन करना, दे—  
स्पर्श करना, रदा करना, घा—घारण करना, धे—पीना ) के अनन्तर  
भावार्थ कि ( इ ) होता है । प्रधि (प्रधा + कि—आतो लोप इटि च । ६ ।  
। ६५ । से आकार का लोप हुआ ), अन्तर्धि । अधिक्रयवाचक

१ परच् । ३ । ३ । २६ ।

२ अदोरप् । ३ । ३ । २७ ।

३ ग्रहवृद्धनिश्चिगमरच । ३ । ३ । २८ । वशिरणयोरुपसर्गानम् । वा० ।

४ यनयाचयतविच्छ्प्रच्छ्प्रच्छो नट् । ३ । ३ । ६० ।

५ उपसर्गे धो कि । कर्मण्यधिकरणे च । ३ । ३ । ६२-६३ ।

० व्या० प्र०—३४

लिख ( लिखनेवाले ), चुघ ( समझनेवाला ), क्रश ( दुबला ), ज ( जाननेवाला ), प्रिय ( प्रसन्न करनेवाला ), किर ( बखेरनेवाला ) ।

आकारान्त धातु के ( तथा ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होनेवाली जो धातु आकारान्त हो जाती है उसके ) पूर्व यदि उपसर्ग हो तब भी 'क' प्रत्यय लगता है, जैसे—प्रजानातीति प्रज ( प्रजा + क ), आह्वयतीति आह्व ( आह्वे + क ) ।

( घ ) यदि कर्म के योग में धातु आवे तो कर्तृवाचक अण् ( अ ) प्रत्यय होता है, जैसे कुम्भ करोतीति—कुम्भकार ( कुम्भ + कृ + अण् ), भार हरतीति भारहार ( भार + हृ + अण् ) । अण् के पूर्व वृद्धि हो जाती है ।

नोट—कर्म के योग में अण् प्रत्यय क्रियार्थ तुमुन् की तरह प्रयोग में आता है, जैसे—कम्बलदायो याति—कम्बल देने के लिए जाता है ।

परन्तु यदि धातु आकारान्त हो और उसके पूर्व कोई उपसर्ग न हो तो कर्म के योग में उस धातु के अनन्तर क ( अ ) प्रत्यय लगेगा, अण् नहीं, जैसे—गा वदातीति गोद ( गो + दा + क ), किन्तु गा सन्ददातीति—गो सन्दाय ( गो + सम् + दा + अण् ) ।

इसके अतिरिक्त मूलविभुज नन्वमुच, काक्प्रह, कुमुद, महीध्र, कुप्रगिरिध्र आदि कुछ शब्दों के अनन्तर भी क प्रत्यय इसी अर्थ में लगता है ।

१ आतश्चोपसर्गो । ३ । १ । १३६ ।

२ कर्मण्यण् । ३ । २ । १ । अण् कर्मणि च । ३ । ३ । १२ ।

३ आतोऽनुपसर्गो क । ३ । २ । ३ ।

४ कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसर्गानाम् । वा० ।

शब्द बनाना हो तो भी वृ धातुओं से, कर्म के योग में कि प्रत्यय लगा है, जैसे—जलधि<sup>१</sup>, नीरधि ( जलानि धीयन्ते अस्मिन्निति ) ।

( ह ) खोलिङ्ग भाववाचक शब्द धातुओं में क्तिन् ( ति ) जोड़ना पड़ता है । कृति, धृति, मति, स्तुति, चिति । ऋकारान्त धातु तथा लृ आदि धातुओं के अनन्तर ति जोड़ने पर जो धिकार निष्ठा प्रत्यय जोड़ने में होता है वही होता है । कृ+ति=कीर्ति, गीर्ति, लूनि, धूनि इत्यादि ।

( च ) सम्पद्, विपद्, आपद्, प्रतिपद्, परिपद् इन में क्तिप् और क्ति दोनों भावार्थ प्रत्यय लगाए जाते हैं, सम्पत्, विपत्, आपत्, प्रतिपत्, परिपत् सम्पत्ति, विपत्ति, आपत्ति, प्रतिपत्ति, परिषत्ति ।

( छ ) ऐसी धातुएँ जिनमें कोई प्रत्यय पहले से हो लगा हो ( जैसे सन्नन्त, यङन्त आदि ) उनसे खोलिङ्ग के भाववाचक शब्द बनाने के लिए अ प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—कृ से सन् लगाकर चिकीर्षन् धातु, उस भाववाचक अ प्रत्यय जोड़ा तो चिकीर्ष शब्द बना, फिर खोलिङ्ग का टा (आ) प्रत्यय लगाकर चिकीर्षा ( करने की इच्छा ) बना, इसी प्रकार जिगमिषा, बुभुक्षा, पिपासा, पुत्रकाम्या आदि ।

कर्म के योग में अर्ह धातु के आन्तर अच् ( अ ) प्रत्यय लगता है, जैसे—पूजामहतीति पूजार्हं प्राक्षय ( पूजा + अर्ह + अच् ) ।

चर् के पूर्व यदि अधिकरण का योग हो और धातु से कर्तृवाचक शब्द बनाना हो तो ट ( अ ) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—चुरपु चरतीति—चुरचर ( चुर + चर् + ट ) ।

अथवा यदि चर् के पूर्व भिष्ठा, सेना, आश्रय इन शब्दों में से किसी का योग हो तब भी ट प्रत्यय लगेगा, भिष्ठा चरतीति, भिष्ठाचर ( भिष्ठा + चर् + ट ), सेना चरति प्रविशतीति, सेनाचर, आश्रय—गृहीत्वा चरति गच्छतीति, आश्रयचर ।

( ६ ) कृ धातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो किन्तु धातु से हेतु आन्त ( ताच्छील्य ) अथवा अनुलोम्य ( अनुकृता ) का बोध हो, तो अप् ( कर्मण्यप् ) प्रत्यय न लगाकर ट प्रत्यय लगता है, जैसे—यश करोतीति यशस्वी विद्या—यश पैदा करनेवाली विद्या, यहाँ विद्या यश की हेतु है इस लिए ट प्रत्यय हुआ, आद करोतीति आदकर ( आद करने की आदत वाला ), वचन करोतीति वचनकर ( वचनानुसृत कार्य करने वाला ) ।

१ अर्ह । १ । २ । १२ ।

२ चरेष्ट । १ । २ । १६ ।

३ भिष्ठासेनादायेषु च । १ । २ । १७ ।

४ कृपो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु । १ । २ । २० ।



यदि धातु हलन्त हो किन्तु उसमें कोई गुरु अक्षर (सयुक्त व्यंजन अथवा दीर्घ स्वर) हो तब भी किन् न लगाकर अ लगता है, जैसे ईद्—  
ईहा, ऊहा ।

( ज ) चिन्त्, पूज्, कय्, कुम्ब्, चर्च् धातुओं में तथा उपसर्ग सहित आकारान्त धातुओं में अद् प्रत्यय लगाकर क्रीलित् भाववाचक शब्द बनते हैं, चिन्ता, पूजा, कया, कुम्बा, चर्चा, प्रदा, उपदा अदा, अतर्था ।

( झ ) शिञ्जत् ( प्रेरणार्थक ) धातुओं में तथा आस्, धन्व्, घट्, वृद्, विद् से भावार्थ क्रीलित् प्रत्यय युच् ( जन ) लगता है, जैसे—  
कारणा ( कृ + शिञ् + युच् + टाप् ), इसी प्रकार हारणा, दारणा,  
आस् + युच् + टाप् = आसना, श्रन्यना, घटना, वन्दना, वेदना ।

( ञ ) नपुंसकलिङ्ग भाववाचक शब्द बनाने के लिए कृत् प्रत्यय ( निष्ठा धात्वा ) अथवा ल्युट् ( यु ) धातुओं में लगाया जाता है, जैसे—  
हसितम्, हसनम्, गतम्, गमनम्, कृत, करण, हतम्, हरणम्, इत्यादि ।

१ गुरोश्च हल । ३ । ३ । १०३ ।

२ चिन्तिपूजिकथिकुम्भिचर्चश्च । ३ । ३ । १०५ । आतरधोपसर्गे । ३ ।

३ । १०६ ।

३ ययासश्रन्यो युच् । ३ । ३ । १०७ । घटिविदिविद्विद्वरधेति धा-पम् ।

ता० ।

४ नपुंसके भावे कृ । ल्युट् च । ३ । ३ । ११४—११६ ।

यदि कृ घातु के पूर्व दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, अन्त, अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किं, लिपि, जिवि, यलि, भक्ति कर्तुं, चित्र, क्षेत्र, सरया, सख्यावाचक शब्द, जहा, बाहु, अहर् (अहस्), यत्, तत्, धनुर् (धनुप्), अरुप् शब्द कर्म रूप में आवें तो ट प्रत्यय लगता है, अण् नहीं। दिवाकर, विभाकर, निशाकर, इत्यादि।

( च ) एज् घातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो तो खश् ( ञ ) प्रत्यय लगता है, जैसे—जनम् पूजयतीति ( जन + एज् + खश् )।

थरुप्, द्विप् तथा अकारान्त ( यदि अव्यय न हों ) शब्दों के अनन्तर यदि ख में अन्त होने वाला शब्द आवे तो बीच में एक म् आ जाता है जैसे—जन शब्द अकारान्त है इसके अनन्तर पूजय शब्द आया जिसमें खश् प्रत्यय लगा है इसलिप् सिदन्त है, अतः बीच में म् आवेगा—जन + म् + पूजय = जनमेजय ।

( छ ) वद् घातु के पूर्व यदि प्रिय और वश शब्द कर्म रूप में आवें तो वद् घातु में खच् ( अ ) प्रत्यय लगता है—प्रिय वदतीति प्रियवद ( प्रिय + म् + वद् + खच् ), वशवद ( वश + म् + वद् + खच् )।

१ दिवाविभानिशाप्रभाभाष्करान्तानन्तादिबहुनान्दी किलिपिलिविलि भक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसरयाजहाबाहुहर्त्यत्तदधनुस्त्तु ३ । २ । २१ ।

२ एजे खश् । ३ । २ । २८ ।

३ अरुर्द्विपदजन्तस्य भुम् । ६ । ३ । ६७ ।

४ प्रियवशे वद खच् । ३ । २ । १८ ।

( ट ) पुलिङ्ग नाम शब्द बनाने के लिए प्रायः धातुओं में घ प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—थाकृ+घ=आकर ( खान ), आखन ( फाड़ना ), आपणः ( बाज़ार ), निकप ( कसौटी ), गोचर ( चरागाह ), सज्ज, यह, निगम आदि । परन्तु हलन्त धातुओं में प्रायः घञ् लगता है, घ नहीं, जैसे—राम, अपाभ्रम ( एक ओषधि का नाम ) ।

### खलर्थ कृत् प्रत्यय

१९०—( क ) कठिन ( इसलिए दुःखात्मक ) और सरल ( अतः एव सुखात्मक ) के भाव का बोध कराने के लिए धातुओं के अनन्तर खल् ( अ ) प्रत्यय लगाया जाता है । यह भाव दिलाने के लिए सु और ईप्त् शब्द ( सुखार्थ ) तथा दुर् ( दुःखार्थ ) धातु के पूर्व जुड़े रहते हैं, जैसे—सुखेन कर्तुं योग्य—सुकर ( सुकृ+खल् ), सुकर कटो भवता—चटाई आप से आसानी से बन सकती है, ईप्त्कर, ईप्त्कर कटो भवता—चटाई आप से जरा से ही ( अनायास ही ) बन सकती है । दुःखेन कर्तुं योग्य—दुष्कर ( दुष्कृ+खल् ), दुष्कर कटो भवता—चटाई आप से मुश्किल से ( दुःख से ) बन सकती है । इसी प्रकार दुःशासन, दुर्योधन ॥

१ पुंसि सज्ञाया घ प्रायेण । ३ । ३ । ११८ ।

२ हलश्च । ३ । ३ । १२१ ।

३ ईप्द्दु सुपु कृच्छाकृच्छार्थेषु खल् । ३ । ३ । १२६ ।

( ज ) भृ, वृ, वृ, जि, छ, सद्, तप्, दम् धातुओं के याग में तथा गम् धातु के योग में यदि कर्मरूप कोई शब्द आवे, और पूरा शब्द किसी का नाम हो तो खच् (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—विच विभर्तीति विश्वम्भरा विरच + म् + मृ + खच् + टाप् )—पृथ्वी का नाम, रच ररतीति रचन्तरम् रण + म् + वृ + खच् )—साम का नाम, पति वरतीति पतिवरा—कन्या का नाम, शत्रुञ्जयतीति शत्रुञ्जय —एक हाथी का नाम, युगन्धर—पर्वत का नाम, शत्रुमह—राजा का नाम, परन्तप—राजा का नाम, अरिन्द्रम—राजा का नाम । मुतङ्गम ।

( झ ) दृश् धातु के पूर्व यदि त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस्, एक, द्वे, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्, अन्य, समान शब्दों में से कोई रहे और दृश् धातु का अर्थ देखना न हो तो उसके अनन्तर कज (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—तद् + दृश् + कज = तादृश् ( वैया ) त्यादृश्, यादृश्, एतादृश् इत्यादि ।

इसी अर्थ में किवन् प्रत्यय तथा कस भी लगते हैं । विरज का लोप होता है, धातु में कुछ नहीं जुड़ता कस का स जुड़ता है, जैसे—तादृश् तद् + दृश् + किवन् ) तादृज ( तद् + दृश् + कस ), अन्यादृश् ( अन्य + दृश् + किवन् ), अन्यादृज ( अन्य + दृश् + कस ) इत्यादि ।

१ सजयाभृवृजिघारिमाहितपिडम । २ । २ । ४६ ।

२ तदादिषु दृशोऽनालोचने कज । ३ । २ । ६० । समानान्ययोश्चेति यम् । वा० । कसोऽपि वाच्य । वा० ।

दुर्वह, सुवह, ईपद्वह इत्यादि, तथा खीलिङ्ग दुष्कर, दुर्वहा, नपु० दुष्कर, दुर्वह आदि रूप होते हैं ।

( ख ) आकारान्त धातुओं के अनन्तर खल् के अर्थ में युच् प्रत्यय होता है खल् नहीं, जैसे—सुखेन पातुं योत्य सुपान, ईपपान, इसी प्रकार दुपान ।

( ग ) खल् और खलथं प्रत्यय कर्म की सूचना देते हैं, कर्ता की नहीं इस लिए कर्म के विशेषण हो सकते हैं, कर्ता के नहीं ।

### उणादि प्रत्यय

१९१—कृत् प्रत्ययों के दो भेदों ( कृत्य और कृत् ) का व्याख्यान ऊपर किया जा चुका है । बाकी रहे उणादि । उणादि का अर्थ है उष् आदि प्रत्यय । अर्थात् उस वर्ग के प्रत्यय जिनका पहला प्रत्यय उष् है । ये प्रत्यय बड़े टेढ़े हैं और यही जोड़ तोड़ से धातुओं में शब्द बनाने के लिए लगाए जाते हैं, इनका प्रयोग भी बहुत है—कभी किसी अर्थ में, कभी किसी अर्थ में । महर्षि पाणिनि ने इनके द्वारा संस्कृत के शेष ऐसे शब्दों की विधि की है जो और किसी वर्ग के प्रत्ययों से सिद्ध नहीं होते ।  
बदाहरणार्थ—करोतीति कार—शिल्ली कारकण्य ( कृ+उष् ),

१ आतो युच् । ३ । ३ । १२८ ।

२ तपोरेव कृत्यक्तप्रत्ययौ । ३ । ४ । ७० ।

३ कृपापाजिमिस्त्रदिसाध्यशुभ्य उष् ।

४ उणादयो बहुलम् । ३ । ३ । ११ ।

( ज ) सत् ( बैठना ), सू ( पैदा करना ), द्विप् ( बैर करना ), दुह् ( द्रोह करना ), दुह् ( दुहना ), युज् ( जोड़ना ), विद् ( जानना, होना ), भिद् ( भेदना, काटना ), छिद् ( काटना, टुकड़े करना ), जि ( जीतना ), नी ( ले जाना ) और राज् ( शोभित होना ) इन धातुओं के पूर्व कोई उपसर्ग रहे वा न रहे, इनके अनन्तर क्विप् प्रत्यय लगता है, क्विप् का डुध रहता नहीं सत्र लोप हो जाता है, जैसे —

द्युसत् ( स्वर्ग में बैठनेवाला = देवता ), प्रसू ( माता ), द्विट् ( शत्रु ), मित्रद्रुक् ( मित्र से द्रोह करनेवाला ), गोधुक् ( गाय दुहनेवाला ), अरयुक् ( घोंडा जोतने वाला ), वेदवित् ( वेद जानने वाला ), गोघ्नभित् ( पहाड़ों को तोड़नेवाला इन्द्र ), पञ्चच्छित् ( पञ्च काटने वाला ), इन्द्रजित् ( मेघनाद ), सेनानी ( सेनापति ), सम्राट् ( महाराजा ) । कुछ और धातुओं ( जैसे की—अग्निचित्, स्तु—देवस्तुत, कृ—दीकाकृत, दृश्—सर्षदृश्, स्पृश्—सर्मस्पृश्, सृज्—विश्वसृज् आदि ) के अनन्तर भी क्विप् प्रत्यय लगता है ।

( ट ) जातिवाचक सज्ञा ( ब्राह्मण, हस, गो आदि ) को छोड़ कर यदि कोई और सुबन्त ( सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण ) किसी धातु के पूर्व आए और ताच्छील्य ( आदत्त ) का भाव सूचित करना हो तो उस धातु के

१ सरसूद्विपदुहदुहयुजविदभिदछिदजिनीराजामुपसर्गोऽपिक्विप् । ३ । २ । ६१ । सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृज । ३ । २ । ८६ । अग्नौ चे । ३ । २ । ६१ ।

२ मुप्यजातोयिनिस्ताच्छील्ये । ३ । २ । ७८ ।

पर्यम् ( पृ + उपच् ), नहुष , 'नह् + उपच् ), कलुपम् ( कल् + उपच् )  
इत्यादि ।

## द्वादश सोपान

### लिङ्ग विचार

१९२—हिन्दी में दो लिङ्ग होते हैं—स्त्रीलिङ्ग और पुलिङ्ग, और सारे पदार्थवाचक शब्द चाहे चेतन हो अथवा अचेतन इन्हीं दो लिङ्गों में विभक्त होते हैं । जैसे—लटकी जाती है, गाड़ी आती है, आदमी आया, रथ चला आदि । सस्कृत में इन दो लिङ्गों के अतिरिक्त एक और होता है, जिसे नपुंसकलिङ्ग कहते हैं । सारी सक्षाएँ इन्हीं तीन लिङ्गों में विभक्त हैं, कोई पुलिङ्ग, कोई स्त्रीलिङ्ग और कोई नपुंसकलिङ्ग । एक ही वस्तु का बोध कराने वाला कोई शब्द पुलिङ्ग में है तो कोई स्त्रीलिङ्ग में अथवा नपुंसकलिङ्ग में, जैसे—तनु (स्त्री०) वेह (पु०) और शरीरम् (नपु०) सभी शरीरवाची हैं । दारा शब्द पुलिङ्ग में होते हुए भी स्त्री का अर्थ बताता है, देवता शब्द स्त्री लिङ्ग में होते हुए भी देव (पुरुष) का अर्थ बताता है । इस प्रकार यह विदित है कि सस्कृत भाषा में लिङ्ग प्रकृति के अनुसार नहीं है, यदि सारे अचेतन पदार्थवाचक शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते, पुरुषवाची शब्द पुलिङ्ग में और स्त्रीवाची स्त्रीलिङ्ग में तो कहा जा

अनन्तर णिनि (इन्) प्रत्यय लगता है, जैसे—उष्ण भोक्तु जीलमस्य उष्ण भोजी ( उष्ण + भुज् + णिनि )— गरम गरम खाने की निम्की आन्त हो शतभोजी, साधुकारी, ब्रह्मवादी इत्यादि । यदि आदत्त जतलानी न हो तो यह प्रत्यय नहीं लगेगा ।

मन् के पूर्व यदि कोई सुजन्त रहे तब भी णिनि लगेगा, आन्त हो या न हो—पण्डितमात्मान मन्यते इति पण्डितमानी ( पण्डित + मन् + णिनि ); दर्शनीयमानी ।

अपने आप को कुछ मान के अर्थ में स प्रत्यय भी होता है, जैसे —  
पण्डितमन्य ( खिदन्त शब्द के पूर्व म् आ जाता है )

(२) चन् धातु के अनन्तर प्रायः ङ (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे अधिकरण र्त्त में रहने पर—प्रयागे जात —प्रयागज , सस्काराज्जात —सस्कारज ; राजा ( जन् + ङ + टाप् ), अज ; द्विच ।

१८८—शील, धर्म, साधुकारिता वाचक कृत्

( फ ) किसी भी धातु के अनन्तर शील, धर्म तथा भली प्रशार

१ मन । ३ । २ । ८२ ।

२ आत्ममाने सशच । ३ । २ । ८३ ।

३ सप्तम्यां जनेडं । पञ्चम्यामजातौ । उपसर्गे च सजाया । अनौकमणि ।

यवपिदरयते । ३ । २ । ४७ १०१ ।

४ धाकेन्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिणु । ३ । २ । १३४ । मृन् । ३ । २

१३५ ।



सकता कि लिङ्ग प्रकृति के क्रम से है । परन्तु वात इससे उलटी है । इसी कारण सस्कृत की सक्षाधरो का लिङ्ग जानना बड़ा कठिन है । उसका ज्ञान कोषों से तथा काव्यग्रन्थों के अध्ययन से जाना जाता है ।

व्याकरण के कुछ मोटे मोटे नियम हैं उन से भी कुछ सहायता मिल सकती है ।

### १९३—स्त्रीलिङ्ग शब्द

( क ) <sup>१</sup>अनि, ऊ, मि, नि, क्तिन् ( ति ) और ई प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं । क्रम से उदाहरण—अवनि, घमू, भूमि, ग्लानि, कृति और लक्ष्मी । परन्तु वद्धि, घृणि, अग्निपुलिङ्ग में होते हैं तथा अशनि, भरणि, अरणि, श्रोणि, मोनि और ऊर्मे पुलिङ्ग और स्त्री लिङ्ग दोनों में होते हैं ।

( ख ) <sup>२</sup>टाप् प्रत्यय में अन्त होने वाले सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं, जैसे—विद्या, धजा, कन्या आदि ।

( ग ) <sup>३</sup>एकाक्षर ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, जैसे श्री, मू आदि । एकाक्षर न होने से पुलिङ्ग भी हो सकते हैं, जैसे—पृथ्वी, प्रतिभू आदि ।

<sup>१</sup> अन्युप्रत्ययान्तो धातु । अशनिभरणपरणय पुंसि च । मिन्यत । वह्निवृष्यग्नय पुंसि । श्रोत्रियोन्यूर्मय पुंसि च । क्तिन्नन्त । ईषारान्तश्च । लिङ्गानुशासनम् ४—च०

<sup>२</sup> ऊकावन्तश्च । लिङ्ग० ११ । <sup>३</sup> टवन्तमेकाक्षरम् । लिङ्ग० १२ ।

सम्पादन इन तीन में से किसी भी बात का भाष लाने के लिए तुन् ( तु ) प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—रु + तुन् = कर्तृ-कर्त कटम्—जो चटाई बनाया करता है, अथवा जिसका धर्म चटा बनाना है, अथवा जो चटाई भली प्रकार बनाता है ये तीनों आ इससे सूचित हो सकते हैं ।

( ८ ) अलङ्कृ निराकृ, प्रजन्, उत्पच्, उत्पत्, उन्मन्, रुच्, अपग्रप्, वृत्, वृध्, सह्, चर् इन धातुओं के अनन्तर इसी अर्थ में इण्णच् ( इण्णु प्रत्यय लगता है । अलङ्करिण्यु ( अलङ्कृत करने वाला ), निराकरिण्यु ( अपमान करने वाला ), प्रजनिण्यु ( पैदा करने वाला ), उत्पत्तिण्यु ( पकाने वाला ), उत्पत्तिण्यु ( ऊपर उठने वाला ), उन्मत्तिण्यु ( उन्मत्त होने वाला ), रोचिण्यु ( अच्छा लगाने वाला ), अपन्नपिण्यु ( लज्जा करने वाला ), वर्तिण्यु ( विद्यमान रहने वाला ), वर्धिण्यु ( बढ़ने वाला ) सहिण्यु ( सहनशील ), चरिण्यु ( भ्रमणशील ) ।

( ९ ) शील, धर्म तथा भलीप्रकार सम्पादन का अर्थ सूचित करने के लिए निन्द, हिंस, क्लिश, खाद, विनाश, परिधिप्, परिरट्, परिवद्, व्ये भाप्, असूय् इन धातुओं के अनन्तर वुञ् ( अक ) प्रत्यय लगता है । निन्दक, हिंसक, क्लेशक, खादक, विनाशक, परिधेपक, परिरटक, परिवदक, व्यायक, भापक, असूयक ।

१ अलङ्कृ निराकृ प्रजन्नात्पचोत्पत्तोन्मदरुच्यपग्रप् वृत्तुवृधुसह रइण्युच् । १३ । २ । १३६ ।

२ निन्दहि सक्लिशखादविनाशपरिधिपपरिरटपरिवादिव्याभापासूजोवुञ् । १३ । २ । १४६ ।

( घ ) तल् प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं, जैसे पवित्रता, जनता आदि ।

( ङ ) १६ ( एकोनविंशति ) से लेकर ३६ ( नवनवति ) तक के सख्यावाची सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं ।

( च ) भूमि, विद्युत्, सरित्, लता और घनिता इन शब्दों का अर्थ रखने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं, जैसे—पृथिवी, तद्वित्, नदी, वल्ली, स्त्री आदि ।

( छ ) अकारान्त शब्दों में केवल मात्, दुहित्, स्वस्, पोत् और मनान् ही स्त्रीलिङ्ग के होते हैं ।

### १९४-पुलिङ्ग शब्द ।

( फ ) भावार्थक घञ्, भावार्थक अप्, तथा घ, घच् नङ्, अकारान्त ( घुसजक ) धातुओं के उपरान्त कि प्रत्यय, इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द पुलिङ्ग के होते हैं, उदाहरणार्थ—

१ तलन्त । लि० १७ ।

२ विंशत्यादिरानवते । लि० १३ ।

३ भूमिविद्युत्सरित्त्वलतावनिताभिधानानि । लि० १८ ।

४ अकारान्ता मात्दुहित्स्वस्पोत्ननान्दर । लि० ३ ।

५ घञयन्त । घाजन्तश्च । भयलिङ्गभगपदानि नपुसके । नङन्त ।

याच्चा स्त्रियाम् । क्यन्तो घु । लिङ्ग० ३६—४१ ।

घञन्त—पाक, त्याग ।

घबन्त—कर, गर ।

घान्त - विस्तर, गोचर ।

अजन्त—अय अय [ अय, लिङ्ग, भाग, पद ये शब्द नपुं० लि० में होते हैं ]

महन्त—यज्ञ, धान [ याचना स्त्रीलिङ्ग में ]

व्यन्त—अलधि, निधि, आधि ।

( ख ) नू तथा उ में अन्त होने वाले शब्द प्रायः पुलिङ्ग के होते हैं, जैसे—राजन् ( राजा ), तचन् ( तच्चा ) प्रभु इष्ट । [ कुछ नकारान्त शब्द चर्मन् आदि नपुंसक होते हैं । धेनु, रज्जु, कुड्ड सरयु, तनु, रैणु, प्रियङ्गु ये उकारान्त स्त्रीलिङ्ग में, और शमधु, जानु, वसु ( धन ), स्वादु, भधु, जटु, ग्रपु, तालु दाह, कमेह वस्तु और मस्तु नपुंसक लिङ्ग में होते हैं ] ।

( ग ) ऐसे शब्द जिनकी उपधा में क ट, य्, थ्, न्, प्, म्, स्, य्, र्, प्, स् में से कोई अक्षर हो और यदि वे अकारान्त हों तो प्रायः पुलिङ्ग होते हैं, जैसे—स्तयक कलक, घट, पट, गुण, गण, पापाय, रथ, [ किन्तु काष्ठ,

१ नान्त । लि० ४८ उकारान्त । लि० २१ ।

२ कोपध । ६३ । टोपध । ६४ । योपध । ६७ । धोपध । ७० । नोपध । ७४ । पोपध । ७७ । भोपध । ८० । सोपध । ८३ । योपध । ८६ । रोपध । ८९ । धोपध । ९२ । सोपध । ९६ ।

विस्तार यताने के लिए ) हिम और अरण्य के अनन्तर, द्वाराय यव अर्थ में यव के अनन्तर, यवनों की लिपि का बोध कराने के लिए यवन अनन्तर तथा मातुल, उपाध्याय के अनन्तर डीप् लगाने के पूर्व आनुक् मान ) जोड़ दिया जाता है—इन्द्राणी, भवानी आदि, यवानी ( द्वाराय ), भवतानी ( यवनों की लिपि ), मातुलानी, उपाध्यायानी ।

( ग ) अकारान्त ऐसे जातिवाचक शब्द जिनकी उपधा में न हो डीप् लगाकर स्त्रीलिङ्ग होते हैं, जैसे—ग्राहण —ग्राहणी, रिणी, मृगी ।

( घ ) उकारान्त गुणवाची शब्दों के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने लिए विकल्प से डीप् लगाते हैं, जैसे—मृदु से मृदु अथवा द्वी । किंतु यदि उपधा में उ हो तो डीप् नहीं लगेगा—एड पु० तथा स्त्री० दोनों में ।

इ अथवा ई में अन्त होनेवाले गुणवाची शब्दों का पुलिङ्ग तथा णिलिङ्ग दोनों में समान रूप रहता है, जैसे—शुचि, सुधी ।

पृष्ठ, सिक्थ, उक्थ नपुंसक होते हैं ], इन , फेन [ जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, चेतन, शासन, सोपान, मिथुन, शमशान, रत्न, निम्न, चिह्न नपुंसक में होते हैं ], युप , दीप [ पाप, रूप उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, शप्प, समीप, अन्तरीप नपुंसक में ], स्तम्भ , कुम्भ , सोम , भीम , समय , हय [ किमलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय नपुंसक में ], दुर , अङ्कुर [ द्वार आदि बहुत से शब्द नपुंसक लिङ्ग के होते हैं ], वृष , पृष , वत्स वायस , महानस ।

( घ ) देव, असुर, आत्म, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त स्तन, भुज, कण्ठ, रज्ज, शर, पङ्क, क्रतु, पुरुष, कपोल गुल्फ मेघ, रश्मि, दिवस—ये शब्द तथा इनका अर्थ बतानेवाले शब्द प्रायः पुलिङ्ग के होते हैं, उदाहरणार्थ—देव—सुर, असुर—दैत्य, आत्मा—क्षेत्रज्ञ, स्वर्ग—नाक, गिरि—पर्वत, समुद्रो—अब्धि, नख—करुह, केश—शिरोरुहा, दन्त—वशन, स्तन—कुच, भुज—दो, कण्ठ—गल, रज्ज—असि, शर—बाण, पङ्क—कर्दम, क्रतु—अध्वर, पुरुष—नर, कपोल—गायह, गुल्फ—प्रपद, मेघ—नीरद, रश्मि—मयूख, दिवस—घन ( दिन और अह्न नपुंसक में होते हैं ) ।

( ङ ) दार, अचत, लाज, असु ये पुलिङ्ग में तथा सदा बहुवचन में होते हैं—दारा, अचता, लाजा, असव ।

१ देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठरज्जशरपङ्कामिधानानि । ४५ । क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघामिधानानि । ४६ । रश्मिदिवसामिधानानि । १०० । २ दाराचतलाजासूनां बहुत्वञ्च । १०६ ।

## त्रयोदश सोपान

### अव्यय विचार

२००—अव्यय ऐसे शब्द को कहते हैं जिसके रूप में कोई विकार न उत्पन्न हो, वह सदा एक सा रहे। जिसका खर्च न हो अर्थात् जो लिङ्ग, विभक्ति, वचन के अनुसार घटे बड़े नहीं वही अव्यय है।

सदृश त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

उदाहरणार्थ—उच्चै ( ऊँचे ), नीचै ( नीचे ), अभित ( चारों ओर ), हा आदि।

अव्यय चार प्रकार के होंगे—( १ ) उपसर्ग, ( २ ) क्रिया विशेषण, ( ३ ) समुच्चयबोधक शब्द ( conjunctions ) तथा ( ४ ) मनेाधिकार सूचक शब्द ( interjections )। इनके अतिरिक्त प्रकीर्णक।

### उपसर्ग

२०१—वातु या धातु से बने-हुए विशेषण, जो सज्ञा आदि शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं उनको उपसर्ग कहते हैं। इनके द्वारा धातु का अर्थ कुछ परिवर्तित हो जाता है, इनके द्वारा ही धातु के

## १९५—नपुंसकलिङ्ग शब्द

( क ) भावायक ल्युट् भावार्थक क तथा भावार्थ और कर्मायं प्यञ्, यञ्, य, षक्, यक्, अञ्, अण्, युञ्, छ इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं । उदाहरणाय—

ल्युट्—हसनम् (यदि ल्युट् भावाय में न होगा तो नपु० नहीं होगा,  
पचन —पकाने वाला ),

क—गतम्, घातम्,

ष—शुद्धत्वम्,

प्यञ्—चातुयम्, ब्राह्मण्यम्, यत्—स्तेयम्, य—सख्यम्, षक्—कापेयम्,

यक्—आधिपायम्, अञ्—धौष्टम्, अण्—दंढायनम्, युञ्—पैतापुत्रकम्,

ष —अच्छायाकीयम् ।

( ख ) अय्ययीभावसमास तथा एकवचनान्त द्वन्द्व सवदा तथा द्विगु विकल्प से नपुंसकलिङ्ग में होते हैं, जैसे—अधिक्षि, पाणिपादम्, त्रिभुवनम् ।

( ग )—इस्, उस् में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं, जैसे—इवि, धनु ।

१ भावे ल्युटन्त । ११६ । निष्ठा च । १२० । त्वप्यग्नौ तांदतौ । १२१ ।  
कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्य । १२२ । यद्यद्वयगजएवुद्धाश्च  
भावकर्मणि । १२३ ।

२ अय्ययीभाव । द्वन्द्वैकत्वम् । १२४ । द्विगु स्त्रिया च । १२५ ।

३ इसुसन्त । १२४ ।



विभिन्न अर्थों का प्रकाश होता है। उदाहरणार्थ रु धातु का अर्थ है 'करना', किन्तु इसके पृथक् उपसर्ग लगा कर अपकार, उपकार, अधिकार आदि शब्द बनते हैं। सिद्धांतकामुदीकार कहते हैं—

उपसर्गेण धात्वर्थो ज्ञातव्यः प्रतीयते ।

प्रहाराहारसहारविहारपरिहारषत् ॥

किसी उपसर्ग में कभी धातु का अर्थ उल्टा हो जाता है, कभी वही रहते हुए अधिक विशिष्ट हो जाता है और कभी ठीक वही। यही भाव इस श्लोक में दिया है—

धात्वर्थं बाधते कञ्चिद्विचित्रतनुवर्तते ।

तमेव विशिनष्ट्येव उपसर्गगतिस्त्रिधा ॥

उदाहरणार्थ—'जय' का अर्थ है 'जीत' किन्तु 'पराजय' का अर्थ हुआ 'हार' उससे विरुद्ध उद्भूत, भू-का अर्थ है 'हीना' किन्तु 'अभिभू' का अर्थ है 'हराना', 'प्रभु' का अर्थ है 'सामर्थ्यवान् हीना', 'रूप' का अर्थ है 'सौच्यता' किन्तु 'प्ररूप' का 'गूर जोर से सौच्यता' इत्यादि ।

नीचे उपसर्ग उन मुख्य अर्थों सहित जो बहुधा उनके साथ चलते हैं दिए जाते हैं ।

१ प्र परा, अप, सम्, अनु, अव, निः, निर्, दुस्, दुर्, वि, आह, नि, अपि, अपि, अति, सु, उद्, अभि, प्रति, परि, उप । एते प्रादय उपसर्गा क्रियायोगे । गतिश्च । १ । ४ । ५८—६० ।

( घ )—मन्<sup>१</sup> में अन्त होनेवाला शब्द यदि दो स्वरो वाला हो और कर्तृवाचक न हो तो नपुंसक होगा , जैसे—चर्म, घर्म, किन्तु अग्निमा, क्योंकि यह दो स्वरो वाला नहीं, दामा ( देने वाला ) क्योंकि यह कर्तृवाचक है ।

( ङ ) अस्<sup>२</sup> में अन्त होने वाले दो स्वरो वाले शब्द नपुसकलिङ्ग में होते हैं , मन , यश , तप आदि ।

( च )—त्र<sup>३</sup> में अन्त होनेवाले शब्द प्रायः नपुसक होते हैं , इन्द्रम्, पद्मम् आदि, किन्तु यात्रा, मात्रा भस्त्रा, दष्ट्रा, वरत्रा स्त्रीलिङ्ग के हैं ।

( छ ) जिन शब्दों की उपधा में ल हो वे प्रायः नपुसक होते हैं, कुलम् स्थलम्, कूलम् ।

( ज ) शत से आरम्भ करके ऊपर की सख्या नपुसक होती हैं, केवल शत, प्रयुत, अयुत पुलिङ्ग में भी होते हैं, लक्षा और कोटि स्त्रीलिङ्ग में तथा शङ्ख पुलिङ्ग में होते हैं ।

१ मन् द्वयच्कोऽकर्तरि । १४८ ।

२ असन्तो द्वयच्क । १५१ ।

३ ग्रान्त । १५३ ।

४ लोपध । १४१ ।

५ शतादि सख्या । शतायुतप्रयुता पुंसि च । लक्षाकोटि स्त्रियाम् ।

शङ्ख पुंसि । १४४-४७ ।

अति—का अर्थ बाहुल्य अथवा उल्लघन होता है , जैसे — अतिव्रम

सीमा का उल्लघन, अतिनिद्रा—अधिक नींद ।

अधि—ऊपर, जैसे अधिकार ऊपरी काम, जिसमें दूसरे वश में हों ।

अनु—पीछे, साथ, जैसे अनुगमनम् ।

अप—दूर, जैसे अपहार—दूर ले जाना, अपकार ।

अपि—निकट, जैसे अपिधानम्—ढक्कन ( अपि का विकल्प से अणु होता है—अपिधानम् , पिधानम् ) ।

अभि—ओर, जैसे अभिगमनम्—किसी की ओर जाना

अव—दूर , नीचे, जैसे अवतार—नीचे आना, अवमान—नीचा मानना ।

आ—तक, कम , जैसे आच्छद्—चारों ओर तक ढकना, आकम्प—कुड़ काँपना ।

उद्—ऊपर, जैसे उद्गम्—ऊपर जाना ( निकलना ), उत्पत्—ऊपर गिरना ( उबना ) ।

उप—निकट, जैसे उपासना—निकट बैठना ( प्रार्थना ) ।

दुर्—दुरा, जैसे दुराचार—खराब काम ।

दुस्—कठिन, जैसे दुष्कर—करने में कठिन, दुसह—सहने में कठिन ।

नि—नीचे आदि, जैसे निपत्—नीचे गिरना, निकाय—समूह ।

निर्—बाहर, जैसे निर्गम्—बाहर निकलना, निर्दोष—दोष से बाहर ।

( म ) मुख, नयन, लोह, वन मास, रुधिर, कर्मुक, विवर, जल, हल, धन, अन्न, बल, कुसुम, शुल्ब, पत्तन, रण ये शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्रायः नपुंसक होते हैं । मुखम्—आननम् नयनम्—नेत्रम्, लोहम्—कालम्, वनम्—गहनम्, मासम्—आमिषम्, रुधिरम्—रक्तम्, कर्मुकम्—शरासनम्, विवरम्—यिलम्, जलम्—वारि, हलम्—लाङ्गलम्, धनम्—द्रवियम्, अन्नम्—अशनम्, बलम्—वीर्यम्, कुसुमम्—पुष्पम्, शुल्बम्—ताम्रम्, पत्तनम्—नगरम्, रणम्—युद्धम् ।

( न ) फलों की जाति बताने वाले शब्द नपुंसक होते हैं, आम्रम्, आमलकम् ।

### स्त्री-प्रत्यय

१९६—कुछ सझाएँ पेसी होती हैं जिनके जोड़े के शब्द होते हैं—एकपुरुष और एक स्त्री । इस प्रकार की पुलिङ्ग सजाओं में स्त्रीलिङ्ग की जोड़ीदार सजा बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हें स्त्रीप्रत्यय कहते हैं, जैसे—अज से टाप् लगाकर अजा स्त्रीलिङ्ग का शब्द बना । इस प्रकार के स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाने के लिए बहुधा नीचे लिखे प्रत्यय लगाए जाते हैं ।

१ मुखनयनलोहवनमासरुधिरकर्मुकविवरजलहलधनाग्राभिधानानि ।

१२७ । बलकुसुमशुल्बपत्तनरणानि । १२८ ।

२ फलजाति । १२९ ।

निस्—बिना, बाहर, जैसे नि मार —सार रहित नि शङ्क —शङ्का रहित ।

परा—पीछे, उल्टा, जैसे पराजय —हार, पराभव —हार, परागत —चला गया ।

परि—चारों ओर, जैसे परिखा—चारों ओर की नाई ।

प्र—अधिक, जैसे प्रणाम —अधिक कुकना ।

प्रति—ओर, उल्टा, जैसे प्रतिहार —यद्वा, प्रतिगम्—किसी की ओर जाना ।

वि—बिना अलग, जैसे विचल — दूर चला हुआ, वियोग ।

तम्—अच्छी तरह, जैसे सत्कार —अच्छी तरह किया हुआ काम

सु—अच्छी तरह, जैसे सुज्ञतम्—पुण्य ( अच्छी तरह किया हुआ ) ।

इनमें से एक या कई उपसर्ग धातु, क्रिया अथवा धातु से निर्मित अथ शब्दों के पूर्व जुड़े मिलते हैं और भिन्न २ अर्थों में, ऊपर के अर्थ केवल निर्देशमात्र हैं ।

( ख ) इनके अतिरिक्त कुछ और शब्द भी हैं उनको भी धातु आदि के पूव लगाते हैं, इनका नाम 'गति' है । मुख्य २ गति शब्द ये हैं —

असद्—जैसे असत्कार ।

सद्—जैसे सत्कार, सद्गति ।

नम —( क के पूव ) नमस्कार ।

साधाद्— ,, ,, साधारणकार ।

अन्त —अन्तर्हित —छिपा हुआ ।

अन्तन्—( गत्यर्थक धातुओं के पूर्व )—अस्तङ्गत, अस्तसीन, आदि ।

## १९७-टाप्

नोट—टाप् प्रत्यय के ट और प् को लोप होकर केवल आ शेष रह जाता है, वह आ पुलिङ्ग शब्द में जोड़ा जाता है।

( क ) अजा आदि [ अजा, पडका, कोकिला, चटका, अश्वा, मूपिका, बाला, होडा, पाकी, घत्सा, मन्दा, धिजाता, प्रर्वापिहाणा, अपरापहाणा, कुञ्वा, उष्णिहा, देवविशा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, दष्ट्रा ] शब्दा में तथा अकारान्त शब्दों में स्त्रीबोधक टाप् प्रत्यय लगता है, जैसे—अज + आ = अजा, पडक + आ = पडका, अश्व + आ = अश्वा, बाल + आ = बाला, उष्णिद् + आ = उष्णिहा, देव विश् + आ = देवविशा । भुञ्जान + आ = भुजाना, गङ्गा + आ = गङ्गा इत्यादि ।

( ख ) टाप् के जोड़ने के पूर यदि शब्द में क अन्त में आवे और उसके पूर्व अ होता अ के स्थान में इ हो जाती है । परन्तु यह नियम तभी लगेगा जब क किसी प्रत्यय का हा और टाप् के पूर्व सुप् प्रत्ययों में से कोई न लगे हों, जैसे—मूपक + टाप् ( आ ) = मूपिक + आ = मूपिका ; कारक + टाप् ( आ ) = कारिक + आ = कारिका, सर्वक + टाप् = सर्वक + आ = सर्विक + आ = सर्विका, मामक + टाप् = मामक + आ = मामिक + आ = मामिका, दाक्षिणात्यिका, पाश्चात्यिका । यदि क किसी प्रत्यय का न होगा तो यह नियम नहीं लगेगा, जैसे—शङ्का + आ = शङ्का । यहाँ 'क' धातु का है किसी प्रत्यय का नहीं ।

आवि.—( कृ, अस्, भू के पूर्व ) आविष्कार , आविर्भूत..।

प्रादु —( , , , ) प्रादुष्कार , प्रादुर्भूत ।

तिरि—( भू और घा के पूर्व ) तिरोभूत , तिरोहित ।

पुर —( कृ, भू, गम् के पूर्व ) पुरस्कार , पुरोगत , पुरोभव ।

स्वी—( कृ, के पूर्व ) स्वीकारार्थ, स्वीकृत आदि ।

न ( नञ् ) प्रायः सादृश्य ( जैसे अग्राह्य — ग्राह्य नहीं, किन्तु उसी के सदृश कोई और), अभाव (जैसे ज्ञानस्य भाव — अज्ञानम्), शून्य प्रकार ( जैसे अथ अपट — यह कपड़े से भिन्न है ), अल्पता ( जैसे अनुदा फन्या—कम पेटवाली ), बुराई ( जैसे अकार्य ) अथवा विरोध ( जैसे अनीति — नीतिविरोध ) का बोध उपसर्ग रूप लगकर करता है ।

कुछ अव्यय शब्द के अन्त में भी लगते हैं, जैसे किम् के उपरान्त चित् अथवा चन अनिश्चय का बोध कराने के लिए और वर्तमान काल की क्रिया के अनन्तर स्म—भूतकाल का बोध कराने के लिए लगता है ।

## २००—क्रियाविशेषण

कुछ क्रियाविशेषण स्व आदि अव्ययो में गिनाए हुए शब्द हैं, जैसे—पृथक्, धिना, वृथा आदि, कुछ सर्वनामों में चलते हैं, जैसे—इदानीम्, यथा, तथा आदि, कुछ सख्यावाची शब्दों से चलते हैं जैसे—एकधा, द्विधा, त्रि, चि आदि और कुछ सज्ञाओं में तद्धित प्रत्यय लगाकर, जैसे—पुत्रघत्, भस्मसात् आदि । इसके अतिरिक्त

१—तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत् तदल्पता ।

अप्राशस्त्य विरोधश्च नञर्था पट् प्रकीर्तिता ॥

## १९८-हीप्

(क) ऋकारात् और नकारात् पुलिङ्ग शब्दों के अनन्तर डीप् (ई) लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाया जाता है, जैसे —  
कर्तृ—कर्त्री, दण्डिन्—दण्डिनी, राज्ञी, शुनी ।

नाट—हीप् की ई जुड़ने के पूर्व प्रातिपदिक में नीचे लिखे अनुसार हेर फेर कर लिया जाता है ।

अनन्त शब्द का यह रूप ले कर जा तृतीया के एकवचन में होता है, उसका अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है और शतृ, स्पृ प्रत्ययात् शब्दों में त् के पूर्व न् जोड़ दिया जाता है, जैसे—(राजन् का तृ० पृ० व० राज्ञा है इसका आ गिराकर राज्ञ—हुआ, इससे ई जोड़ कर राज्ञी बना, इसी प्रकार शुनी आदि, पचता से पचत् + ई = पचन्ती) । स्वरान्त शब्दों का अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है ( गौर + गौर् + इ = गौरी ) ।

(ख) नीचे लिखे शब्दों के अनन्तर डीप् लगाया जाता है —कर में घट होने वाले—भोगकर —भोगकरी ।

नद, चोर, देव, ग्राह, गर, प्लव—नटी, चोरी, देवी, ग्राही, गरी, न्वी ।

ड, अण् अण्, तयप्, ठक् ठञ्, कण् और करप् प्रत्ययों में घट होने वाले शब्द—औपग = औपगी, कुम्भकार = कुम्भकारी, चाररा = चारशी, द्वितय = द्वितयी, आचिक = आचिकी, इत्वर = इत्वरी ।

१ अग्नेभ्यो हीप् । ४ । १ । २ ।

२ टिड्ढाणञ्द्वयसञ्दध्नञ् मात्रचतुष्टयपठ्ठञ्कञ्करप् । ४ । १ । १२ ।



सज्ञाओं को द्वितीया के एकवचन में बहुधा क्रियाविशेषण स्वरूप प्रयोग में लाते हैं, जैसे सत्यम्, चिरेण, सुराम् आदि ।

( क ) नीचे अकारादिक्रम से मुख्य २ प्रचलित क्रियाविशेषण दिए जाते हैं —

अकस्मात्—इच्छावारी

अग्रत—आगे

अग्रे—पहले

अचिरम्—  
अचिरात्—  
अचिरेण—

} शीघ्र

अजलम्—निरन्तर

अन्तर्—अन्दर

अत—इसलिए

अतीव—बहुत

अत्र—यहाँ

अथ—तब, फिर

अथकिम्—हाँ, तो क्या

अथ—आज

अथ—  
अथस्तात्—

} नीचे

अपरम्—और

अपरेद्य—दूसरे दिन

अधुना—अब

अनिशम्—निरन्तर

अन्तरेण—द्वारे में

अन्तरा—बिना

अन्तरे—बीच में

अन्यच्च—और

अन्यत्र—दूसरी जगह

अन्यथा—दूसरी तरह

अभित—चारों ओर, पास

अभीक्ष्णम्—निरन्तर

अर्धाक्—पहले

अलम्—थोड़ा

असह्यत्—कई बार

असम्प्रति—  
असाम्प्रतम्—

} अनुचित

आरात्—दूर, समीप

इत—यहाँ से

इतस्तत—इधर उधर

इति—इस प्रकार

( ग ) प्रथम<sup>१</sup> वयस् ( अन्तिम अवस्था को छोड़कर ) का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर डीप् लगता है, जैसे—कुमार कुमारी, किशोरी, बधूदी, किन्तु वृद्धा, म्यविरा ।

### १९९-डीप्

( क ) पितृ<sup>२</sup> शब्दों ( नर्तक खनक, रञ्जक, रजक आदि ) तथा गौरादिगण के शब्दों ( गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, बदर, उभय, भृङ्ग, अनहुह, नट, मङ्गल, मण्डल, वृहत्, महत् ये इस गण के मुख्य शब्द हैं ) के अनन्तर डीप् ( ई ) जोड़ा जाता है, जैसे—नर्तकी, रजकी, गौरी आदि ।

—ई जुड़ने के पूर्व १६८ नोट में लिखे परिवर्तन शब्द में हो जाते हैं ।

( ख ) पुलिङ्ग शब्द जो नर का द्योतक हो, उससे मादा बनाने के लिए टीप् जोड़ा जाता है, किन्तु—पालक शब्द में अन्त होनेवाले शब्दों के अनन्तर नहीं, जैसे—गोप गोपी, शूद्र-शूद्री, किन्तु गोपालक से गोपालिका ।

इन्द्र<sup>३</sup>, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड आचार्य इनके अनन्तर तथा

१ वयसि प्रथमे । ४ । १ । २० । वयस्य चरम इति धात्तयम् ।

२ पित्रौरादिभ्यश्च । ४ । १ । ४१ ।

३ पुयोगादाख्यायाम् । ४ । १ । ४८ । पालकान्ताश्च । वा० ।

४ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारचययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् । ४ ।

१ । ४६ । हिमारचययोर्महत्वे । यवाहोपे । यवनाल्लिप्याम् । वा० ।

इत्थम्—इस प्रकार

इदानीम्—इस समय

इह—यहाँ

इपत्—कुछ, थोड़ा

उच्चै—ऊँचे

उभयत—दोनों ओर

ऋतम्—सच

ऋते—बिना

एकत्र—एक जगह

एकदा—एक बार

एकधा—एक प्रकार

एकपदे—एक साथ

एतर्हि—अब

एव—ही

एवम्—इस तरह

कश्चित्— } क्या ?  
कश्चन— }

कथम्—कैसे ?

कथञ्चन— } किसी प्रकार  
कथञ्चित्— }

कदा—कब

कदाचित्—कभी, शायद

कदापि—कभी

कदापि न—कभी नहीं

किञ्च—और

किन्तु—लेकिन

किम्—क्या ? क्यों ?

किमुत—और कितना ?

किम्वा—या

किल—सचमुच

कुत—कहाँ से

कुत्र—कहाँ

कुत्रचित्—कहाँ

कृतम्—बस, होगया

केवलम्—सिर्फ

क—कहाँ

कचित्—कहाँ

खलु—निरश्चय करके

चिरम्—देर तक

जातु—कभी भी

भटिति—जबदी

तत्—इसलिए

तत—फिर

तत्र—वहाँ

( विस्तार घटाने के लिए ) हिम और अरण्य के अनन्तर, द्वाय यव के अर्थ में यव के अनन्तर, यवनों की लिपि का बोध कराने के लिए यवन के अनन्तर तथा मातुल, उपाध्याय के अनन्तर टीप् लगाने के पूर्व आनुक् ( आन ) जोड़ दिया जाता है—इन्द्राणी, मजानी आदि, यवानी ( द्वायव जी ), यवनानी ( यवनों की लिपि ), मातुलानी, उपाध्यायानी ।

( ग ) अकारान्त ऐसे जातिवाचक शब्द जिनकी उपधा में प् न हो टीप् लगाकर स्त्रीलिङ्ग होते हैं, जैसे—ग्राहण —ग्राहणी, हरिणी, मृगी ।

( घ ) उकारान्त गुणवाची शब्दों के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से टीप् लगाते हैं, जैसे—मृदु से मृदु प्रथया मृद्वी । किन्तु यदि उपधा में उ हो तो टीप् नहीं लगेगा—पाण्डु पु० तथा स्त्री० दोनों में ।

इ अथवा ई में अन्त होनेवाले गुणवाची शब्दों का पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में समान रूप रहता है, जैसे—शुचि, सुधी ।

तदा—तब  
तदानीम्—तब  
तथा—उस तरह  
तथाहि—जैसे (विशद रूप से वर्णन)  
तस्मात्—इसलिये  
तर्हि—तब  
तावत्—तब तक  
तिर— }  
तिर्यक्— } —तिर्यं  
तृष्णीम्—धुपचाप  
दिवा—दिन में  
दिष्ट्या—सौभाग्य से  
दूरम्—दूर  
दोषा—रात को  
द्राक्—शीघ्र, प्रौढ  
द्रुवम्—निरन्तर ही  
नक्तम्—रात को  
न—नहीं  
न घरम्—परन्तु  
नाना—तरह तरह से  
नाम—नाम वाजा, नामी  
निरुपा—निकट

नीचे—नीचे  
नूनम्—निरिच्छत  
नो—नहीं  
परम्—फिर परन्तु  
परश्च—परसों  
परित्त—चारों ओर  
परेद्यु—दूसरे दिन (कल)  
पर्याप्तम्—फाफ़ी  
पञ्चात्—पीछे  
पुन—फिर  
पुरत— }  
पुर— } घाने  
पुरस्तान्— }  
पुरा—पहले  
प्रघेद्यु—पहले दिन (कल)  
पृथक्—अलग अलग  
प्रकामम्—यथेष्ट, बहुत  
प्रतिदिनम्—हर रोज़  
प्रन्युत—उलटे  
प्रसह्य—अवर्द्धस्ती  
प्राक्—पहले  
प्रात—सवेरे

( ग ) प्रथम<sup>१</sup> वयस् ( अन्तिम अवस्था को छोड़कर ) का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर डीप् लगता है, जैसे—कुमार कुमारी, किशोरी, बधूटी, किन्तु रुद्धा, म्यविरा ।

### १९९-डीप्

( क ) पितृ शब्दों ( नर्तक, खनक, रत्नक, रजक आदि ) तथा गौरादिगण के शब्दों ( गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, वस्त्र, उभय, मृज, अनड्डह, नट, मङ्गल, मण्डल, वृहत्, महत् ये इस गण के मुख्य शब्द हैं ) के अनन्तर डीप् ( ई ) जोड़ा जाता है, जैसे—नर्तकी, रजकी, गौरी आदि ।

—ई जुड़ने के पूर्व १९८ नोट में लिखे परिवर्तन शब्द में हो जाते हैं ।

( रा ) पुलिङ्ग शब्द जो नर का द्योतक हो, उससे मादा बनाने के लिए डीप् जोड़ा जाता है, किन्तु—पालक शब्द में अन्त होनेवाले शब्दों के अनन्तर नहीं, जैसे—गोप गोपी, शूद्र शूद्री, किन्तु गोपालक से गोपालिका ।

<sup>४</sup> इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, आचार्य इनके अनन्तर तथा

१ वयसि प्रथमे । ४ । १ । २० । वयस्य चरम इति वाच्यम् ।

२ पितृगौरादिभ्यश्च । ४ । १ । ४१ ।

३ पुयोगादाख्यायाम् । ४ । १ । ४८ । पालकान्तात् । वा० ।

४ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुजाचार्याणामानुक् । ४ ।

१ । ४६ । हिमारण्ययोर्महत्वे । यवादीये । यवनाल्लिप्याम् । वा० ।

प्राय — शक्सर

प्रेत्य—मरकर, दूसरी दुनिया में

बलात्—जबर्दस्ती

बहि — बाहर

बहुधा—बहुत प्रकार से

भूय — फिर फिर, अधिक

भृशम्—घार घार, अधिकाधिक

मनाक्—थोड़ा

मिथ — परस्पर

मिथ्या—भूठ

मुधा — बेकार

मुहु — बार बार

मृषा—भूठ, बेकार

यत्—जो, क्योंकि

यत — क्योंकि

यत्र—जहाँ

यथा—जैसे

यथाकथा—जैसे तैसे

यथायथा—जैसे जैसे

यदा—जब

यावत्—जब तक

युगपत्—साथ साथ, इकट्ठागी

विना—बिना

वृथा—बेकार

वै—निश्चय

जनै—धीरे धीरे

श्च —कल ( आनेवाला दिन )

शश्चत्—सदा

सकृत्—एक बार

सततम्—बराबर, सब दिन

सदा—हमेशा

सद्य —तुरन्त

सना - सब दिन

सपदि—तुरन्त, शीघ्र

समन्तात्—चारों ओर

समम्—बराबर बराबर

समया - निकट

समीपे, समीपम्—निकट

समोचोनम्—ठीक

सम्प्रति—इस समय, अभी

सम्मुखम्—सामने, मुँह दर मुँह

सम्यक्—मली प्रकार

सर्वत —चारों ओर

सर्वत्र—सब कहीं

सर्वथा—सब प्रकार से

सर्वदा—सब दिन

साथ—साथ

सहसा—इकबारगी

सहितम्—साथ

साकम्—साथ

साक्षात्—आँखों के सामने

सार्धम्—साथ

साम्प्रतम्—अब, उचित

सायम्—शाम को

सुप्तु—अच्छी तरह

स्वस्ति—( आगीर्वाद )

स्वयम्—अपने आप

हि—इसलिये

ह्य—कल ( पूर्वनि )

## २०३—समुच्चयबोधक शब्द

च—और शब्द का अर्थ संस्कृत में बहुधा च शब्द से जतलाया जाता किन्तु जहाँ 'और' हिन्दी में दो जोड़े हुए शब्दों के बीच म आता है स—राम और गोविन्द, वहाँ संस्कृत में च शब्द दोनों के उपरान्त आता, अथवा अलग अलग दोनों के उपरान्त, जैसे—रामो गोविन्दश्च अथवा रामश्च गोविन्दश्च । च को बहुधा अन्य समुच्चय बोधक शब्दों के अनन्तर भी जोड़ देते हैं, जैसे—अथच, परञ्च, किञ्च ।

अथ—अथो, अथच—वाक्य के आदि में आते हैं और बहुधा 'तब' अथ बताते हैं, इसके पूर्व कुछ वाक्य आचुके हुए होते हैं अथवा कर्ण में कुछ भीत चुका होता है ।

तु—तो, वाक्य के आदि में नहीं आता, स तु गत—वह तो गया आदि । किन्तु, परन्तु, परञ्च—लेकिन ।

वा—या के अर्थ में । च की तरह इसका भी प्रयोग प्रत्येक शब्द के



(क) अक्षर शब्द के उस भाग को कहते हैं जो एक ही स्वर के प्रयत्न में स्वच्छता प्रथक उच्चारण किया जा सके। एक स्वर के साथ जो व्यञ्जन लगे होते हैं उन्हें मिलाकर वह स्वर अक्षर कहलाता है; जैसे—

अ, अप्, अञ्ज् आदि। यदि उनके साथ कोई व्यञ्जन न भी हो तो अकेला ही वह अक्षर कहलाएगा, जैसे—अपाद् शब्द में अ।

(ख) मात्रा समय के उस परिमाण को कहते हैं जो कि एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण करने में लगता है। इसलिए ह्रस्व स्वर एक मात्रावाला होता है। दीर्घ स्वर के उच्चारण करने में ह्रस्व से दूना समय लगता है, इसलिए उसमें दो मात्राएँ होती हैं।

अक्षर दो प्रकार के होते हैं

(१) लघु (२) गुरु। “लघु” अक्षर उसे कहते हैं जिसमें स्वर ह्रस्व हो, “गुरु” अक्षर उसे कहते हैं जिसमें स्वर दीर्घ हो।

ह्रस्व स्वर

अ, इ, उ, ऋ और ए ह्रस्व स्वर हैं।

दीर्घ स्वर

आ, ई, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ और औ दीर्घ स्वर होते हैं।

जब किसी ह्रस्व स्वर के उपरान्त अनुस्वार या विसर्ग या सयुक्ताक्षर आवे तो उस ह्रस्व स्वर को छन्द शास्त्र में दीर्घ मानते हैं,

१ सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत् ।

वर्यं सयोगपूर्वश्च तथा पाठान्तगोऽपि वा ॥

उपरान्त अथवा दोनों के उपरान्त होता है, जैसे रामो गोविन्दो वा—राम या गोविन्द अथवा रामो वा गोविन्दो वा ।

अथवा—इसका भी प्रयोग वा की तरह, उसी अर्थ में होता है ।

चेत् यदि—यदि, अगर ।

तद्यपि—तब भी ।

नोचेत्—नहीं तो ।

यदि—तदि—यदि तो

तत्—इसलिए ।

हि—क्योंकि ।

यावत् तावत्—जब तक-तब तक ।

यदा तदा—जब-तब ।

इति—वाक्य के अन्त में समाप्तिसूचक, जैसे—अहम् गच्छामि इति सोऽवदत् । इससे हिन्दी की 'कि' का बोध होता है । 'कि' का बोध यत् से भी होता है, किन्तु यह वाक्य के आदि में आता है, जैसे—सोऽवदत् यदहं गच्छामि ।

## २०४-मनोविकारसूचक अन्यय

इनका वाक्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता । मुख्य मुख्य दिए जाते हैं ।

हन्त—हर्षसूचक ।

आ, हुम्, हम्—क्रोधसूचक ।

हा, हाहा, हन्त—शोकसूचक ।

वत—दयासूचक ।

जैसे—“ गन्ध ” में “ ग ” दीर्घ है क्योंकि “ ग ” के उपरान्त सयुक्ताक्षर “ न्ध ” आ जाता है, इसी प्रकार “ सशय ” में “ स ” दीर्घ है, क्योंकि “ स ” अनुस्वारसहित है, “ राम, ” में “ म ” दीर्घ है, क्योंकि “ म ” विसर्गसहित है ।

यदि किसी पद्य में पाद के अन्तवाले अक्षर को गुरु होना चाहिए, लेकिन वह ह्रस्व है तो उसे उस स्थान पर गुरु मान लेते हैं । और यदि किसी पद्य में पाद के अन्त वाले अक्षर को ह्रस्व होना चाहिए, परन्तु वह गुरु है तो उस स्थान पर उसे आवग्य-कतावशात् लघु मान लेते हैं । ऐसा सम्प्रदाय है ।

किसी पद्य का उच्चारण करते समय जहाँ साँस लेने के लिए क्षणभर रुक जाते हैं वहाँ पद्य की ‘ यति ’ होती है । यह यतियाँ व्यवस्थित हैं, जहाँ यति होती हो वहाँ शब्द का अन्त होना चाहिए, मध्य नहीं ।

पद्य दो प्रकार का होता है—(१) वृत्त और (२) जाति

### वृत्त

जिस पद्य की रचना अक्षरों के हिसाब से होती है उसे वृत्त कहते हैं । सुविधा के लिए तीन तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं ; जैसे —

“ कश्चित्कान्ताविरहगुह्यं स्वाधिकारात्प्रमत्त ” इस पद्य में ( १ ) “ कश्चित्का ”, ( २ ) “ न्ताविर ”, ( ३ ) “ हगुह्य ”, ( ४ ) “ णस्वाधि ”, ( ५ ) “ कारात्प्र ”, ये पाँच गण हैं । यहाँ पर (१ में)

किम्, धिक्—धिवत्तार सूचक ।

अङ्ग, अयि, अये, अहोवत, ओ —पादरसहित बुलाने के काम में आते हैं । अरे, रे, ररे—अवज्ञा से बुलाने में ।

## २०५-प्रकीर्णक अन्यय

ऊपर कह आये हैं कि जो विभक्ति लिङ्ग और वचन के अनुसार रूप परिवर्तन को प्राप्त न हो वही अव्यय है । इस गणना के अनुसार कई तद्धित प्रत्ययान्त, कई कृदन्त तथा कुछ ममासात् अव्यय शब्द हैं ।

तद्धितों में—तसिल् प्रत्ययान्त, त्रल् प्रत्ययान्त, दा प्रत्ययान्त, दानीम् प्रत्ययान्त, अधुना, कहिं, यहिं, तहिं, सद्य से लेकर उत्तरेषु तक ( ५ । १ । २२ ), धाल् प्रत्ययान्त, दिक् और कालयाचक पुर, परचात्, उत्तरा, उत्तरेण आदि, धमुश् प्रत्ययान्त ( एकधा आदि ) शस् प्रत्ययात् ( बहुश, अल्पश आदि ), चि प्रत्ययान्त साति प्रत्ययान्त, कृत्स्मुच् प्रत्ययान्त ( द्विकृत्व ) तथा इसके अर्थ में आने वाले ।

कृदन्तों में—कृदन्तों में जो म् में अन्त होनेवाले हों, जैसे—अमुल् प्रत्ययान्त ( स्मार स्मारम् आदि ), तुमुन् प्रत्ययात् तथा जो ए, ऐ, ओ औ में अन्त होनेवाले हों, जैसे जीवसे ( तुमर्थ प्रत्यय असे लगा कर ), पित्र्यै

१ अव्ययादाप्सुष । २ । ४ । ८२ ।

२ तद्धितश्च सार्वविभक्तिः । १ । १ । ३८ ।

३ कृन्मेजन्त । १ । १ । ४६ ।

“क” एक अक्षर है, “श्चि” दूसरा अक्षर है, “त्का” तीसरा अक्षर है, इस प्रकार तीन अक्षरों का एक गण (कश्चित्का) हुआ। इसी प्रकार (२मे) “न्ता” एक अक्षर है “वि” दूसरा अक्षर है, “र” तीसरा अक्षर है, फिर तीन अक्षरों का एक गण (न्ताविर) हुआ।

गण आठ होते हैं —

(१) भगण (२) जगण (३) सगण (४) यगण

(५) रगण (६) तगण (७) मगण (८) नगण

आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम् ।

यरता लाघव यान्ति मनौ तु गुरुलाघयम् ॥

(१) भगण उसे कहते हैं जिसमें पहला अक्षर गुरु तथा द्वितीय और तृतीय लघु हो।

(२) जगण में मध्य अक्षर गुरु होता है, शेष पहला और तीसरा लघु होते हैं।

(३) सगण में तीसरा अक्षर गुरु होता है और शेष—पहिला और दूसरा—लघु होते हैं।

(४) यगण में केवल पहला अक्षर लघु होता है शेष दो गुरु।

(५) रगण में दूसरा अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(६) तगण में केवल तीसरा अक्षर लघु होता है शेष दो गुरु।

दो गुरु।

(७) मगण में तीनों अक्षर गुरु होते हैं।

( तुमर्यं शप्यै प्र० ) ; तथा क्त्वा ( और क्त्वार्यं ल्यप् ) में अन्त होनेवाले शब्द तथा तोसुन्, कसुन् प्रत्ययों में अन्त होनेवाले शब्द ।

अन्ययीभाव समास—अभिहरि, यथाशक्ति, अनुविष्णुम् ।

( ८ ) नगण मे तीनों अक्षर लघु होते हैं ।

लघु का चिह्न S अथवा ~ है ।

गुरु का चिह्न । अथवा — है ।

आठो गण चिह्नों द्वारा नीचे दिखाए जाते हैं —

( १ ) भगण 1SS या ~~~

( २ ) जगण S S या ~~~

( ३ ) सगण SSI या ~~~

( ४ ) यगण SII या ~~~

( ५ ) रगण ISI या ~~~

( ६ ) तगण IIS या ~~~

( ७ ) मगण III या ~~~

( ८ ) नगण SSS या ~~~

## ( २ ) जाति

जिस पद्य की व्यवस्था मात्राओं के हिसाब से की जाती है उसे जाति कहते हैं । सुविधा के लिए कभी २ मात्राओं का भी गणों में विभाग करते हैं । प्रत्येक गण चार मात्राओं का होता है । जैसे —

“ येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिपत ” इस पद्य में “ येना ”, “ मन्दम ”, “ रन्दे ” गण हैं, क्योंकि “ ये ” में दो मात्राएँ हैं और “ ना ” में दो मात्राएँ हैं, इस प्रकार चार मात्राएँ हुई, इस लिए इन चार मात्राओं का एक गण ( येना ) हो गया ।

## १-परिशेष

### संस्कृत भाषा के व्याकरण

किसी भाषा का व्याकरण तब बनता है जब या तो भिन्न भाषाओं के घोलने वालों के निरन्तर मेल जोल में अथवा उन्नी भाषा की कई प्रान्तीय बोलियाँ होजाने से भाषा में कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है और भाषा के ऐक्य के नष्ट होने की आशङ्का होती है।

संस्कृत भाषा के आदि ग्रन्थ वेद हैं। वैदिक भाषा में जब कुछ हेर फेर समय और स्थिति के अनुसार उच्चारण के परिधर्तन के कारण आरम्भ हुआ तब उसको रोकने के लिए तथा उच्च भाषा को सुव्यवस्थित रखने के लिए वेदों के प्रातिशाख्य बने। बोल चाल की संस्कृत भाषा के नियंत्रण करने की उस समय कोई आवश्यकता नहीं हुई। पश्चात् सभवन ईसवी सन् के कोई सात आठ सौ वर्ष पूर्व 'भाषा संस्कृत' के भी व्याकरण बनने लगे। पाणिनि के पूर्व बहुत से व्याकरणकार हो गए हैं, यद्यपि उनके ग्रन्थ आज कल उपलब्ध नहीं हैं तथापि उनके अस्तित्व का पता पाणिनि तथा अन्य व्याकरणों के ग्रन्थों में उल्लेख होने से चलता है।

सम्प्रदाय के अनुसार भाषा के प्रथम व्याकरण इन्द्र देवता ने। तैत्तिरीय संहिता में लिखा है —

वाग्ने पराच्य याकृताऽवदत्। ते देवा इन्द्रमनुषजिमा नो वाच व्यानुर्विति। तामिन्द्रो मध्यतोऽधनम्य याकरोत्। ७।४।७।



हाँ पर इस बात को ध्यान से देखना चाहिए कि अगर यह पद्य वृत्त होता तो “ येना ” एक गण न माना जाता, प्रयुक्त वहाँ ‘ येनाम ’ एक गण होता ।

मात्रागण सब मिल कर पाँच होते हैं :—

( १ ) मगण	॥	या — —
( २ ) सगण	SSI	या — — —
( ३ ) जगण	SIS	या — — —
( ४ ) भगण	ISS	या — — —
( ५ ) नगण	SSSS	या — — — —

वृत्त तीन प्रकार के होते हैं :—

( १ ) समवृत्त—वह होता है जिसमें के चारो चरण ( अथवा पाद ) एक से होते हैं ।

( २ ) अर्धसमवृत्त—वह होता है जिसमें के प्रथम तथा तृतीय चरण एक तरह के और द्वितीय तथा चतुर्थ दूसरी तरह के होते हैं ।

( ३ ) विषम—वह होता है जिसमें के चारो चरण एक दूसरे से भिन्न होते हैं ।

संस्कृत काव्य में बहुधा समवृत्त छन्दों का अधिक प्रयोग मिलता है ।

इससे प्रतीत होता है कि 'इन्द्र' नाम के कोई देवता अथवा ऋषि थे जिन्होंने पहले पहल भाषा का विभाग करके उसका रूप दर्शाया ।

व्याकरण शास्त्र का अध्ययन, भारतवर्ष में विशेषरूप से किया गया है । सैकड़ों व्याकरण होगए हैं और बीसियों शाखाएँ हैं । सब से प्रचलित शाखा पाणिनि मुनि की है ।

### पाणिनि

पाणिनि मुनि किस प्रान्त में किस समय हुए इस का निश्चित ज्ञान हम लोगो को प्राप्त नहीं है । उनके ग्रन्थ अष्टाध्यायी से उनके विषय में कुछ पता नहीं चलता । जनश्रुति से उनके विषय में दो चार बातें मालूम होती हैं ।

कहते हैं कि पाणिनि का निवासस्थान शालातुर ( पश्चिमोत्तर प्रदेश में अटक के पास—अब एक उजड़ा हुआ ग्राम ) था, इनकी माता का नाम दाक्षी और पिता का शकट था । यह बचपन में उपाध्याय वष के पास पढ़ने गए, किन्तु थोड़े ही दिनों के अनन्तर मन्द बुद्धि होने के कारण निकाल दिए गए । इससे इनको बड़ा मानसिक कष्ट हुआ और यह जंगल में जाकर कठोर तप करने लगे । शिवजी महाराज इनकी तपस्या से प्रसन्न हुए । उन्होंने उमरु वजाकर इनको चौदह सूत्रों का ज्ञान दिया । इन्हीं सूत्रों पर पाणिनि ने अष्टाध्यायी बनाई । इनकी मृत्यु सिंह के आक्रमण से हुई ।

अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं । हर एक अध्याय में चार पाद हैं और हर एक पाद में सूत्र हैं । इसी लिए पाणिनि के व्याकरण में

## समवृत्त

समवृत्त कई प्रकार के होते हैं। किसी के प्रत्येक चरण में १ अक्षर ( Syllable ) होता है, किसी के २, किसी के ३ और किसी के ४। इसी प्रकार २६ अक्षर तक चला जाता है। यहाँ पर केवल थोड़े से ऐसे समवृत्त दिखाए जायेंगे जो बहुधा साहित्यिक प्रयोग में आते हैं

## ८ अक्षर वाले समवृत्त

आठ अक्षर वाले समवृत्तों में से एक समवृत्त " अनुष्टुप् " है। इसे " श्लोक " भी कहते हैं। इसका लक्षण यह है—

श्लोके षष्ठ गुरु द्वेय सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।

द्विचतु पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥

अर्थात् " श्लोक " के सभी चरणों में छठवाँ अक्षर ( Syllable ) गुरु तथा पाँचवाँ लघु होता है। सातवाँ अक्षर दूसरे तथा चौथे चरण में ह्रस्व होता है, और पहिले और तीसरे में दीर्घ होता है। लक्षण वाला श्लोक ही उदाहरण है।

## ११ अक्षरवाले समवृत्त

( १ ) इन्द्रघञ्जा

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः

इन्द्रघञ्जा के प्रत्येक पाद में दो तगण, एक जगण फिर दो गुरु अक्षर होते हैं।

	तगण	तगण	जगण	ग	ग
	— — —	— — —	— — —	— —	— —
जैसे—	स्या	दिन्द्र	वज्रा	यदि	तौ जगौ गः

से अवतरण देते समय तीन सख्याएँ देते हैं, उसे—'न निर्धारणे' । २। १० । इस सूत्र का पता यह है कि यह दूसरे अध्याय के दूसरे पाद का दसवाँ सूत्र है । प्रथम सख्या अध्याय का, द्वितीय पाद का और तृतीय सूत्र का नम्बर देती है । कुल किताब में लगभग चार हजार सूत्र हैं । यदि केवल मूलमात्र अष्टाध्यायी छपी जाए तो दोढ़े साइज के २५ पृष्ठों में आसकनी है । सम्झन ऐसी जटिल और विस्तृत भाषा को इतने में ही नियन्त्रित कर देना महर्षि पाणिनि का ही काम था । सन्क्षेप के लिए अष्टाध्यायी भारतीय साहित्य में ही नहीं, ससार के साहित्य में अद्वितीय और अनुपम है । कहते हैं कि पाणिनि सन्क्षेप करने का इतना चाव रखते थे कि यदि वे एक मात्रा भी किसी सूत्र से घटा पायें तो उनको पुत्र की उत्पत्ति होने का सा आनन्द आता था । अष्टाध्यायी ने और सब व्याकरणों को परास्त कर दिया । इसके विषय में भी एक दंतकथा है । कहते हैं कि 'विश्वामित्र' ने सब व्याकरणों से कहा कि मेरा नाम सिद्ध करो, तब ने कहा कि सिद्ध स्पष्ट ही है—विश्वस्य अमित्र-विश्व का बैरी । जब पाणिनि से पूछा गया कि तुम बताओ तो यह बोले—विश्वस्य मित्रम् = विश्वामित्र ( विश्व का मित्र ) और कहा कि मित्रे चर्या । ६ । ३। १३० । सूत्र से ङ्ग का अकार दीर्घ हो जायगा । इस व्युत्पत्ति से विश्वामित्र जी बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि तुम्हारा व्याकरण ही ससार में विजय प्राप्त करेगा ।

अष्टाध्यायी के अतिरिक्त पाणिनि ने और क्या क्या ग्रन्थ बनाए इसका कुछ निश्चय नहीं है । कहते हैं कि यह कवि भी थे ।

३० व्या० प्र०—३७

## ( २ ) उपेन्द्रवज्रा

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गाँ

उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण तथा दो होते हैं।

— — — — —

उ पे न्द्र व ज्रा ज त जा स्त तो गाँ

## ( ३ ) उपजाति

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजाँ

पादौयदीयाउपजातयस्ताः

उपजाति उस वृत्त को कहते हैं जो इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है। उदाहरणार्थ लक्षण ही को ले लीजिए —

जगण	तगण	जगण	ग	ग
— — —	— — —	— — —	—	—
अ न न्त	रो दी रि	त ल क्ष्म	भा	जाँ
तगण	तगण	जगण	ग	ग
— — —	— — —	— — —	—	—
पा दौ य	दी या धु	प जा त	य	स्ता

इसमें प्रथम चरण उपेन्द्रवज्रा का है और द्वितीय इन्द्रवज्रा का।

कभी कभी प्रथम तथा तृतीय चरण इन्द्रवज्रा के रहते हैं, द्वितीय तथा चतुर्थ उपेन्द्रवज्रा के।



सुभाषितावली में इनके नाम के दो एक पद्य दिए भी हैं, किन्तु संभवतः यह कपोलकल्पित हैं।

पाणिनि के समय के विषय में बड़ा मतभेद है। कोई इनके ईसवी सन् के पूर्व आठवीं शताब्दी में रखते हैं तो कोई चतुर्थ में। प्रायः ईसा के पूर्व षष्ठ शताब्दी में इनका होना भारतीय विद्वान् बहुमत से स्वीकार करते हैं।

### कात्यायन

कात्यायन ऋषि कम से कम पाणिनि से कोई सौ वर्ष पीछे हुए होंगे। इन्होंने अष्टाध्यायी के सूत्रों की आलोचना की है। चार सहस्र सूत्रों में से २५०० को इन्होंने ठीक मान लिया है और शेष १५०० पर टिप्पणी करके सूत्रों का कार्यक्षेत्र परिमिति अथवा विस्तृत किया है। इनकी इस आलोचना का नाम वार्तिक है। सिद्धान्त कौमुदी में प्रत्येक सूत्र के अनन्तर वार्तिक दे दिए गए हैं। वार्तिक की पहचान 'धान्यम्' आदि कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों से होती है।

कात्यायन के समय तक भाषा में इतना हेर फेर हो गया था कि पाणिनि के कुछ सूत्र ठीक नहीं लगते थे, इसीलिए वार्तिक की उपयोगिता है।

### पतञ्जलि

यह ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में हुए, इनका समय निश्चित है। इन्होंने अष्टाध्यायी पर 'महाभाष्य' बनाया। इसमें इन्होंने कात्यायन के मत की समीक्षा करके पाणिनि के मत का समाधान

१२ अक्षरवाले समवृत्त

( १ ) द्रुतविलम्बित

दृढतविलम्बितमाह नर्था भरौ

दुतचिलम्बित के प्रत्येक पाद में, नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं।

जैसे-ब्रु त पि ल म्बित मा ह न भो भ रौ

( २ ) भुजङ्गप्रयात

भुजङ्गमयात चतुर्थिर्यकारैः

भुजङ्गप्रयात के प्रत्येक पाद में चार यगण होते हैं ।

यगण      यगण      यगण      यगण  
 — — —    — — —    — — —    — — —  
 जेसे—भु ज हु    प्र या त    च तु र्भि    र्य का र्

૧૪ અક્ષરવાળે સમવૃત્ત

## घसन्ततिलिका

उक्ता यसन्ततिलका तथजा जगैमः

यसन्ततिजका के प्रत्येक पाद मे तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होते हैं ।

तगण	भगण	जगण	जगण	ग	ग
— — —	— — —	— — —	— — —	—	—
जैसे-उ का ष	स न्त ति	ल का त	भ जा ज	गौ	ग

किया है। शैली और भाषा-लालित्य के हिसाब से पतञ्जलि का महाभाष्य अद्वितीय ग्रन्थ है। संस्कृत व्याकरण का सम्पूर्ण ज्ञान महाभाष्य के अध्ययन के बिना असम्भव है।

पाणिनि—कात्यायन—पतञ्जलि इन तीन को वैयाकरण 'मुनित्रय' कहते हैं। इनके उपरान्त कितने ही प्रख्यात वैयाकरण टीकाकार हुए। चन्द्रगोमी ने पाणिनि के आधार पर व्याकरण बनाई। जयादिन्य और धामन ने काशिका नाम की अष्टाध्यायी की टीका लिखी। जिनेन्द्रबुद्धि ने 'न्यास' नाम की काशिका की टीका लिखी और हरदत्त ने पद्मजरी लिखी। इनके अतिरिक्त भर्तृहरि, कैयट आदि और भी कितने एक प्रसिद्ध वैयाकरण हो गए हैं।

इसकी ओर हमें गतान्दी से ऐसे ग्रन्थ बनने लगे जिन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी का क्रम नष्ट कर दिया। व्याकरण के विषयों के अनुसार विभाग किए गए—सज्ञा, सन्धि, कारक, समास, स्त्रीप्रत्यय इत्यादि के हिसाब से सूत्र इधर उधर लोट पोट कर रखे गए। इसका परिणाम यह हुआ कि अष्टाध्यायी के सूत्रों से जो सरलता से और सक्षेप में काम निकलता था वह अब कष्ट-साध्य हो गया। अब व्याकरण के ज्ञान के लिये कम से कम गारह वर्ष तक अध्ययन करना आवश्यक होगया। अष्टाध्यायी के स्वतन्त्र अध्ययन का लोप होगया और इन अधकार फेलाने वाली कौमुदियों की शरण लेनी पड़ी।



## १५ अक्षरवाले समवृत्त

मालिनी

ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोके:

मालिनी के प्रत्येक पाद में नगण, नगण, भगण, यगण, यगण होते हैं आठवें तथा सातवें अक्षर के बाद यति होती है।

नगण	नगण	भगण
— — —	— — —	— — —
जेमे-न न म	य य यु	ते य, मा
यगण	यगण	
— — —	— — —	
लि नी भो	गि लो कै	

## १७ अक्षरवाले समवृत्त

(१) मन्दाक्रान्ता

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्भो भनौ तौ गयुग्मम्

मन्दाक्रान्ता के प्रत्येक पाद में भगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु अक्षर होते हैं।

भगण	भगण	नगण
— — —	— — —	— — —
तगण	तगण	ग ग
— — —	— — —	— — —

## भट्टोजिदीक्षित

इस प्रकार की पुस्तको में सब से प्रसिद्ध भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी है ।

भट्टोजि के पिता का नाम लक्ष्मीधर था और गुरु का जेपकृष्ण । भट्टोजि के एक भाई थे जिनका नाम रङ्गोजि था और एक पुत्र था जिसका नाम भानु था । सिद्धान्तकौमुदी के अतिरिक्त कई ग्रन्थ भट्टोजि ने लिखे थे । इनमें से 'शब्दकौस्तुभ' नाम की एक टीका अष्टाध्याय पर है । इनका समय सत्रहवीं शताब्दी ( ईसवी ) का प्रथमार्ध है ।

सिद्धान्तकौमुदी के दो सक्षिप्त संस्करण धरदराज ने बालकों के लिए किए हैं—एक मध्यसिद्धान्तकौमुदी और दूसरी लघु-सिद्धान्तकौमुदी । इनमें से मध्यसिद्धान्तकौमुदी का अधिक प्रचार नहीं है, हाँ लघुसिद्धान्तकौमुदी खूब पढ़ी जाती है ।

## २-परिशेष

### छन्द

संस्कृत काव्य गद्य और पद्य में होता है । गद्य में पदों का विभाग पादों में नहीं होता ।

प्रत्येक पद्य में चार " पाद " होते हैं । पादों की व्यवस्था या तो अक्षरो (Syllable) से या मात्राओं ( Syllabic instants ) से होती है ।

चार अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर छ अक्षर के उपरान्त तदनन्तर फिर सात अक्षर के उपरान्त यति होती है, जैसे—

— — —      — — —      — — —      — — —  
 क ध्वि त्का      न्ता, वि र      ह गु रु      या, स्वा धि  
 — — —      — — —  
 का र प्र      म त्त ।

यहाँ पर पहिली यति “न्ता” के उपरान्त, दूसरी “या” के उपरान्त, तीसरी अन्त में “त्त” के उपरान्त है। इसी प्रकार चारों चरणों में यति होगी।

## ( २ ) शिखरिणी

रसैःरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी

शिखरिणी के प्रत्येक पाद में यगण, भगण, नगण, सगण, भगण, तदनन्तर एक लघु और एक गुरु होता है। छ अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर फिर ग्यारह अक्षर के उपरान्त यति होती है।

यगण	भगण	नगण
— — —	— — —	— — —
स मृ द्ध	सौ मा ग्य,	स क ल
सगण	भगण	ल ग
— — —	— — —	— — —
घ सु वा,	या कि म	पि तन्,

यहाँ पर पहिली यति छठे अक्षर "भ्य" के उपरान्त, दूसरी यति ग्यारहवें अक्षर "तन्" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यो है —

समृद्ध सोभाग्य सकजवसुधाया किमपि तन्,  
महैश्वर्य लीलाजनितजगत रागडपरशो ।  
श्रुतीना सर्वस्य सुरुतमथ मूर्तं सुमनसाम्,  
सुधामौन्दर्यं ते सलिलमणिष न शमयतु ॥

१९ अक्षरवाले समवृत्त

आदूलविक्रीडित

मूर्याङ्गैर्यदि मः सजो सततगा, आदूलविक्रीडितम् ।

आदूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक पाद में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण फिर एक गुरु अक्षर होता है। बारह अक्षर के उपरान्त पहिली यति, तदनन्तर फिर सातवें अक्षर के उपरान्त दूसरी यति होती है। जैसे —

मगण	सगण	जगण	सगण
— — —	— — —	— — —	— — —
पा तु न	प्र व म	व्य ध स्य	ति ज ल,
तगण	तगण	ग	
— — —	— — —	—	
यु प्मा स्व	पी ते पु	या,	

यहाँ पर पहिली यति बारहवें अक्षर "ल" के उपरान्त तथा

दूसरी यति फिर सातवें अक्षर " या " के उपरान्त है। पूरा श्लोक यों है।

पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युष्मास्वपीतेषु या,  
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।  
आद्ये च कुसुमप्रसृतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,  
मेव याति शकुन्तला पतिगृह सपर्यनुशायताम् ॥

## २१ अक्षरवाले समवृत्त

स्रग्धरा

अभने रानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम्

स्रग्धरा के प्रत्येक पाद में मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, होते हैं। इसमें सात सात अक्षरों पर यति होती है।

मगण	रगण	भगण	नगण
— — —	— — —	— — —	— — —
यगण	यगण	यगण	
— — —	— — —	— — —	
— — —	— — —	— — —	
जैसे-व्या को पे	न्दी ध रा	भा, क न	
— — —	— — —	— — —	— — —
क क प	ल स, त्पी	त धा सा	सु धा सा,

१५,	भनज,	लगा स्यु,	रयो	
जसा,	जगौ च,	भवती,	यमुद्ग,	ता

## जाति

जैसा कि पहिले कह आए हैं, “जाति” छन्द उसे कहते हैं जिनके गण मात्रा ( Syllabic instants ) के हिसाब से स्थित किए जाते हैं। “जाति” का सब से साधारण भेद “आर्या” है, जो कि नव प्रकार की होती है —

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचपला च ।  
गोत्युपगोत्युदीतय आर्यागीतिश्च नवधार्या ॥

## आर्या

यस्या पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीये ऽपि ।  
अष्टादश द्वितीये, चतुर्यके पञ्चदश साऽर्या ॥

अर्थात् आर्या के प्रथम तथा तृतीय चरण में १२ मात्राएँ होती हैं, द्वितीय में १८ और चतुर्थ में १५ मात्राएँ होती हैं।  
हरणार्थ लक्षण का ही पथ है ।

नोट—छन्दों के अधिक ज्ञान के लिए श्रुतबोध, वृत्तरत्नाकर  
या पित्रलमुनि रचित छन्द सूत्र शास्त्र पढ़ना चाहिए ।

## ३--परिशेष

रोमन अक्षरो मे सस्कृत लिखने की विधि

। सस्कृत भाषा को यूरोपीय विद्वान् बड़े चाव से पढ़ते हैं। केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं, बहुत सी बातों मे उन्हो ने सस्कृत ग्रन्थों से हम भारतीयों की अपेक्षा अधिक लाभ भी उठाया है। इनके आधार पर भारतीय सभ्यता और सस्कृति पर उपादेय ग्रन्थ भी लिखे हैं, जिन से हम लोगों का भी कुछ उपकार हो सकता है। बहुधा सस्कृत शब्दों को वे रोमन अक्षरो मे लिखते हैं। हम लोगों को भी उस विधि को जान रखना आवश्यक है। पुरातत्व का अन्वेषण करने समय इस ज्ञान का पग पग पर काम पड़ता है।

a ā i ī u ū r ṛ ḷ e o ai au

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ओ ऐ औ

चन्द्रबिन्दु (स्वर के ऊपर) अथवा ~

अनुस्वार m अथवा m

विभर्ग h

क	ख	ग	घ	ङ
k	kh	g	gh	ṅ
च	छ	ज	झ	ञ
c	ch	j	jh	ñ
ट	ठ	ड	ढ	ण
t	th	d	dh	ṇ

त्	थ्	द्	ध्	न्
t	th	d	dh	n
प्	फ्	ब्	भ्	म्
p	ph	b	bh	m
	य्	र्	ल्	ष्
	y	r	l	ṣ
ञ्	प्	स्	ह्	
ṇ	s	s	h	

कभी २ ऋ ऋ ल को क्रम से ri i i lri च्, छ् को ch, chh, ज्, प् को j, sh भी लिखते हैं।

इस प्रकार इन अक्षरों को जोड़ कर शब्द लिखे जाते हैं, उदाहरणार्थ।

रश्मि—	raśmi
प्रद्योत—	pradyota
क्षत्रिय—	ksatriya
उदीर्णधन्वा—	udirnadhavā
क्लृप्त—	klṛpta
संस्कृति—	samskr̥ti

✽ समाप्त ✽